



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-12, अंक-2

अप्रैल-जून 2025

आईएसएसएन : 2348-5639

संपादक

• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक

• डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक

• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक

• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

सह-संपादक

• डॉ. सुमन रानी

अक्षर संयोजन

• मो. सलीम

कानूनी सलाहकार

• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

सलाहकार सम्पादक मंडल

• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. ऊषा रानी, शिमला
• डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर
• डॉ. सुषमा रानी, जीन्द
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. गौतम कुमार साहा, दरभंगा
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्तेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा
• डॉ. संजय कुमार, रांची
• डॉ. संतोष कुमार भगत, रांची

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी हैं।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है—बैंक : PUNJAB NATIONAL BANK Branch : Yamuna Vihar, Delhi-110053 IFSC : PUNB0225600 Account Holder : SANIA PUBLICATION Current Account No. 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध-पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति

वार्षिक 2500/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
Assistant Professor,
Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Uttar Pradesh)
- **Dr. AMBILI V.S.**
Assistant Professor, Department of Hindi,
N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **Dr. Anju Bala**
Assistant Professor Hindi,
Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. माया गोला**, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. मोहित शर्मा**
श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)-305815
- **रजनी प्रिया**
रॉगाटॉड रेलवे कॉलोनी, क्वार्टर सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, लैण्डमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड-826001
- **डॉ. आँचल कुमारी**, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
राम चमेली चट्टा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ,
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार**, असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. प्रमोद नाग**
सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **पल्लवी आर्य**
असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **गोस्वामी सोनीबाला**

शोधार्थी – जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

- **डॉ. करुणेन्द्र सिंह**, असिस्टेंट प्रोफेसर
रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर
- **डॉ. मीरा चौरसिया**
चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **Dr. Vimal Parmar**
Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **Dr. Archana Tiwari**, Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **डॉ. जगदीप दुबे**
सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भाभू**
शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :
सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094
मोबाइल : 9818128487, 8383042929

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc.,)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals	08 per paper	10 per paper
2.	Publications (other than Research papers)		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय

प्रिय पाठकों,

वर्तमान समय संक्रमण और संघर्ष का काल है—आशाओं के पुनर्निर्माण और मूल्यों के पुनर्पाठ का समय। जब वैश्विक परिदृश्य में अस्थिरता, कृत्रिमता और आत्मकेन्द्रितता अपनी चरम अवस्था में है, तब साहित्य और समालोचना की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। शोध समालोचना का यह तिमाही अंक इसी चेतना से प्रेरित है।

इस अंक में हमने विविध विमर्शों, काव्य प्रवृत्तियों, लोकधर्मी साहित्य और समकालीन आलोचनात्मक दृष्टियों को समेटने का प्रयास किया है। हमारी यह मान्यता रही है कि साहित्य का मूल्य केवल रचना तक सीमित नहीं होता, बल्कि उसका विश्लेषण, संवाद और सामाजिक संदर्भों में पुनर्पाठ ही उसकी आत्मा को व्यापक बनाता है।

इस अंक में प्रकाशित आलेखों में आप हिंदी साहित्य के विविध पक्षों—जैसे दलित विमर्श, स्त्रीवाद, लोक साहित्य, उत्तरआधुनिकता और नई आलोचना—की विश्लेषणात्मक छवियाँ देखेंगे। शोधार्थियों और नवलेखकों की दृष्टि का समावेश भी हमारे लिए उत्साह का विषय है, जो यह संकेत देता है कि आने वाला बौद्धिक परिदृश्य भी चिंतनशील और जिज्ञासु होगा।

इस बार हम विशेष रूप से उन रचनाकारों और आलोचकों को धन्यवाद देना चाहेंगे जिन्होंने अपने लेखों के माध्यम से साहित्यिक विमर्श को और भी समृद्ध किया। साथ ही हम अपने पाठकों से यह अपेक्षा भी करते हैं कि वे अपने सुझावों और प्रतिक्रियाओं के माध्यम से इस संवाद को आगे बढ़ाएँ।

आज जब 'सच' और 'प्रदर्शन' के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है, तब यह आवश्यक है कि हम अपने समय के सवालों से आँख मिलाएँ और रचनात्मक ईमानदारी के साथ संवाद करें। शोध समालोचना इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

वसंत की सुगंध के साथ जब पृथ्वी हरियाली की चादर ओढ़ती है, तब सृजनशीलता भी अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ती है। अप्रैल, मई और जून का यह त्रैमासिक अंक न केवल ऋतु-परिवर्तन का साक्षी है, बल्कि विचार, विमर्श और बौद्धिक चेतना के नव अंकुरण का परिचायक भी है।

आज जब दुनिया तकनीक और त्वरित सूचनाओं की दौड़ में भाग रही है, तब साहित्य, समाज और संस्कृति से जुड़े गंभीर विमर्शों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। शोध और समालोचना न केवल हमारे अतीत की पड़ताल करते हैं, बल्कि वर्तमान को समझने और भविष्य को दिशा देने का आधार भी प्रदान करते हैं।

इस अंक में प्रस्तुत लेख और शोध-पत्र विविध विषयों को स्पर्श करते हुए एक व्यापक बौद्धिक फलक रचते हैं। साहित्य में स्त्री-विमर्श, दलित चेतना, भाषाई विविधता, लोक-संस्कृति की पुनर्व्याख्या, और साथ ही समकालीन हिंदी काव्य के बदलते स्वर—इन सभी पर गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

हमारे लेखकगणों ने अपनी विद्वता और संवेदनशील दृष्टि से न केवल अकादमिक जगत को समृद्ध किया है, बल्कि पाठकों के मन-मस्तिष्क को भी झकझोरने का प्रयास किया है। हमें गर्व है कि 'शोध समालोचना' अब मात्र एक पत्रिका नहीं, बल्कि एक विचारधारा का मंच बन चुका है—जहाँ हर कलम सवाल उठाती है, समाधान ढूँढ़ती है, और नवोन्मेष को जगह देती है।

आज भारत डिजिटल युग में भी अपनी जड़ों से जुड़े रहने का श्रेष्ठ उदाहरण बन चुका है। योग को पूरी दुनिया में मान्यता मिली, आयुर्वेद फिर से चिकित्सा पद्धति के रूप में उभरा, भारतीय खानपान और वस्त्रशैली वैश्विक मंचों पर सराही जा रही है। 'मेक इन इंडिया', 'डिजिटल इंडिया', 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' जैसे अभियान इस बात का संकेत हैं कि आधुनिक भारत वैश्विक मंच पर अपनी सांस्कृतिक पहचान के साथ खड़ा है। भारत की सबसे बड़ी ताकत उसकी विविधता

में निहित एकता है। अनेक भाषाओं, धर्मों, जातियों और संस्कृतियों का यह संगम, न केवल लोकतांत्रिक भारत की बुनियाद है, बल्कि यह उसकी शाश्वत शक्ति भी है। इस विविधता को स्वीकारते हुए भारत ने उसे अपनी शक्ति में बदला है, यही इसकी सांस्कृतिक बौद्धिकता का प्रमाण है।

इस पत्रिका का उद्देश्य भी इसी समरसता और संतुलन को उजागर करना है। 'भारत की शाश्वत विरासत रू परंपरा से आधुनिकता तक' विषय पर आधारित शोध-पत्र न केवल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं को उद्घाटित करते हैं, बल्कि यह भी दिखाते हैं कि किस प्रकार भारतीय समाज ने समय के साथ अपने मूल्यों को पुनर्परिभाषित करते हुए आधुनिक यथार्थ से संवाद स्थापित किया है। इस अंक में भारतीय संगीत, नृत्य, स्थापत्य, दर्शन, साहित्य, लोक परंपराएं, चिकित्सा, तकनीक, शिक्षा, संस्कृति, और डिजिटल युग में भारतीयता की पुनर्व्याख्या जैसे विविध विषयों पर विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। यह अंक अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की यात्रा का एक गहरा और संजीदा दस्तावेज़ बनकर उभरा है। यह अंक न केवल शोधार्थियों और शिक्षाविदों के लिए उपयोगी है, बल्कि उन पाठकों के लिए भी प्रेरणास्पद है, जो परंपरा और आधुनिकता के संतुलन को समझना चाहते हैं। यह संवाद भारत के आत्म-निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा है - जहां हम जड़ों को थामे हुए, नई ऊँचाइयों की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अंत में, मैं उन सभी विद्वानों और लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस विशेषांक को समृद्ध बनाने में अपनी बौद्धिक ऊर्जा और दृष्टि प्रदान की।

- नरेश कुमार सिहाग

संपादक

शोध समालोचन

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय	6
नारी विमर्श के आलोक में प्रेमचन्द की कहानियों में नारी	10
डॉ. शोभा रानी	
लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में नारी सम्बन्धी दृष्टि	13
डॉ. पूनम चौहान	
रिश्तों के सफल कारीगर : उपन्यासकार लाजपत राय गर्ग (अमावस्या में खिला चाँद उपन्यास के सन्दर्भ में)	17
डॉ. पान सिंह	
Masculine Dominance and Decline in Child Sex Ratio in Haryana	21
Santosh Kumar	
Dr Satyaveer Yadav	
दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना	31
प्रतिमा कुमारी	
प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' में निहित नारी समस्या	37
श्वेता कंडुलना	
राजस्थान की इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की हिंदी कहानी और बाजारवाद	41
साधना शर्मा	
परिवार के दंश को झेलता किन्नर समाज	46
कृतिका चौधरी	
डॉ. प्रीति सिंह	
हिन्दी नाटक की परम्परा का विकास विवरण	50
डॉ. रवि देव	
कृष्णा सोबती की कहानियों में विभाजन की पीड़ा	56
मोहम्मद रहबर	
मलिक मो. जुबैर अली	
'रुको रुको रामराज आ रहा है' में बहिष्कृतों के जीवन का यथार्थ	61
डॉ. मिलिंद बनकर	
हिंदी रंगमंच की परंपरा का विकास विवरण	64
डॉ. रवि देव	
पंडिता रमाबाई के सामाजिक सुधारवादी विचार और आधुनिक भारत	71
नेहा कुमारी सिंह	
डॉ. रणजीत कुमार सिंह	

वागड़ क्षेत्र में हनुमान और भैरव रूपाकृतियों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व	76
डॉ. सुशील सोमपुरा / अल्पेन्द्र सिंह झाला	
स्त्रीत्व-मानचित्र के आयाम और अनामिका की कविताएं	80
नयना जैन / डॉ. सुमन कौशिक	
शैल रस्तोगी के एकांकियों का सामान्य परिचय	83
डॉ. किर्तीमालिनी हणूमंतराव पाटील	
THE ENDURING LEGACY: THE ROLE OF SRINIVASARAMANUJAN'S CONTRIBUTIONS IN THE FIELD OF MATHEMATICS	87
Manpreet Kaur Damni	
डिजिटलकरण से ग्रामीण शिक्षा पर प्रभाव	91
डॉ. अंजली कुमारी	
पश्चिमी राजस्थान में अक्षय ऊर्जा का विस्तार	94
शिव गिरी	
AI-Driven Detection of Pathogens and Pests in Crop Plants – Challenges and Management Strategies	98
Supinderjit Kaur, Ravinder Kaur and Akarshan Uppal	
हृषीकेश सुलभ की कहानियों में नारी जीवन : एक अनुशीलन	104
इला कुमारी	
भारत में नारीवादी आंदोलन का विकास	107
स्नेहा कुमारी	
हिंदी दलित आत्मकथाएं और पित्रसत्ता : एक अध्ययन	112
नीतू सरोज	
प्रो. आलोक प्रसाद	
अरुणाचली समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्ष (अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)	117
ताबा याना	
प्रो. संजय कुमार	
भारत में नगरीय स्वशासन की प्रमुख चुनौतियां : एक राजनीतिक दृष्टिकोण	121
डॉ. रमेश राम	
हिंदी कहानी का उद्भव विकास : नई कहानी के संदर्भ में	125
डॉ. कंचन आर्या	
THE USE OF MULTIMEDIA TECHNOLOGY IN ENGLISH LANGUAGE TEACHING	130
Manisha Sharma	
भारत बांग्लादेश सम्बन्ध : दशा एवं दिशा	130
हरकेश मीणा	
स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक अवदान नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में	135
सुभाष कुमार धायल	
डॉ. गिरधारी लाल शर्मा	



नारी विमर्श के आलोक में प्रेमचन्द की कहानियों में नारी

डॉ. शोभा रानी

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

समरहिल, शिमला-171005

कोई भी रचनाकार अपने परिवेश से अपने जीवन को अनुभवों से कहानियों के विचार बिन्दु एकत्रित करता है और प्रेमचन्द भी इसके अपवाद नहीं हैं। हमारे आस-पास अनेक प्रकार की घटनाएं घटित होती रहती हैं उनसे हम प्रभावित भी होते हैं और उनसे अपने विचारों को पल्लवित और पोषित करते हैं। यद्यपि प्रेमचन्द को एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त है परन्तु उन्होंने लगभग 350 कहानियां लिखी और प्रत्येक कहानी में किसी न किसी रूप में नारी उनके केन्द्र में रही है। यदि हम प्रेमचन्द का जीवन देखें तो शैशव काल से ही वे अपनी माता के प्रेम से वंचित हो गए थे। इस तरह उनकी कहानियों में माता और विमाता के दोनों रूप मिलते हैं। उनका विवाह छोटी आयु में तेज तर्राज, कर्कशा स्त्री से कर दिया गया। निश्चित रूप में ही वह उसके कारण क्षुब्ध थे किन्तु बाद में उनका विवाह शिवरानी से होने पर उनके जीवन में स्थिरता आई। इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयं कहा है कि “मेरे जीवन में कोई रोमांस नहीं है वह बिल्कुल साधारण ढंग का है। मेरी पहली पत्नी 1904 में मर गई। वह एक अभागी स्त्री थी, वह देखने में तनिक भी अच्छी नहीं थी, मैं उससे सन्तुष्ट नहीं था, किन्तु फिर भी जैसे सभी पति करते हैं, मैं भी किसी न किसी तरह निर्वाह करता चला गया, जब वह मर गई तो मैंने शिवरानी देवी से विवाह किया उसके बाद में सन्तुष्ट जीवन यापन करने लगा।”¹

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के मा/यम से एक यथार्थानुमुख आदर्शवादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी के प्रति होने वाले भेदभाव, स्वतंत्र अस्तित्व, स्वयं निर्णय लेना तथा नारी के सशक्त रूप को ही दर्शाने का प्रयास किया है। उपरोक्त विषयों को ही अपनी कहानी का मूल विषय बनाया है। वे नारी को अबला नहीं बल्कि सबला रूप में चिर्त्तित करते हैं। उनकी नारियां पुरुष के साथ पारिवारिक क्षेत्र में नहीं बल्कि राजनैतिक एवं अन्य क्षेत्र में भी सशक्त रूप में अपनी भूमिका कर रही है। लेखक समाज से नारी को पुरुषों के समान अधिकार देने के लिए कहते हैं। उनका मानना है कि जब तक नारी जाति का शोषण होता रहेगा तब तक स्वस्थ एवं समृद्ध समाज की कल्पना करना निरर्थक होगा। प्रेमचन्द युग में बाल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज प्रथा ज़ोर पकड़ रही थी। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से इन कुरितियों का विरोध करते हुए समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया। ‘दो सखियां’ कहानी में विवाह से सम्बन्धित कुछ कुप्रथाओं का विरोध करता हुआ कहानी का पात्रविनोद कहता है, “नहीं, मैं वैवाहिक प्रथा को पसंद नहीं करता। इस प्रथा का अविष्कार इस समय हुआ था जब मनुष्य सभ्यता की प्रारम्भिक दशा में था तब से दुनिया बहुत आगे बढ़ी है। मगर विवाह प्रथा में जौ भर अन्तर भी नहीं पड़ा, पर प्रथा वर्तमान के लिए उपयोगी नहीं है। इसमें सबसे बड़ा कारण यह है कि सामाजिक प्रश्न को धार्मिक रूप दे देती है।”²

उपरोक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि प्रेमचन्द स्वयं वैवाहिक जीवन से परेशान थे इसलिए वे इसे कुप्रथा मानते थे।

उन्हें इस विषय का गहरा अनुभव था। हिन्दू समाज में विवाह को एक अनिवार्य संस्कार माना जाता है। कन्या के पैदा होते ही उसके माता-पिता को वर तलाशने की चिन्ता आरम्भ हो जाती है। माता-पिता के अनुसार लड़का चाहे कैसा भी हो बस उसके लिए वर ढूँढ कर उसे घर से विदा करना है। हिन्दू परिवारों की एक यह भी धारणा होती है कि बेटे चाहे कितने भी हो वह चिन्ता नहीं, परन्तु एक भी बेटी के पैदा होने पर घर में कयामत आ जाती है। बेटे और बेटियों में कितना भेदभाव किया जाता है यह मुन्शी प्रेमचन्द ने भी निम्नलिखित पंक्तियों में स्वीकार किया है, “बेटों की कुचरित्र कलंक की बात नहीं समझी जाती लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भागकर वह कहां जायेगी। अगर विवाह में विलम्ब हुआ और कन्या के पांव ऊंचे-नीचे पड़ गए तो फिर कुटुम्ब की नाक कट जाएगी। यदि वह इस दुर्घटना को सफलता के साथ गुप्त रख सका तो कोई बात नहीं। उसको कलंकित करने का किसी में साहस नहीं, यदि अभाग्यवश वह इसे छिपा न सके और भांडा फोड़ हो गया वह फिर माता-पिता, भाई-बन्धुओं के लिए संसार में मुंह दिखाने का स्थान नहीं रहता।”³ विवाह की कुप्रथाओं ने अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज प्रथा आदि कुरीतियों को भी जन्म दिया।

प्रेमचन्द युग में बाल विधवाओं और निःसन्तान युवती विधवाओं के पुनःविवाह होने लगे थे। पुरानी परम्पराओं से बंधे लोगों ने इसका विरोध भी किया लेकिन उस समय के समाज सुधारकों ने इस समस्या के हल को खोजने का भरसक प्रयास किया। इसी सन्दर्भ में ब्रह्म समाज और आर्य समाज जैसी संस्थाओं ने अपनी अहम भूमिका निभाई। प्रेमचन्द द्वारा विरचित कहानी ‘नेराश्य लीला’ की नायिका कैलाश कुमारी एक बाल विधवा है। उपरोक्त पंक्तियों में लेखक ने इस कहानी में यह दर्शाने का प्रयास किया है कि नायिका के मन में व्यवस्था के प्रति विद्रोह जाग उठा है उसके हृदय में पुरुष निर्मित समाज के प्रति विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया पनपने लगी है। वह अपने अधिकारों और अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के लिए संघर्ष करना चाहती है।

प्रेमचन्द नारी को आर्थिक रूप से स्वतंत्र देखना चाहते थे और उनके सर्वोन्मुख विकास के लिए न केवल समाज को बल्कि स्वयं नारी को भी प्रयासरत रहना चाहिए। दहेज प्रथा एक भारतीय समाज के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है। उस युग में दहेज प्रथा एक विकराल रूप धारण कर चुकी थी। लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस बुराई का समूल नाश करने और समाज के लोगों को जागृत करने के लिए प्रयास किये। उन्होंने इस समस्या पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, “हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित इतनी चिन्ताजनक इतनी भयंकर हो गई है कि कुछ समझ नहीं आता कि उसका सुधार कैसे हो। बिरले ही ऐसे माता-पिता होंगे जिनके सात पुत्रों के बाद एक कन्या उत्पन्न हो जाए तो वह सहर्ष उसका स्वागत करें।”⁴

जो लोग बेटियों के विवाह की कठिनाइयों को भोग चुके होते हैं। वे भी अपने बेटे के विवाह के अवसर पर यह भूल जाते हैं कि हमने दहेज देने के लिए क्या-क्या मुसीबतें झेली है। वे अपनी बेटी के विवाह का खर्च ब्याज सहित अपने बेटे के विवाह से वसूल करना चाहते हैं, “कितने ही माता-पिता इसी चिन्ता में घुट-घुट कर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं कि कोई संन्यास ग्रहण कर लेता है, कोई बड़े के गले कन्या को मड़कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र कुपात्र के विचार करने का मौका कहां, ठेलमठेल है।”⁵ लेकिन इन सब के बावजूद प्रेमचन्द कहना चाहते हैं कि जब तक नारी स्वयं इस सामाजिक बुराई के खिलाफ खड़ी नहीं होती या संघर्ष नहीं करती तब तक समाज में दहेज लेने वालों की संख्या बढ़ती ही रहेगी। यदि स्त्री आत्माभिमान और धैर्य का परिचय दे तो इस बुराई का अन्त हो सकता है। ‘कुसुम’ कहानी की नायिका कुसुम को जब यह पता चलता है कि उसके पति की इच्छानुसार पिता जी एक हजार का चैक दहेज के रूप में दे रहे हैं तो वह क्रोध से बोलती है, “अम्मा दादा से कह दो, एक रूपया देने की जरूरत नहीं।”⁶ आगे लेखक ने कुसुम के माध्यम से यह भी प्रयास किया है कि नारी स्वयं स्वतंत्र होने के लिए तत्पर है, अब वह अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना चाहती है। निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से कुसुम दहेज जैसी बुराई का विरोध करते हुए कहती है, “कुसुम ने झल्लाकर कहा ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच के, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे दती हूँ, वहां रुपये गये, तो मैं जहर खा लूंगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे व्यक्ति का मुंह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और यदि तुम्हें डर लगता हो, तो मैं खुद कह दूंगी मैंने स्वतंत्र रहने का निर्णय लिया है।”⁷

इस प्रकार नारी में आत्मबल, त्याग स्वाभिमान की शक्ति आ जाने से इस समस्या का हल खोजा जा सकता है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के द्वारा नारी शिक्षा का समावेश किया है। हालांकि उन्होंने शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार की नारियों का वर्णन किया है। उनका मानना है कि यदि स्त्रीको उचित शिक्षा प्रदान की जाए तो वह समाज और देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देगी और पुरुष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर चलेगी। शिक्षित नारी को किसी का गुलाम बनकर नहीं रहना पड़ता। वह शिक्षा के बल पर आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बन सकती है। ‘मिस पदमा’ कहानी की नायिका पदमा भी ऐसी ही शिक्षित नारी है जो स्वतंत्र है और किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं रहती। इसी सन्दर्भ में ये पंक्तियां स्पष्ट करती है, “एम.ए. की डिग्री ली, फिर कानून पास किया और प्रेक्टिस शुरू कर दी। रूपवती थी, युवती थी, मृदुभाषिणी थी और प्रतिभाशालिनी भी थी। मार्ग में कोई बाधा न थी। देखते-देखते वह अपने साथी नौजवान मर्द वकीलों को पीछे छोड़ कर आगे निकल गयी और अब उसकी आमदनी कभी-कभी एक हजार से भी ऊपर बढ़ जाती।”⁸ प्रेमचन्द कहते हैं कि यदि नारी को उचित वातावरण और शिक्षा मिले तो वह भी पुरुषों के समान अपना स्वतंत्र जीवन जी सकती। शिक्षित नारी का समाज को एक बहुत बड़ा योगदान यह है कि वह कलहपूर्ण और टूटते परिवारिक सम्बन्धों को एक सूत्र में संजोकर उन्हें बिखरने से बचाती है। ‘दो सखियां’ कहानी की चन्दा के परिवार का वातावरण भी कुछ तनावपूर्ण बना रहता है, लेकिन चन्दा संयम और विवेक से काम लेती है। वह अपनी सहेली पदमा को एक पत्र लिखती है, “मुझे ऐसा भय हो रहा है कि सास जी को मुझ से चिढ़ है, बहन, मैं उन्हें भरसक प्रसन्न रखने की चेष्टा करती हूँ जो काम कभी न किये वह उनके लिए करती हूँ—लेकिन वो मेरी माता है उन्हीं के गर्भ से वह रत्न उत्पन्न हुआ है जो मेरा प्राणाधार है। मैं उनकी सेवा कर सकूँ, मैं केवल इतना ही चाहती हूँ।”⁹

शिक्षा से ही नारी सशक्त हो सकती है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के महानतम लेखकों में से एक माने जाते हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक बुराइयों, आर्थिक असमानता और अन्याय का उल्लेख मिलता है लेकिन इन सब के अलावा उन्होंने नारी को सशक्त बनाने के लिए नारी का चित्रण अत्यंत यथार्थवादी और संवेदनशीलता से किया है। प्रेमचन्द की नारी केवल मज़बूर या दुःखी नहीं बल्कि वह आत्मनिर्भरता की दिशा में कदम बढ़ा रही है। ‘शत्रु’ और ‘बूढ़ी काकी’ जैसी कहानियों में ऐसी नारियों का वर्णन किया गया है जो अपनी समस्याओं का सामना करने के लिए अत्यधिक संघर्ष करती है और उसमें सफल भी होती है। प्रेमचन्द की कहानियां न केवल नारी विमर्श को एक नई दिशा प्रदान करती है बल्कि यह भी दर्शाती है कि समाज में नारी का क्या स्थान है और उसे किस प्रकार समाज में अपना स्थान निर्धारित करना है। उनके द्वारा विरचित कहानियां वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है और नारी विमर्श की नई परिभाषाएं स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

सन्दर्भ

1. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग-1, पृ- 39
2. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग-4, पृ- 145
3. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग-3, पृ- 38-39
4. वही, पृ- 38
5. वही, पृ- 39
6. प्रेमचन्द्र, मानसरोवर, भाग-2, पृ- 15
7. वही, पृ- 2
8. वही, पृ- 58
9. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग-4, पृ- 15



लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में नारी सम्बन्धी दृष्टि

डॉ. पूनम चौहान

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

समरहिल, शिमला-171005

साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध होता है। यदि साहित्य समाज से प्रभावित रहता है तो वह समाज को प्रभावित भी करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी समाज से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है। साहित्यकार का व्यक्तित्व भी सामाजिक परिवेश से ही निर्मित होता है। वह निरन्तर समाज से मान संस्कार और विचार ग्रहण करता है। उसकी आवाज़ युग की आवाज़ बनती है। साहित्य और नारी का भी सम्बन्ध शाश्वत है। नारी वह शक्ति है जिसके बिना व्यक्ति समाज और साहित्य तीनों ही अधूरे हैं। नारी के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती और समाज से ही साहित्य का निर्माण होता है। यदि हम हिन्दी साहित्य के इतिहास की चर्चा करें तो आदिकाल से ही हमारे कवियों, साहित्यकारों ने नारी से सम्बन्धी विषयों का वर्णन अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। प्रारम्भ से ही नारी सुकुमारता, कोमलता, विनम्रता, त्याग और बलिदान, पुरुष शक्ति का प्रतीक, शौर्य और कठोरता की प्रतीक रही है। इसी सन्दर्भ में महादेवी वर्मा ने कहा है कि “पुरुष को यदि ऐसे वृक्ष की संज्ञा दी जाए तो अपने चारों ओर छोटे-छोटे पौधों का जीवन रस चूस-चूर कर आकाश की ओर बढ़ता है तो नारी को ऐसी लता कहना होगा जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा सा स्थान लेकर अपनी सघनता के बहुत से अंकुरों को पनपाती हुई उस वृक्ष की विशालता को चारों ओर से ढक लेती है।”¹

हिन्दी साहित्य जगत के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण मिश्र एक सुप्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित कवि एवं साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। प्रारम्भ में उन्होंने कविताओं का ही सृजन किया। विशाल भारती, त्यागभूमि, श्रीशारदा और इन्द्र आदि छोटी-छोटी रचनाएं प्रकाशित होती रही। ये सभी कविता संग्रह छायावादी विचारधारा से प्रभावित थे, जिसमें उनके भावुक कवि होने की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। मिश्र जी भारतीय नाट्य जगत के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनका लेखन न केवल नाट्य कला में योगदान करता है, बल्कि सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डालता है। उन्होंने नाटकों के माध्यम से नारी संघर्ष, उनकी समस्याएं और समाज में उनकी स्थिति को दर्शाया है। उन्होंने नाटकों के प्रारम्भ में ही भूमिका में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने नाटकों में नारी समस्या को भी प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। उनके नाटकों की विषय वस्तु ऐतिहासिकता से सम्बन्धित नहीं बल्कि समाज के समकालीन विषयों से सम्बन्धित है।

मिश्र के नाटकों की जो नारी पात्र है वे शिक्षित हैं। लेकिन शिक्षित होते हुए भी नारी पात्र भारतीय आदर्शों के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। ये नारी पात्र सामाजिक नियमों, मर्यादाओं एवं विधानों के प्रति न्यून या अधिक रूप से आस्था व्यक्त करती हुई दिखाई देते हैं। ‘सिन्दूर की होली’ में चन्द्रकला रजनीकांत को पहली बार देखकर ही उसके शादीशुदा होने के बावजूद उसकी ओर आकर्षित होती है। वह इस प्रथम दर्शन के प्रेम को ही महत्व देती है। ‘मुक्ति का रहस्य’ में आशा देवी का चरित्र भारतीय नारी का विशिष्ट चरित्र है जिसमें स्त्री सुलभ करुणा, दया, स्नेह और भी तरंगायिन हो उठा है। वह

उमा शंकर से प्रेम करती है। मगर उसके हृदय पर उसकी पत्नी का अधिकार देखकर उसकी पत्नी को जहर दे देती है लेकिन उसके बाद पश्चाताप के कारण त्रिभुवन की जीवन संगिनी बन जाती है। इस तरह आशा देवी का चरित्र एक ऐसी भारतीय नारी का चरित्र है जो परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालती है और उनको अपनी नियति स्वीकार कर लेती है।

लेखक ने अपने नाटकों के माध्यम से नारी से सम्बन्धित प्रेम और विवाह की समस्या को उजागर किया है। लक्ष्मी राय के अनुसार, “मिश्र के नाटकों में नारी चरित्रों को वैवाहिक आदर्शों की अंधभक्ति और उनके कृतज्ञता से नहीं जोड़ा जा सकता, वे सर्वत्र अपने स्वाभिमान और व्यक्तित्व की रक्षा करती हुई प्रेम और विवाह के बन्धनों को स्वीकार करती हुई दिखाई देती है।”² ‘संन्यास’ नाटक में मालती विश्वकांत से प्रेम करती हुई रमाशंकर से प्रेम के लिए इसलिए उन्मुख होती है कि विश्वकांत के प्रति उसके प्रेम का आधार वासना एवं यौन सम्बन्धों की इच्छा थी। वह विश्वकांत से प्रेम करती है। उसने स्वयं स्वीकार किया है, “सुन्दर भोजन व वस्त्र पर जिस तरह गवारों की तबीयत चल जाती है, उसी तरह हम दोनों की तबीयत हम लोगों पर नहीं चल पड़ी थी। जब जरूरत पड़े तब घर तब रात-दिन उसी की चिंता में पड़े रहना और उसे प्रेम का नाम देना यही पाप है।”³ वह रमाशंकर को विवाह के लिए प्रेरित करती हुई कहती है, “मैं वह प्रेम चाहती हूँ जो आजकल की दुनिया में समझदारी के साथ निभाया जा सके।”⁴

लेखक ने विधवा विवाह से सम्बन्धित विषय को अपने नाटकों के माध्यम से उठाने का प्रयास किया है। एक ओर उन्होंने विधवा विवाह का सकारात्मक पक्ष दिखाया है तो वहीं दूसरी ओर विवाह के बाद होने वाली समस्या को भी दर्शाने की चेष्टा की है। उसका विवेचन उन्होंने ‘सिन्दूर की होली’ में मनोरमा और मनोज शंकर के वार्तालाप के माध्यम से दिखाया है। मनोरमा विधवा है लेकिन वह विधवा विवाह के पक्ष में नहीं और इस विवाह को प्रकृति के अनुकूल नहीं मानती है क्योंकि उसका मानना है कि विधवा विवाह से प्रेम में एकरूपता के स्थान पर सन्देह के अस्तित्व की स्वीकृति है। वह कहती है कि विधवा विवाह के वैधव्य नहीं मिट सकता, “वैधव्य तो मिटेगा नहीं, तलाक का आगमन होगा। अभी तो केवल वैधव्य की ही समस्या थी अब तलाक की भी समस्या आ रही है।”⁵ नाटक की पात्र मनोरमा उपभोग को सुख नहीं मानती। वह स्त्री और पुरुष के उस जीवन को सुखमय मानती है जिसमें सामंजस्य हो, जीवन का आदर्श हो, चाहे विधवा बुराई ही क्यों न हो। लेखक ने विधवा विवाह का विवेचन आदर्शवादी सिद्धान्त के स्तर पर किया है। वे कहते हैं कि नारी में प्रेम ही सत्य नहीं होता। स्वाभिमानपूर्ण जीवन की चाह भी सत्य है परन्तु फिर भी इस आदर्श को निश्चित एवं सुदृढ़ कर देना कम महत्त्व की वस्तु नहीं है। नाटककार ने एक भारतीय नारी के त्याग और तपस्यामय जीवन को मनोरमा के चरित्र द्वारा अंकित किया है। वे भारतीय रूढ़िवादी आदर्श का प्रतीक है। एक स्थान पर इस आदर्श को दर्शाते हुए मनोरमा मनोज से कहती है, “अगर तुम मेरे प्रेम का अर्थ समझ सको.... मुझे इसका अवसर दोगे, मैं तुम्हें अपना दुल्हा नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूंगी।”⁶ मनोरमा विवाह तो नहीं करना चाहती लेकिन वह शारीरिक सम्बन्धों की अपेक्षा अन्तरात्मा के सम्बन्धों को महत्त्व देती है। वह मनोज का हाथ पकड़ नये आदर्शों में उभरना चाहती है। वह सामाजिक समस्या को अध्यात्मिक परिवेश में देखना चाहती है। इसी सन्दर्भ में मनोरमा कहती है, “मैं विधवा हूँ और तुम को भी विदुर होना होगा और इस प्रकार हमारा सम्मिलन एक जीवन का नहीं अनेक जीवन का होगा।”⁷ इस कथन से स्पष्ट है कि मनोज और मनोरमा एक-दूसरे के प्रति आकर्षित तो हैं लेकिन मनोरमा अपने जीवन को आदर्श मोड़ देने की खातिर इससे विवाह नहीं करना चाहती। इस प्रकार नाटककार मिश्र जी ने विधवा सम्बन्धी समस्या पर विचार करते हुए अपने आपको आदर्शवाद के घेरे में बांध कर रखा है।

मिश्र के नाटकों की नारी पात्र पुरुष पात्रों के समान अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखाई देती है। रोटी कपड़े की आवश्यकता के अलावा नारी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करना चाहती है ताकि वह समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। समान अपने अधिकारों की रक्षा के प्रति सचेत दिखाई देते हैं और नारियों की समस्या को भी उजागर करने का प्रयास किया है। वे नारी को पुरुष के सामान अधिकार दिलाना चाहते हैं। ‘संन्यासी’ नाटक में बताया गया है कि किरणमयी अपनी विषम एवं असंगत वैवाहिक जीवन को भली-भाँति परखती है। इस परख में वह अपने वृद्ध पति को देखकर कहती है। बेजोड़ चीजों का मिलना स्वाभाविक नहीं होता है।”⁸ इस तरह वह पुरुष की वासना की कटु आलोचना करती है। उसे पति की दासी

के रूप में उसके सुख भोग की सामग्री बनने की परम्परागत धारणा कदापि स्वीकार्य नहीं। इसलिए वह पति की वासना, नयी चेष्टाओं के प्रति क्षोभ एवं असंतोष व्यक्त करती हुई दिखाई देती है। 'राजयोग' की चम्पा के मन में अपने पति शत्रु सूदन के कामुक व्यवहार के प्रति भी कटु प्रतिक्रिया होती है। वह शत्रु सूदन से कहती है। "भ्रम और मिथ्या की भाषा छोड़कर यों कहें कि मेरा काम है रात को आपकी सेज पर और दिन को कठपुतली की तरह आपके इशारे पर..... आपकी मजी पर अपने को छोड़ देना..... अपने शरीर को.... अपने हृदय को, अपनी आत्मा को।" इस प्रकार शत्रु सूदन का चम्पा के प्रति रूढ़ वासना परक दृष्टिकोण उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को ठेस पहुंचाता है। उक्त उदारहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र के नारी पात्र अपने अधिकारों के प्रति सावधान एवं सचेत है।

हमारे भारतीय समाज में एक ओर मातृ शक्ति के रूप में नारी की पूजा की जाती है और वहीं दूसरी ओर नारी का आदर्श पतिव्रता धर्म पर आधारित है जो भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी और पुरुष को एक अदृष्ट स्नेह सूत्र में बांध देती है। मिश्र जी ने जहां एक ओर उक्त प्रकार की महिलाओं को अपने नाटकों में दर्शाया है वहीं उन्होंने स्त्री पात्रों के माध्यम से तीसरे प्रकार की महिलाओं को दर्शाया है जो अपने रूप के प्रभाव को दर्शाती है। 'वैशाली में बसंत' की अम्बापाली के लावण्य से लोग प्रभावित है। नाटककार ने नारी जीवन की असहाय स्थिति का चित्रण भी अपने नाटकों के माध्यम से किया है। उन्होंने यह दर्शने का प्रयास किया है कि समाज में यदि एक स्त्री अकेली रहती है चाहे वह स्वावलम्बी ही क्यों न हो। लोग उसमें अनेक प्रकार के लांछन लगा कर उसे जीने नहीं देते और उसे हीन दृष्टि से देखते हैं अर्थात् यदि स्त्री को सम्मान के साथ समाज में रहना है तो उसे किसी न किसी पुरुष के साथ रहना ही होगा। नारी जीवन की असहाय स्थिति का चित्रण 'सन्यासी' नाटक में किया है। नाटक की पात्र किरणमयी एक जगह पर कहती है, "मेरी तबीयत तुम्हारे साथ कैसे लग सकेगी- तुम्हीं सोचो, मैं तुम्हें देखती हूँ तो पिता जी याद पड़ते हैं। लेकिन एक बात है, मेरी तबीयत कहीं भी किसी भी जगह लग ही नहीं सकती, मैं बहुत जल्दी उब जाती हूँ। लेकिन कहीं रहना तो पड़ेगा, इसीलिए तुम्हारे साथ रहना ठीक है। समाज उंगली नहीं उठा सकेगा, हमारी और तुम्हारी इसी में भलाई है।" भारतीय समाज में अबला नारी की जो अवस्था है उसका चित्रण यहां मिलता है और साथ ही ऐसी व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना और उससे चाहने वाली नारी की तड़प भी दर्शाती है। मिश्र जी का मानना है कि नारी की दयनीय स्थिति का कारण केवल पुरुष ही नहीं है बल्कि इसके लिए स्वयं स्त्री भी जिम्मेदार है। नारी भी उसका कारण है। पुरुष का दोष केवल इतना है कि उसने नारी को सदैव ही अपना गुलाम बनाया। लेकिन नारी ने भी कभी अपनी आत्मा की आवाज़ और शक्ति को नहीं पहचाना। अब ज्यादा समय तक नारी पुरुष के अधीन नहीं रह सकती। उसे स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं करना है बल्कि समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान भी निर्धारित करना है। सिंदूर की होली में पात्र मनोरमा का कहना है कि "पुरुष के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है नारी को। स्त्री जीवन का सबसे सुन्दर और कठोर सत्य यही है। स्त्री इसलिए दुःखी है। पुरुष इसी को स्त्री का अधिकार समझता है और इसीलिए पुरुष और स्त्री के अधिकारों की अलग-अलग पैमाइश हो रही है।"

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नाटककार मिश्र के नाटकों में नारी संघर्ष एक केन्द्रीय विषय है। वे सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक प्रबन्धन में नारी की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। इनके नाटक में नारी अपने अस्तित्व की खोज करती है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है। लेखक नारी के सामर्थ्य, संघर्ष और उसकी पहचान को महत्व देते हैं। वे भारतीय समाज में नारी की स्थिति और उसके अधिकारों के प्रति एक गहरी समझ विकसित करने का प्रयास करते हैं।

सन्दर्भ

1. महादेवी वर्मा, शृंगला की कड़ियां, इलाहाबाद भारती भण्डार, 1942, पृ. 36
2. लक्ष्मी राय, आधुनिक हिन्दी नाटक चरित्र सृष्टि के आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979
3. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सन्यास, साहित्य भवन लिमिटेड, पृ. 180

4. वही, पृ. 16
5. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृ. 69
6. वही, पृ. 48
7. वही, पृ. 59
8. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सन्यासी, इलाहाबाद साहित्य भवन लिमिटेड, पृ. 112
9. लक्ष्मीनारायण मिश्र, राजयोग, भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ. 22
10. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सन्यासी, साहित्य भवन इलाहाबाद, पृ. 89



रिश्तों के सफल कारीगर : उपन्यासकार लाजपत राय गर्ग (अमावस्या में खिला चाँद उपन्यास के सन्दर्भ में)

डॉ. पान सिंह

सह-आचार्य हिंदी विभाग,
हिमाचल प्रदेश, विश्वविद्यालय, शिमला-5

सबसे खतरनाक है रिश्तों को सहेजना, रिश्ते काँच के शीशों जैसे होते हैं। रिश्तों को बांधकर रखना बहुत ही कठिन काम है। आप थोड़ा-सा भी चूके कि रिश्ते खत्म। आप रिश्तों एवं नातों के प्रति सचेत रहें, एकाग्र रहें तो रिश्ते बंधे-बंधाए रहते हैं। रिश्ते मान-सम्मान, विश्वास, समर्पण, प्रेम, स्नेह, दया, करुणा, निष्ठा एवं शिष्टा की मांग करते हैं। रिश्तों में जहाँ भी ये भाव मिल जाएँ, रिश्ते वहाँ स्वयंमेय ही स्थापित हो जाते हैं। रिश्तों में जाति, धर्म, संप्रदाय कोई मायने नहीं रखते और न ही रिश्तों में परिवार, वंश, खून या रिश्तेदारी ज्यादा महत्व रखते हैं। कभी-कभी तो पराए अपनों से बढ़कर हो जाते हैं। यहाँ बात हो रही है रिश्तों एवं नातों के कारीगर उपन्यासकार लाजपत राय गर्ग की जिनके उपन्यासों के केंद्र में रिश्ते होते हैं। इन्हीं रिश्तों को वे परिवार, परिवेश, समाज और देश के सांचे में ढालते हुए अपना सृजन करते हैं। लाजपत राय गर्ग हरियाणा के पंचकूला से संबंध रखते हैं और सिविल सर्विस से सेवानिवृत्त हैं जिनके अब तक छह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यास- 'कौन दिलों की जाने, पल जो यूँ गुजरे, पूर्णता की चाहत, प्यार की इंद्रधनुष, अनूठी पहल तथा अमावस्या में खिला चाँद' आदि हैं। इनका पहला ही उपन्यास 'कौन दिलों की जाने' बहुत चर्चित उपन्यास रहा है। उसके उपरान्त कथाकार लाजपत राय गर्ग ने हिंदी साहित्य को एक से बढ़कर एक उपन्यास प्रदान किए हैं। विभिन्न पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित कथाकार लाजपत राय एक कहानीकार, लघुकथाकार, उपन्यासकार और अनुवादक की भूमिका में हिंदी साहित्य में अपना स्थान बनाने में सफल रहे हैं। उनका कथा सृजन उनकी दूरदर्शिता, उनके जीवन अनुभव का ही परिणाम है।

उपन्यासकार लाजपत राय गर्ग अपने कथानक पारिवारिक जीवन और सामाजिक स्थितियों-परिस्थितियों, घटनाओं एवं संदर्भों से उठाते हैं और समाज के आमजन को एक निश्चित संदेश देते हैं। उनके कथाक्रम में परिवार, परिवेश, समाज, देश, सभ्यता-संस्कृति को विशेष रूप से आते हैं और उस समाज की महत्वपूर्ण कड़ी नारी उनके उपन्यासों के केंद्र में है। पारिवारिक रिश्तों-नातों को सींचते हुए वे विभिन्न आयामों को अपने उपन्यासों में स्थान देते हैं। लाजपत राय गर्ग के उपन्यासों में विविध विषय और विमर्श देखने को मिलते हैं, जिनमें नारी विमर्श मुखर है। नारी सशक्तिकरण से संबंधित घटनाक्रम उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। नारी के प्रति यह उनका सम्मानीय भाव ही है। इसी नारी को अपनी कथा के केंद्र में एक माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका और कई अन्य रूपों में वर्णित करते हुए पारिवारिक रिश्तों की कसौटी में रखते हैं। वे अपनी कथा पात्रों का सृजन अपने आसपास के परिवेश से चुनते-बुनते हैं, यहाँ तक कि उनके उपन्यासों में स्वयं का जीवन, मित्र, रिश्तेदार एवं अन्य जानने वाले लोग उनकी कहानियों में शामिल रहते हैं।

आलोच्य उपन्यास 'अमावस्या में खिला चाँद' भी पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों का ही ताना-बाना है, जिसमें नारी केंद्र में है। नारी विमर्श को सामने रखकर लिखा गया यह उपन्यास भी नारी दुखों की कथा-व्यथा कहता हुआ नारी सशक्तिकरण

का स्पष्ट उदारहण साबित हुआ है। लाजपत राय अपने उपन्यासों में ऐसे पात्रों का सृजन करते हैं जो उपन्यास के उद्देश को स्पष्ट करते हुए स्वयं ही कथा को अंत तक ले जाते हैं। उनके पात्र आगे-आगे और कथासूत्र उनके पीछे-पीछे। आलोच्य उपन्यास में शीतल, प्रवीण और प्रिंसिपल मानवेन्द्र के त्रिकोणमयी रिश्ते से उपन्यास अपनी उद्देश्यपूर्ति करता हुआ सार्थकता के निकष पर पहुंच जाता है। लाजपत राय के उपन्यासों के पात्र शिक्षित होते हैं और अच्छे स्टेड्स वाले होते हैं। 'अमावस्या में खिला चांद' उपन्यास में भी उन्होंने जिन पात्रों को सृजित किया है वे सभी पढ़े-लिखे हैं। इस उपन्यास का पात्र प्रवीर उच्च शिक्षण में अधिकारी होता है। मानवेन्द्र प्रिंसिपल है, शीतल का पिता अध्यापक हैं। शीतल भी प्राध्यापक है।

उपन्यासकार लाजपत राय गर्ग प्रयोगशील रचनाकार हैं। वे अपने उपन्यासों के कथाक्रमों में विभिन्न प्रयोग करते रहते हैं। ऐसा ही उनका एक प्रयोग है जो उनके बहुत-से उपन्यासों में देखने को मिलता है। वह प्रयोग है- पात्रों का अपनी बात को पत्रों के माध्यम से कहना। वर्तमान जीवन में पत्रों के खत्म होते हुए महत्त्व पर बल देते हुए उन्होंने बताया है कि पत्र हमारे जीवन के लिए कितने आत्मीयता के प्रतीक थे। उन्होंने पत्रों की गरिमा, महत्व एवं स्थायित्व की ओर भी संकेत किया है। इस उपन्यास में भी उन्होंने दो-तीन पत्रों का उल्लेख किया है। आलोच्य उपन्यास का आरंभ भी उन्होंने शीतल द्वारा प्रवीण को लिखे पत्र से ही किया है। सोशल मीडिया के प्रभाव से प्राचीन पत्र-परम्परा का व्यावहारिक रूप का तो अंत लगभग हो ही चुका है, लेकिन प्रशासनिक पत्रों का प्रचलन अभी भी है, जिसका अधिकतर रूप सॉफ्ट ही रहा है। संत कवि सूरदास द्वारा रचित काव्य में कृष्ण का उद्धव के माध्यम से गोपियों को भेजे गए पत्र का संवाद अपने आप में अनुूठा है। एक अद्वितीय प्रेम संदेश का इतना रोचक और अतुलनीय वर्णन आज भी हिंदी साहित्य में अपना बहुमूल्य स्थान रखता है।

लाजपत राय गर्ग ने उपन्यास के कथानक में बताया गया है कि शीतल रिसेप्शन गर्ल के रूप में एक होटल में कार्य करती है। वह प्रवीर की सहपाठी रही है। लेखक प्रवीर के माध्यम से उसके उच्च चरित्र और आत्मस्वाभिमानी होने का उदाहरण देते हुए लेखक लिखते हैं- 'साहित्यिक अभिरुचि तथा वजीफा मिलने के कारण अधिकांश लड़कियों का झुकाव मेरी ओर रहता था, लेकिन शीतल एक ऐसी लड़की थी जिसे कभी मेरी ओर दोस्ती का हाथ नहीं बढ़ाया था। महीना, दो महीने, तीन महीने गुजर गए। कहते हैं न कि अप्राप्य ही अधिक काम्य होता है। आदमी उसी की तरफ अधिक आकर्षित होता है जो उसे दूर होता है।' आगे चलकर दोनों के बीच की यही दूरी दोनों के रिश्तों की आत्मीयता, भाईचारे और मान-सम्मान की नींव बनेगी। दोनों में भाई-बहन का रिश्ता बनता है, पारिवारिक रिश्ता भी।

प्रवीर अपनी सहपाठी शीतल के लिए जो करता है शायद ही आज के युग में यह कल्पना साकार हो। लाजपत राय ने पुरुषों का स्त्री देह की भूख को नजर अंदाज करते हुए इस कथा के माध्यम से एक आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है। शीतल अचानक अपने सहपाठी प्रवीर को मिलकर अपनी व्यथा बयान करने की सोचती है। दोनों का मिलन होता है। स्त्री-पुरुष की मित्रता को समाज कभी स्वीकार नहीं करता, लेखक द्वारा शीतल और प्रवीर की इस मित्रता के माध्यम से संकुचित समाज को एक संदेश दिया गया है। प्रवीर कहता है- 'शीतल पत्र के अंत में तुमने क्यों लिखा- कभी रही मित्र, तुम मेरी मित्र थी, हो और सदैव रहेगी। मित्र सदैव एक-दूसरे की सुख-दुख के साथी होते हैं।' इसी आत्मीयता और विश्वास के आधार पर वह प्रवीर के पूछने पर वह अपनी व्यथा बताती हुई कहती है कि 'तुम्हें तो पता ही है कि फाइनल एग्जाम से पहले ही मेरी सगाई हो चुकी थी।' 'हालांकि जिससे शादी होनी थी वह लड़का शादी के लायक नहीं था, बस यह समझ लो कि उस समय मेरा दबूपन ही मेरी जिंदगी का नासूर बन गया।' शीतल अपने मित्र प्रवीर को बताती है कि मैंने मम्मी से मदन के संबंध में बात की थी। मैंने बताया था कि वह मुझे कुछ अजीब लगता है। लेकिन मम्मी ने यह कहकर चुप करा दिया कि उसकी पढ़ाई लड़कों के कॉलेज में हुई है। 'मम्मी, मदन में मुझे कुछ कमी लगती है। वह अपनी मम्मी पर निर्भर लगता है, उसके बिना कुछ भी करने में सक्षम नहीं लगता। मम्मी ने मुझे यह कहकर चुप करा दिया कि कई लड़के ऐसे ही होते हैं जिन्हें लड़कियों से मिलने का मौका नहीं मिला होने के कारण वे अकेले में लड़की से बातचीत करने में शरमाते हैं। मदन की पढ़ाई लड़कों की कॉलेज में हुई है।'

उपन्यासकार ने जो दहेज प्रथा की बात उठाई है वह पुराने समय में एक विकट समस्या थी, लेकिन समय के साथ

बदलाव हुआ है। यह नहीं माना जा सकता है कि यह समस्या जड़ से खत्म हो गई है। समाज, देश और जन कहीं से कहीं पहुँच गया लेकिन कहीं-कहीं यह प्रताड़ना सुनने को मिल ही जाती है। बेशक आज लड़कियाँ आधुनिक हो गई, पढ़-लिख गई लेकिन शोषण आज भी चल रहा है। उसका रूप-स्वरूप और स्तर अवश्य बदल गया है। शीतल की शादी मदन के साथ हुई थी जो उससे भी कम पढ़ा-लिखा था। उसने बी.ए. पास की थी। वह कुछ नहीं करता था केवल अपने पापा के साथ दुकान में ही बैठता था। शीतल अपने शोषण की गाथा बताती है-“अनिच्छा के साथ मैंने विवाह की रस्में निबाहीं। नया घर, अपना घर बसाने का सपना संजोए मायके से ससुराल आई। कहावत सुनी होगी तुमने, कुँवारी के सौ सपने, ब्याही के सौ मसले। कुछ दिन ठीक-ठाक गुजरे, लेकिन शीघ्र ही मेरे सपनों के रंग काले-स्याह होने लगे। मैंने महसूस किया कि मदन को हर काम के लिए पैसे पापा से माँगने पड़ते हैं। उसकी अपनी जेब हमेशा खाली रहती थी।... इतना ही होता तो भी शायद चल जाता, लेकिन हफ्ता भी नहीं गुजरा था कि टी.वी. देखने के बहाने मदन के मम्मी-पापा रात को बारह-एक बजे तक हमारे बेडरूम में बैठने लगे। इन परिस्थितियों में मदन के साथ बातचीत तो हो ही नहीं पाती थी। एक बार मैंने मदन को कहा कि मम्मी-पापा को कहे कि हमें भी प्राइवसी चाहिए तो कहने लगा कि अपने पापा को कह कि एक और टी.वी. दे देगा।... प्रवीर, यह शुरुआत थी उनके लोभ-लालच की।”

दहेज प्रथा को लेकर शीतल को मदन की मम्मी का परेशान करना और उससे मायके से कई चीजों की माँग करना दहेज प्रताड़ना का ही उदाहरण है जो उपन्यासकार ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यहाँ लाजपत राय गर्ग ने शीतल के माध्यम से बेटियों को यह भी बताने का प्रयास किया है कि बेटियों को वही करना चाहिए जो शीतल ने किया। उसने अपने माता-पिता को कष्ट देने की वजाय अपने घर की आर्थिक स्थिति को देखते हुए जब नौकरी करने की बात की। उसके ऐसा करने पर “ससुर को तो जैसे मिर्गी के दौर पड़ने लगे। वह अनाप-शनाप बकने लगा-शूने हमें अपने पापा की तरह भिखमंगे समझ रखा है। हमारे पास इतना कुछ है कि मदन जिन्दगी भर भी कुछ ना करे तो भी ऐश से जीवन बसर कर सकता है। हमें नहीं चाहिए तेरी नौकरी की कमाई।” शीतल एक आत्मसम्मानी लड़की थी जब उन्होंने उसके पापा को गाली निकली तो उसके मुँह से निकला- “इतना कुछ यदि आपके पास है तो एक टी.वी. और एक स्कूटर लाने के लिए रोज क्यों कहते हो, क्यों मुझे चैन से नहीं रहने देते।”

शीतल बताती है कि ससुर को मेरी बात चुभ गई और उसने उसी वक्त मदन को कहा-“बेटे मदन, इस नामुराद-कम्बख्त को अभी घर से निकाल दे। मैं इसकी शक्ल नहीं देखना चाहता...।” इतना ही नहीं, उसने कुछ ऐसी गालियाँ भी दीं, जो मैं दुहरा नहीं सकती। मदन जिसका अपना कोई वजूद ही नहीं था, ने अपने पापा की शह पर मेरी बाँह पकड़ी और बाहर की ओर ले जाने लगा। मैंने अपनी बाँह छुड़ाते हुए कहा-“मेरी बाँह छोड़ दो। मैं खुद नहीं चाहती कि तुम जैसे नीच लोगों के साथ रहूँ। जो बातें तुम लोगों ने हमारे से छिपाई थीं, मुझे पता चल चुकी हैं। मुझे पता है कि तुम लोगों की नीच हरकतों के कारण ही तुम्हारी दो बार सगाई टूटी थी।” मेरा इतना कहना था कि ससुर ने टेबल से उठकर मेरे पास आकर दो थप्पड़ रसीद कर दिए। जब तीसरे थप्पड़ के लिए उसका हाथ उठा तो मैंने बीच में ही पकड़ लिया। इसपर मदन की मम्मी ने बेलन से मेरी पीठ पर वार कर दिया और मदन ने भी एक-दो लात घूँसे चला दिए। पीठ पर बेलने की चोट से मेरी चीखें निकल गई। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और मैं निढाल होकर फर्श पर गिर पड़ी। और जब मुझे होश आया तो मैं अपने घर चारपाई पर पड़ी थी। बेलन की चोट से रीढ़ की हड्डी में हेयर लाइन फ्रैक्चर आ गया था...’ इतना कहकर शीतल फिर विगत की वीथियों में खो गई।’

जब काफी देर तक शीतल चुप रही तो प्रवीर कुमार ने कहा-‘बहुत बुरा हुआ तुम्हारे साथ। कहते हैं An educated bride is a lot better than a billion currency (एक शिक्षित दुल्हन करोड़ों रुपये से भी अधिक मूल्यवान होती है), लेकिन आज भी हमारे समाज में ऐसे निर्दयी लोग हैं जिन्हें पढ़ी-लिखी लड़की की कद्र नहीं है।’

लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि आप सही हैं तो आपके लिए सारा समाज भी सही है। आप अपने आत्मसम्मान के साथ आगे बढ़ते हैं तो आपका जीवन सफलता की ओर बढ़ता जाता है। जैसा कि शीतल का जीवन बदला।

प्रवीर द्वारा शीतल को एक कॉलेज में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त करवाना और वहाँ प्रिंसिपल द्वारा उससे शादी करने का प्रस्ताव उसके दुखों का अंत था। दुनिया की तरह-तरह की बातों को अनदेखा कर अपने कार्य के प्रति समर्पित होकर शीतल अपना कार्य करती रही और अंत में अपने अस्त-व्यस्त जीवन से पार पा जाती है।

लाजपत राय ने इस उपन्यास में विविध विषयों को उठाया है। सिख इतिहास और साहित्य की बात की है। उनके धार्मिक स्थलों की यात्रा के माध्यम से जनसेवा का संदेश भी दिया है। जलियोंवाले बाग़ में हुए नरसंहार के संबंध में भी बताया है। सिख समुदाय का अंधे, बहरे, लूले, लंगड़े, तथा अन्य रूप से दिव्यांगों के प्रति सेवा का भाव अति सराहनीय है। इस हेतु पिंगलवाड़ा में एक आश्रम बनाया है। जहाँ इनके खाने-पीने, रहने, पढ़ने तथा चिकित्सा संबंधी सभी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त लेखक ने हिन्दू और सिखों के भाईचारे को भी यहाँ दर्शाने का प्रयास भी किया है। रक्तदान का संदेश भी उपन्यास के माध्यम से देने का प्रयास किया है। शीतल के पिता और प्रिंसिपल के माध्यम से गुरु-शिष्य परम्परा और उसका निर्वहन का वर्णन भी उपन्यास में दर्शाया गया है। महाराजा रणजीत सिंह के माध्यम से उनके कुशल प्रसाशक, न्यायप्रियता, सर्वहितकारी, गरीबों और दीन-दुखियों का मसीहा होने का संदेश दिया है। लेखक उपन्यास में प्रवीर के माध्यम से लिखते हैं- महापुरुषों के जीवन की घटनाओं से सही सबक लेकर हम अपने जीवन में बहुत अच्छे काम कर सकते हैं और देश को प्रगति और विकास की नई ऊँचाइयों की ओर ले जा सकते हैं।’

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रिश्तों के कारीगर उपन्यासकार लाजपत राय गर्ग ने इस उपन्यास के माध्यम से बनते-बिगड़ते रिश्तों को सहेजने का प्रयास किया है। वे जानते हैं कि रिश्ते एक व्यवस्थित परिवार और परिवेश के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं। वे यह भी जानते हैं कि इन्हीं शिष्टाचारों और आदर्शों पर आधारित समाज एक आधुनिक और विकसित देश की आधारभूमि का निर्माण करता है। विभिन्न विषयों और कथाओं को संजोकर स्त्री विमर्श, सशक्तिकरण, स्त्री के स्वाभिमान, आत्मसम्मान और आत्मगौरव गाथा को कहना उपन्यासकार का ध्येय रहा है। लाजपत राय की भाषा शैली, बिम्ब और प्रतीक बड़े ही सरल, सहज और स्वाभाविक हैं। नए शब्द निर्माण उनके लेखन में देखे जा सकते हैं। एक साहित्यिक हिंदी भाषा का प्रयोग इनके लेखन में दिखाई देता है। स्त्री-पुरुष समाज में समानता, समन्वयता का भाव उनके उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अंततः कहा जा सकता है कि अमावस्या में खिला चाँद रिश्तों एवं नातों का सफल दस्तावेज़ है और लाजपत राय गर्ग इन रिश्तों और नातों के पारखी और कारीगर हैं।

संदर्भ

1. लाजपत राय गर्ग, अमावस्या में खिला चाँद, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2023, पृष्ठ 17-18
2. वही, पृष्ठ 20
3. वही, पृष्ठ 22
4. वही, पृष्ठ 22
5. वही, पृष्ठ 22
6. वही, पृष्ठ 23
7. वही, पृष्ठ 25
8. वही, पृष्ठ 25
9. वही, पृष्ठ 25
10. वही, पृष्ठ 25
11. वही, पृष्ठ 62



MASCULINE DOMINANCE AND DECLINE IN CHILD SEX RATIO IN HARYANA

Santosh Kumar

Research Scholar in Geography
Department of Social Science
Baba Mastnath University, Rohtak

Dr Satyaveer Yadav

Prof. of Geography
Department of Social Science
Baba Mastnath University, Rohtak

Abstract:

Most of the societies in India are traditional societies and due to low levels of literacy in the society males and females are not considered equal. In many studies by demographers and Sociologists is found that masculine dominance or in other words son preference is the single most causative factor in the decline of the sex ratio in many states of India. It is also equally true that along with Son preference in the society prevailing socio-cultural, economic, and political issues are also very significant factors that have led to the decline of the sex ratio in many states including in Haryana.

Over the last few Census enumerations and counting Haryana has emerged as the epicenter of declining sex ratio and other problems of lower status of women in the society. In this paper, an attempt has been made to understand the questions revolving around the declining sex ratio and status of women. The Census of India has acted as the largest data source for the paper, moreover, maps and diagrams have acted as data representative methods.

Paper concluded that the society of Haryana is traditional and dominated by son preference therefore it is causing a general decline in the sex ratio of the state. To rectify the sex ratio and general status of women in society, the government has taken many steps and it is evident from the data that the situation is improving slowly and steadily by working to the mindset of the people of Haryana.

Key-words:

Masculine and feminine perspective, Traditional Society, Women's Rights.

Introduction:

In social science study of various manifestations of man lies at the core of every social science including geography. In Geography, various human and natural phenomena are studied in their spatial and temporal perspective. Human society is composed of males and females. Both sexes have their perspective of thinking and doing work, and each perspective carries either masculine or feminine identities. These identities are visible in every sphere of life and it is more profoundly diverged on male-female-related issues. Certain questions of social relevance have very different interpretations

by males in comparison to females. For example, the question of the status of women and their suffering is explained by males in a fashion and it is explained by females in a somewhat different manner. At times, the views expressed by masculine identity are contrary to the feminine perspective.

Typically, the concept of masculine and feminine can be well understood in certain societal and cultural-economic contexts. As their general roles, and behavior change with the level of education and levels of economic development of the country. It is quite evident that with the increase in the level of education in the Western world and given their higher economic development, their approach towards women's rights is more accommodative. On the contrary, the status of women and their acceptance is very weak in societies that are lagged in education and economic development. Here, it must be accepted that Masculine or Feminine taints are not carried forward from generation to generation because these perspectives are largely the outcome of family and social norms prevalent during times.

In Geography also like other social sciences, the concept of feminine identity came into being in the decade of 1970s in the Western world. From there, a new debate has emerged to content male-only perspectives on every social issue. Feminine viewpoint started looking at all the social issues from a new angle and with the new vision, new explanations of problems in the society emerged and this perspective also suggested newer solutions. The debates about the status of women were more profound in the Western world later on feminine ideology also started gaining prominence in the Third World. Historically, masculinity is largely explained by the major characteristics of Leadership & Dominance, Provider Role in the family, Strength & Emotional Control, and Physicality. Independence & Self-Reliance. On the contrary to this, femininity is explained by nurturing & caregiving, sensitivity & emotional expression, and passivity & submissiveness. And under the virtue of these basic taints, both have their explanation about the social reality.

Objectives of the Study

The present paper has the following objective:

- A. Understand masculine and feminine perspectives in the analysis of Child Sex Ratio.
- B. To analyse the spatial and temporal distribution of sex ratio in Haryana.

Study Area

The state of Haryana in India is located between 27°39' to 30°56'N latitude and 74° 27' to 77°36'E longitudes, constituting an area of 44,212 sq. km. The economy of Haryana has undergone many changes since its formation but is still largely regarded as the agricultural superpower of India. Blessed with favourable agro-climatic conditions it has established newer benchmarks in production and yield in terms of all the crops grown in the region. The use of green revolution technology has brought many fruits to the people of Haryana. Off-late higher dependence on groundwater has brought some question marks over the sustainability of agriculture in the study area. The depleting water table in the south and the rising water table in central-north Haryana has emerged as twin challenges in terms of the use of groundwater. It is a well-known fact that Haryana is an economically developed state; ironically, it has not performed well in terms of social development. It is reflected through the decline in the sex ratio that the overall general status of women is poor in the state, and because of that understanding of the sex ratio trend in the state is required.

Social and Cultural Perspectives and problem of decline in Child Sex Ratio

Every society is a complicated framework that has changed continually as a result of interactions between cultures and other societies. Many societies are thought to be inward-looking, having minimal connections with other social groupings. In a similar vein, many additional cultures are likewise considered traditional due to their high levels of rigidity and lack of responsiveness to modernisation. Society of India is also largely in-bound and it has a slow slow-changing nature, therefore, it is regarded as a traditional society. The context of the Child Sex Ratio and its understanding can have two perspectives such as feminine and masculine viewpoints. And in most cases, these perspectives are contrary and competing with each other.

The term “masculine dominance” describes the attitudes and social systems that put men in positions of leadership and power while frequently marginalizing women and other gender identities. Whereas, the feminine perspective puts forward the female angle of all the problems and their solution. Here, it must be noted that in most traditional societies’ the masculine perspective in social order and social behaviours is more powerful. And there are numerous ways in which this dominance can appear.

Cultural Norms and Stereotypes: In some countries, the heaviest gender stereotypes operate with masculine traits on top of the scale. For example, women are expected to nurture, homemaker, and provide, while men take the roles of heads of the families, decision-makers, and enforcers of the family welfare.

Patriarchal Systems: Many parts of the world are still governed by regions of social, political and economic dominance controlled by patriarchs. Often the result of such a system is gender inequality with the reverse applying to males ascribed greater opportunities when compared to females in terms of employment, health care and education (Kaur, 2010). **Sexism and Gender Discrimination:** Holding biases and treating people with preconceived ideas, to the belief of a man’s superiority, makes multiply underestimate the impact of violence against women, discrimination, low wages, limited political activities, and weak self-governing actions of women.

Preference for Male Offspring: The masculine-dominated societies may favour son’s births. This is based on the traditional perspective which argues that fathers are notionally more “helpful” in parenting and on social and economic matters, and will pass on family assets, name, and wealth.

In this paper, an attempt has been made to understand how masculinity and its rampant prevalence in society in the form of son preference of the family members have shaped the child sex ratio in the state of Haryana.

Data Source and Methodology

The present paper is an attempt to understand the dynamics of the child sex ratio in the state of Haryana. Data about the sex ratio is obtained from the census of India for various years. Moreover, an attempt has been made to have a comparative analysis of the sex ratio between states in the region. For depicting results obtained after analysis maps and various forms of diagrams have been used to showcase the result more cognitively. Similarly, percentage growth and average have served as data calculation methods to have a better understanding of the concept. To understand the trends in the sex ratio of different states regression equation has been used to predictive importance.

Results and Analysis

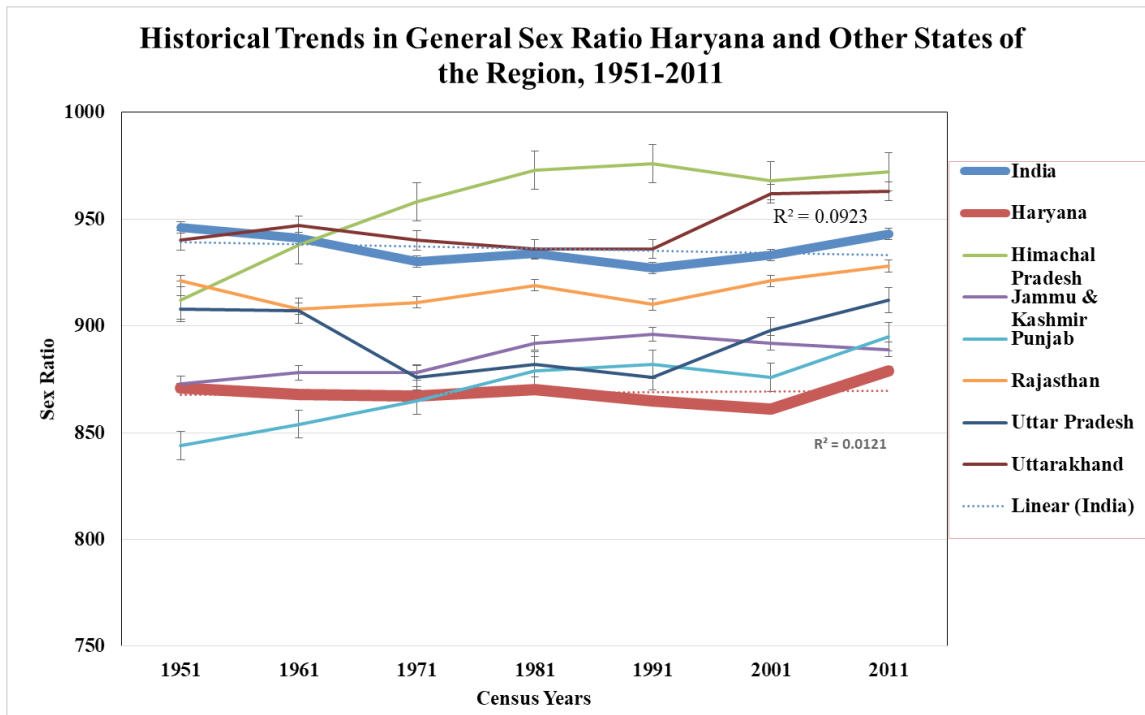
As it has been discussed earlier the social makeup of north-western India is traditional and being a tradition-based society strong son preference is found in this part of India. To better understand the situation of Haryana in its regional perspective in Table 1 an attempt has been made to showcase how Haryana has performed in a regional scenario. By and large, in North-western Indian states as evident from Table 1 status of women as indicated by the sex ratio is not very high. In states like Haryana Jammu and Kashmir, the Punjab situation is even more pathetic. In this region, some states such as Himachal Pradesh, Rajasthan and Uttarakhand are better placed in comparison to other states in the region.

Table 1
Historical Trends in General Sex Ratio Haryana and Other Regional States of India

State	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011	% Improvement over the last 60 years
India	946	941	930	934	927	933	943	-0.32
Haryana	871	868	867	870	865	861	879	0.87
Himachal Pradesh	912	938	958	973	976	968	972	6.53
Jammu & Kashmir	873	878	878	892	896	892	889	1.78
Punjab	844	854	865	879	882	876	895	6.06
Rajasthan	921	908	911	919	910	921	928	0.78
Uttar Pradesh	908	907	876	882	876	898	912	0.49
Uttarakhand	940	947	940	936	936	962	963	2.46

Source: Census of India for various years.

Table 1 indicates that all the states in the region have performed better in terms of actual change in general sex ratio between 1951 to 2011, in comparison to India as a whole as during this period India has country witnessed a fall in general sex ratio by -0.32 per cent. It is interesting to note that although states from north-western parts of India have performed better in comparison to changes in sex ratio from 1951 to 2011 data suggests that historically states in north-west



Source: Based upon data collected from Census of India reports for various years

Figure 1

Have a strong bias against women that is shown in the form of a low based general sex ratio from historical times.

It is interesting to note from Figure 1 that even though the overall general sex ratio in India has fallen by a few basic points, on the aggregate level states in the north-western region have not performed well. This figure shows that barring the mountainous states of Himachal Pradesh and Uttarakhand all the other states of the region have sex ratios well below national averages throughout history. As indicated by Figure 1 the performance of the sex ratio of Haryana is most dismal in the region with regression equation value of Haryana $R^2 = 0.0121$.

Investigation about the causes of the decline in CSR in Haryana

The sex ratio is an indicator of social development and overall development of any region. The sex ratio and causes of its declining trend can be attributed to many social, cultural, economic and cultural causes. The child sex ratio, or CSR, tells us how many boys are born for every 1,000 girls in a group of people. In a lot of places around the world countries like China and India, CSR has gone down under compelling social and cultural causes.

In India and the scenario of Haryana the most prominent factor of declining CSR is the prevalence of son preference in the society. Like in many other Asian countries, Indian society has a preference for sons over daughters. It must be understood that the strong son preference is the outcome of many

other factors and problems prevalent in society. These include dowery, violence against girls, and religious cultural and personal preferences towards boys. These causative factors have made girls a burden beast for the family therefore they are less preferred in the family (Vishwanath, 2001).

Over the last few decades advancements in medical and imaging technology have also led to the degradation in figures of CSR. Ultrasound technology is widely used for the determination of the sex of an unborn child and later making decisions as per the sex of the baby. In most cases in families having low literacy and strong son preference daughters are aborted and killed even before they are born. This medical termination of pregnancy due to female fetuses creates a skewed sex ratio in many parts of the country especially in the state of Haryana (Bhalla, 1995). Discrimination against females does not end here, when even after taking all the precautions if a girl child takes birth, they have to face discriminatory behaviour at every step of life. Like allocation of food resources, facilities of education, and involvement in the decision-making of the family are some common places where women are not treated at par with their male counterparts. And views of women are always secondary they just have to obey the decision taken by their fathers, husbands and sons under powerful masculinity their views are largely ignored.

Concerning the causes of the falling sex ratio in India many other factors can also be attributed these include violence against women and the higher cost of marriages including doweries which make girls' birth less preferred and less celebrated in the family and the society. It must be noted that the decline in CSR is the responsibility of all the stakeholders' parents, family, society and the government. All these stakeholders must make decisions that would help increase in sex ratio (Yadav, 2001).

Table 2

Trends in the Deficit of Females in Haryana's Population: 1901-2011

Census Years	Population (Absolute Number)		Deficit of Females		Average Annual Rate of Growth
	Male	Female	Absolute	As % to female Population	
1901	2,476,390	2,146,674	329,716	15.36	-
1911	2,274,909	1,899,768	375,141	19.75	1.4
1921	2,307,985	1,947,907	360,078	18.49	-0.4
1931	2,473,228	2,086,689	386,539	18.52	0.7
1941	2,821,783	2,451,046	370,737	15.13	-0.4
1951	3,031,612	2,641,985	389,627	14.75	0.5
1961	4,062,787	3,527,737	535,050	15.17	3.7
1971	5,377,044	4,659,387	717,657	15.40	3.4
1981	6,909,679	6,012,440	897,239	14.92	2.5
1991	8,827,474	7,636,174	1,191,300	15.60	3.3
2001	11,363,474	9,780,611	1,583,342	16.19	3.3
2011	623,724,248	586,469,174	37,255,074	6.35	2.9

Source: Census of India for Various Years.

Connection between Masculine Dominance and Declining Child Sex Ratio

For the description in the preceding sections of the paper, it is clear that under the compelling forces of male dominance, social demand for son or son preference and higher penetration of medical facilities have caused the decline in CSR over the past many decades. Masculine dominance and patriarchal systems of social makeup have provided immense powers to males leading to son preference have caused the preference for sons over daughters. In Hindu society,

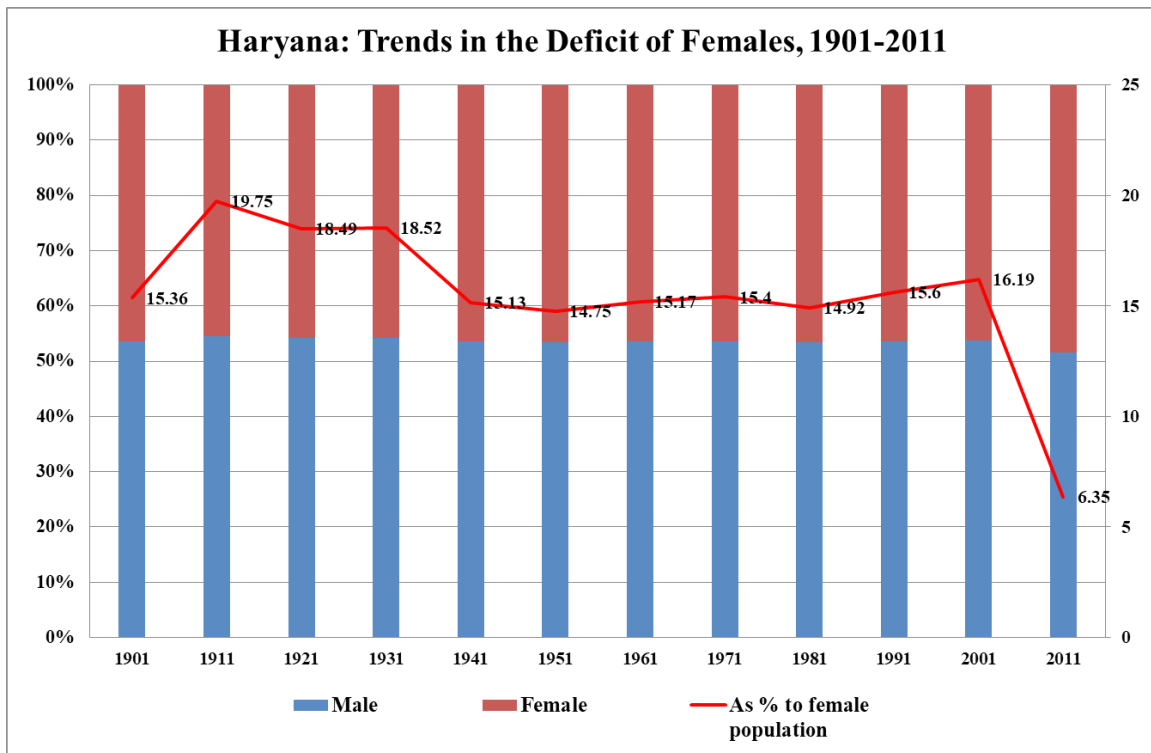
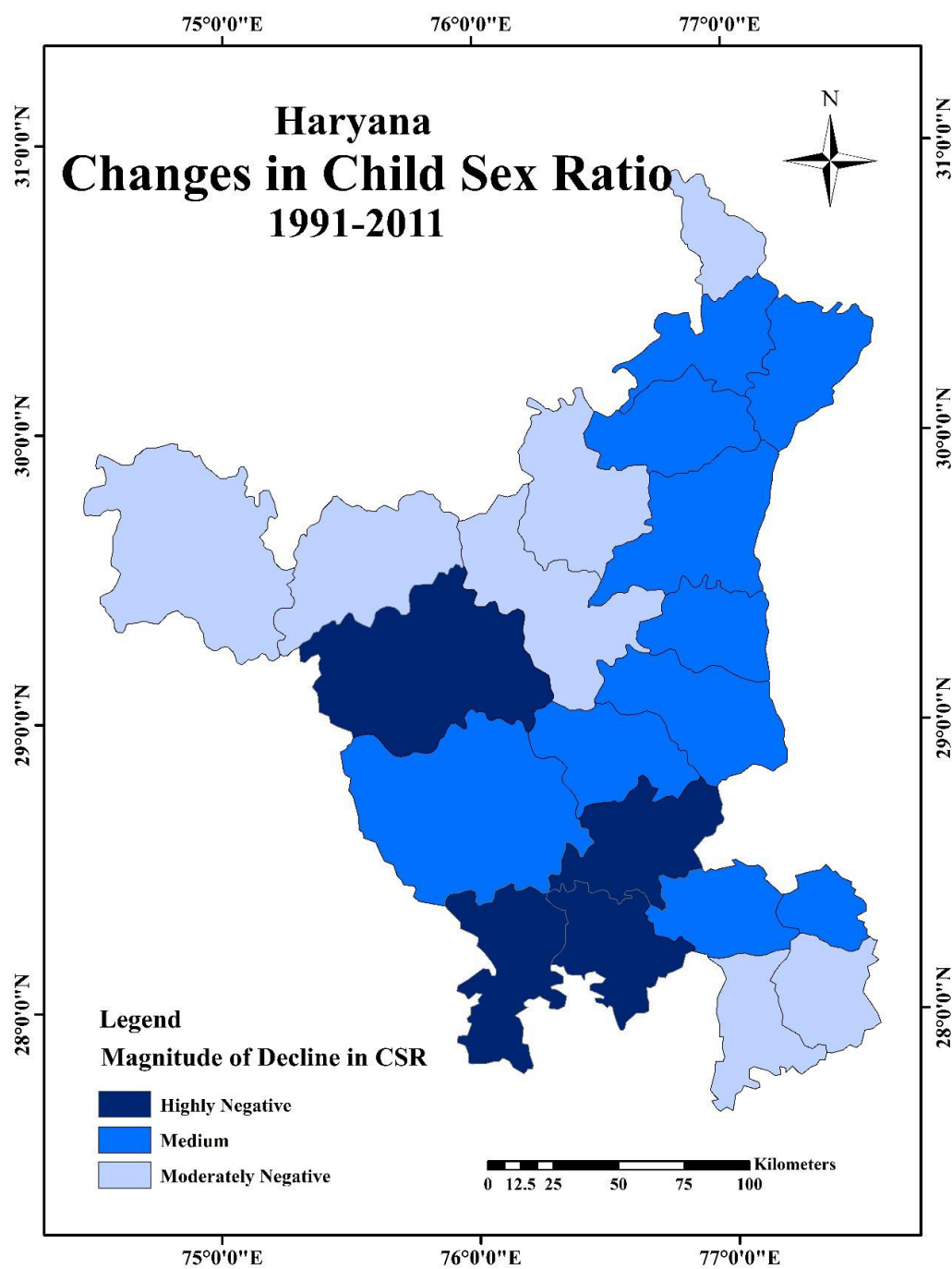


Figure -2



Source: Based on calculations of data from the Census of India for Various Years.

Figure 3

males are understood as the main bread and butter earners for the family who will bring all the fortunes for the family. On the other due to the cultural bias towards male birth of son is largely celebrated and treated as a benchmark for the stability of the family (Yadav, 2001).

Not only does the cultural and social bias against women lead to falls in CSR but this bias becomes discrimination in society as women have frequent disadvantages over males in education, property rights and political decision-making. This in long further leads to gender discrimination and contributes to societal attitudes that favour sons or males or towards masculinity (Bhalla, 1995). This vicious circle of discrimination does not end here this son's preference also causes sex-selective abortions. This is an attempt by the families and societies to ensure they have male descendants. This is often made easier by improvements in medicine that allow for sex determination (Yadav, 2001).

Figure 2 is a self-explanatory diagram that indicates the male-female balance of the society in Haryana from 1901-2011, it shows that the male-female balance has always favoured the male population as it has behaved throughout the demographic history of the state. The deficit of females was phenomenally towards the higher side; from 1941 to 1991 it remained stationary to its modest form. Ironically, from 1991 to 2001, the situation in the context of the sex ratio has again started to worsen. During this time deficit of women from the total population of Haryana increased by 16.19 per cent of the total population of Haryana. Although after 2001 census data and outcry in media and society have promoted government agencies for more stringent action against people engaged in illegal activities of determination of sex before birth have improved the situation of sex ratio a bit.

Spatial Distribution of Child Sex Ratio

The distribution of any phenomena is very crucial for human understanding and it explains the actual pattern of spacing of phenomena in space. As geography is traditionally a space-based subject, therefore, it deals with most of the phenomena from spatial and temporal perspectives. Here, in this segment of the paper, an attempt has been made to study child sex ratio in its special context and changes in it over time. Figure 3 is an attempt to showcase the spatial distribution of the magnitude of decline in CSR in the state of Haryana. Figure 3 shows that from 1991-2011 decline in CSR is a universal phenomenon in Haryana as all the districts have witnessed a decline in CSR during said period. This decline is highly negative in Hisar, Rewari, Mahendergarh and Jhajjar districts. During the same period, Mewat, Gurugram and districts in the west and Panchkula have witnessed a moderately negative decline in CSR.

Conclusion

Equality of rights and living space for both sexes is one of the key objectives of the developmental policies in India over the past few decades. Ironically, due to social and cultural constraints, this prime objective of the policies is hard to achieve therefore; it has remained elusive to date. Male or masculine dominance is the main contributing factor in declining of the general sex ratio in general and the child sex ratio in particular. In most patriarchal societies males have higher rights for males as compared to females. In general, this has led to the problems of female feticide and medical termination of female babies before their birth. It is largely seen that maintaining masculine dominance creates a chain of gender discrimination that is highly engraved in the social norms, culture and social structure of Haryana.

As paper has suggested that special attention is required in Hisar, Rewari, Mahendergarh and Jhajjar as they have a higher magnitude of fall in CSR between the 1991-2011 periods. Here, it must not be accepted that the problem of gender discrimination and falling sex ratio in Haryana lies only in these four districts, it must be noted that the problem of falling CSR is a greater problem that affects the whole of Haryana and the society of Haryana must be on vigil to curb this social evil. Addressing the challenges of declining sex ratio is a challenge for all the stakeholders i.e. society, family and government to protect the rights of girls and females. Protection of the rights of females is the need of the hour for gender neutral society where the rights of every individual are protected. Special help to restore CSR is very crucial and masculine dominance is to be nullified for the protection of rights of all.

References

- Arokiasamy, P., & Goli, S. (2012). Explaining the Skewed Child Sex Ratio in Rural India: Revisiting the Landholding-Patriarchy Hypothesis. *Economic and Political Weekly*, 47(42), 85–94. <http://www.jstor.org/stable/41720276>
- Bhalla, S. (1995). Development, Poverty and Policy: The Haryana Experience. *Economic and Political Weekly*, 30(41/42), 2619–2634. <http://www.jstor.org/stable/4403336>
- Bhaskar, V. (2011). Sex Selection and Gender Balance. *American Economic Journal: Microeconomics*, 3(1), 214–244. <http://www.jstor.org/stable/41237176>
- Bose, A. (2001). Fighting Female Foeticide: Growing Greed and Shrinking Child Sex Ratio. *Economic and Political Weekly*, 36(36), 3427–3429. <http://www.jstor.org/stable/4411079>
- Bose, A. (2002). Curbing Female Foeticide: Doctors, Governments and Civil Society Ensure Failure. *Economic and Political Weekly*, 37(8), 696–697. <http://www.jstor.org/stable/4411767>
- Diamond-Smith, N., & Bishai, D. (2015). Evidence of Self-correction of Child Sex Ratios in India: A District-Level Analysis of Child Sex Ratios From 1981 to 2011. *Demography*, 52(2), 641–666. <http://www.jstor.org/stable/43699133>
- George, S. M., & Ranbir S. Dahiya. (1998). Female Foeticide in Rural Haryana. *Economic and Political Weekly*, 33(32), 2191–2198. <http://www.jstor.org/stable/4407077>
- Joshi, A., & Tiwari, N. (2011). Sex ratio in India – embarrassing to be honest. *Current Science*, 101(8), 1006–1008. <http://www.jstor.org/stable/24079268>
- Kaur, R. (2010). Khap Panchayats, Sex Ratio and Female Agency. *Economic and Political Weekly*, 45(23), 14–16. <http://www.jstor.org/stable/27807097>
- Kulkarni, P. M. (1999). Gender Preference Contraceptive Prevalence: Evidence of Regional Variations. *Economic and Political Weekly*, 34(42/43), 3058–3062. <http://www.jstor.org/stable/4408537>
- L. S. Vishwanath. (2001). Female Foeticide and Infanticide. *Economic and Political Weekly*, 36(35), 3411–3412. <http://www.jstor.org/stable/4411063>
- Miller, B. D. (1989). Changing Patterns of Juvenile Sex Ratios in Rural India, 1961 to 1971. *Economic and Political Weekly*, 24(22), 1229–1236. <http://www.jstor.org/stable/4394899>
- Unisa, S., Sucharita Pujari, & Usha, R. (2007). Sex Selective Abortion in Haryana: Evidence from Pregnancy History and Antenatal Care. *Economic and Political Weekly*, 42(1), 60–66. <http://www.jstor.org/stable/4419111>
- Yadav, B. (2001). Haryana's "Setting Daughters." *Economic and Political Weekly*, 36(45), 4257–4259. <http://www.jstor.org/stable/4411348>



दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना

प्रतिमा कुमारी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

शोध-सार

‘यथा नाम- तथा गुण’ उक्ति को सार्थक करता श्री रामधारी सिंह दिनकर जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हिंदी साहित्य के सौरमंडल में सूर्य के सामान देदीप्यमान हैं। कवि स्वयं भी इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं—

ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर-मंडल का,
मेरा शिखण्ड अरुणाभ, किरीट अनल का।
रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे,
किरणों में उज्ज्वल गीत गुंथे हैं मेरे।।

छायावाद के अवसान और प्रगतिवाद के उत्थान काल के संधि-स्थल पर दिनकर जी क्रांति का गीत गाते हुए हिंदी जगत में अवतीर्ण हुए। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है—अपने राष्ट्र और युगीन सत्य के प्रति जागरूकता। अजेय शक्ति और पुरुषार्थ के कवि के रूप में इन्होंने परतंत्र देश के नवयुवकों को जागृति का सन्देश दिया, संघर्ष की प्रेरणा दी तथा विजय के निमित्त अभियान का पथ दिया। यद्यपि ‘आग’ और ‘राग’ के कवि दिनकर की काव्य-धारा में ओज और प्रेम, सत्य और सुन्दर, व्यक्ति और समष्टि, प्रवृत्ति और निवृत्ति, संग संग चले हैं, परन्तु राष्ट्र-चेतस की अग्नि में आहूति देती मुख्य कविताएँ हैं—वारदोली विजय, प्राण-भंग, रेणुका, हुँकार, रसवंती, द्वंद्वगीत, सामधेनी, धूप-छाँह, कुरुक्षेत्र, बापू। हिंदी साहित्य में अब तक दो ही रचनाकारों को ‘राष्ट्र कवि’ कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ है—मैथिलीशरण गुप्त और रामधारी सिंह दिनकर। गुप्त जी को यह उपाधि गाँधी जी ने दी थी, परन्तु दिनकर को यह उपाधि विशाल हिंदी समाज ने ही दिया और पूरे राष्ट्र ने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

राष्ट्र की अवधारणा संस्कृति के सन्दर्भ के बिना अपूर्ण है। शायद यही कारण है की इनके साहित्य में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की आत्मा सिमटी हुई है, जिसके प्रति कवि संवेदनशील है और उसकी दलितावस्था देखकर कवि के नयन-कक्ष में बरसात उमड़ आती है। राष्ट्रीय चिंताओं एवं प्रश्नों के साथ संस्कृति के स्वरूप एवं उसके मूल्यगत आदर्शों को, परतंत्र देश की विवशता को, व्यथा और दर्द के तरानों को अपूर्व क्षमता के साथ उपस्थित कर सकना इनकी सहज साधना है। आज देश स्वतंत्र है, किन्तु लोगों ने अपने गौरवशाली अतीत को विस्मृत कर दिया है। यह राष्ट्र का सबसे बड़ा अभिशाप है। स्वतंत्रता के प्रकाश में खिलखिलाते हुए भी हमें आज भी ऐसी ही कविताओं की आवश्यकता है।

बीज - शब्द : राष्ट्रीयता, जन, क्रांति, आग, पौरुष, चेतना।

मूल आलेख

यह छायावाद के चरमोत्कर्ष का समय था, जब हिंदी जगत में रामधारी सिंह दिनकर का उदय हुआ। भारतेन्दु युग से निष्पन्न राष्ट्रीयता की धारा, जो द्विवेदी युग में गतिमान हुई और छायावादी युग में प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि के द्वारा अपनी व्यापकता को प्राप्त हुई, उसे दिनकर ने अपनी 'रेणुका' तथा 'हुंकार' की कविताओं के द्वारा शीर्षोन्मुख कर दिया।

श्रेष्ठ रचनाकार युग साहित्य की रचना इस तरह से करता है कि आने वाले समय में इसकी प्रासंगिकता बनी रहती है। दिनकर इसी श्रेणी के रचनाकार हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है— अपने देश और युग - सत्य के प्रति जागरूकता। गौर किया जाए, तो आधुनिक काल में हिंदी की राष्ट्रीय कविता में तीन पड़ाव मिलते हैं— पहला पड़ाव, भारतेन्दु हरिश्चंद्र की देश -दुर्दशा देखकर दर्द भरी पुकार में, दूसरा पड़ाव, गुप्त द्वारा वर्तमान की विवशता के साथ गौरवशाली अतीत के स्मृति - गान में तथा तीसरा पड़ाव, दिनकर के अन्याय, अत्याचार, राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण के विरुद्ध शंखनाद में। अपनी काव्य चेतना के बारे में दिनकर लिखते हैं—

**‘क्रांति - धात्रि कविते! उठ अम्बर में आग लगा दे,
पतन, पाप, पाखंड, जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलझा दे।’**

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना के बारे में विस्तृत चर्चा करने से पहले इस शब्द का विश्लेषण करना उचित जान पड़ता है। राष्ट्रीयता मनुष्य की सहज व स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जिसके आधार पर वह अपने देश के प्रति आत्मिक लगाव महसूस करता है। अर्थात् राष्ट्र - विशेष के गुणों या राष्ट्र के प्रति विशिष्ट प्रेम को 'राष्ट्रीयता' कहा जा सकता है। इसी भावतिरेक में व्यक्ति राष्ट्र की रक्षा, विकास व कल्याण के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहता है। बाबू गुलाबराय ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है— “किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जनसमुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू -भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को 'राष्ट्रीयता' कहते हैं।” अर्थात् राष्ट्र की भौगोलिक सीमा के प्रति निष्ठा 'राष्ट्रीयता' की मुख्य आधारशिला है। भू -भाग के ही आधार पर समस्त जन व सम्बद्ध वस्तुओं के प्रति सहज स्नेहासिक्त भाव उपजता है।

दिनकर की सैकड़ों ऐसी कविताएँ हैं, जो उनकी भारतीयता को राष्ट्रीयता में परिणत करती हैं। क्या बालक- क्या वृद्ध, क्या नर - क्या नारी, अपनी सहज अनुभूति से दिनकर की भारतीयता सभी के मन को छूती है। इस अर्थ में दिनकर पहले भारतीय हैं, भारतीय लोक के हैं भारतीय जन के हैं, इसलिए राष्ट्रीय हैं। अपने राष्ट्रीय प्रेम की अभिव्यक्ति दिनकर इस प्रकार से करते हैं—

**‘टिकने देती भैंस नहीं बाहर वाली भैसों को,
अपने खूँटे से ढकेल कर बाहर कर देती है।
यही भाव विकसित, प्रशस्त होकर नर की भाषा में,
राष्ट्र, राष्ट्र का प्रेम, राष्ट्र का गौरव कहलाता है।’¹**

दिनकर ने अपने समय की राजनीति को जनता एवं सत्ता के बीच में खड़े होकर परखा है। ऐसे में यदि उनकी जन -पक्षधरता सत्ता के पाप को बेनकाब करती है, तो यह राष्ट्रीय चेतना का सबसे जरूरी पहलू है।

अपने राष्ट्र के प्रति लगाव और प्रेम की स्वाभाविक वास्तविकता है।

राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में धार्मिक व ऐतिहासिक सन्दर्भों की भी महती भूमिका होती है। किसी भी देश के निर्माण में ऋषि -मुनियों, मनीषियों, चिंतकों, सुधारकों का विशिष्ट योगदान होता है। गौरवशाली अतीत का स्मरण जन - मानस को सत् -पथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है। निश्चित तौर पर, राष्ट्रीय चेतना में राष्ट्रीय स्वतंत्रता, एकता और अखंडता की त्रिवेणी प्रवाहमान रहती है।

समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित, बाल्यावस्था के कटु-तिक्त अनुभवों से सिक्त कवि का व्यक्तित्व केवल आंतरिक ही नहीं, बाह्य स्तर पर भी ओजपूर्ण था। डॉ. सावित्री सिन्हा के शब्दों में - “दिनकर के व्यक्तित्व में धरती-पुत्र का आत्म-विश्वास और दृढ़ता, साहित्यकार की अनुभूति-प्रवणता, दार्शनिक का तत्त्व-चिंतन तथा राज्य-पौरुष का ओज और तेज है। दूसरे शब्दों में, उनके जीवन की कहानी हल, हँसिया, लेखनी और पार्लियामेंट की कहानी है...”¹ विलक्षण कवि व्यक्तित्व एवं ओजस्वी वाणी के स्वामी ‘दिनकर’ के कवि-कंठ से निःसृत होकर उनकी रचनाएँ श्रोताओं में नव-जीवन, नव-जागृति एवं उत्सर्ग का भाव भरने के लिए प्रसिद्ध थीं।

दिनकर का पहला काव्य-संग्रह ‘बारदोली-विजय’ है, जो 1928 में लिखी गयी थी। 10 कविताओं के इस संकलन में दिनकर की राष्ट्रीय-चेतना बीज रूप में मौजूद है। इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। दूसरी रचना ‘प्रण-भंग’ (1929) है, जिसमें दिनकर जी ने राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति दी है। ‘महाभारत’ की कथा के माध्यम से कवि ने यह समझाने का प्रयास किया है की गुलामी का अपमान भरा जीवन कलंक है। कवि के अनुसार, गुलाम भारत का कारण भारत से पुरुषार्थ-लोप है—

**‘अपना अनादर देखकर भी आज हम जीते रहे,
चुपचाप कायर से गरल के घूँट यदि पीते रहे।
तो वीर जीवन का कहाँ रहता हमारा तत्व है,
इससे प्रकट होता यही हममें न अब पुरुषार्थ है।’**

1935 में ‘रेणुका’ का प्रकाशन हुआ। राष्ट्रीय भाव के इस काव्य-संकलन में मुख्यतः चार प्रकार की कविताएँ संकलित हैं; पहला-जन-जागरण की कविताएँ, दूसरा-वैभवपूर्ण अतीत की गौरव गाथाएँ, तीसरा-प्रकृति परक कविताएँ और चौथा-व्यंगात्मक रचनाएँ। इसकी पहली कविता ‘मंगल-आह्वान’ में कवि आदेश मांगता है कि—

**‘दो आदेश फूँक दूँ श्रृंगी
उठे प्रभाती राग महान।
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में
जागें सुप्त भुवन के प्राण।’**

‘हुंकार’ दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं का दूसरा महत्वपूर्ण संकलन है, जो 1939 में लिखी गई। रीतिकालीन परंपरा के विरुद्ध क्रांति का स्वर यहीं से मुखरित होता है। इसकी सभी रचनाएँ क्रांतिकारी व देश-प्रेम से सम्बंधित हैं। क्रांतिकारी हृदय-मंथन से निकली ‘हुंकार’ क्रांति के आग उगलने वाली कृति सिद्ध हुई इसमें सर्वत्र मानव पीड़ा, विद्रोह की ज्वाला एवं बलिदान का स्वर विद्यमान है। शोषक वर्ग की क्रूरता और शोषित वर्ग की पीड़ा के तनाव को व्यंगात्मक तरीके से दर्शाया है कवि ने यहाँ—

**‘बोले कुछ मत क्षुधित, रोटियाँ खान-छीन खाएँ यदि कर से,
यही शान्ति, जब वे आएँ, हम निकल कर जाएँ चुपके से निज घर से।’**

रसवंती (1940) के प्रकाशन के बाद ‘दिनकर’ की आलोचना भी होने लगी। जैसे, मुरलीधर श्रीवास्तव का कहना था कि - “...कवि ने एक नयी दिशा में पग उठाकर और अपने प्रकृत-पथ का परित्याग कर उचित नहीं किया।”² कहने का तात्पर्य यह है कि दिनकर उस समय तक वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हो चुके थे एवं जागृत पौरुष को ही उनका प्रकृत-पथ माना जाने लगा था; हिंदी आलोचकों की नजर में भी।

‘द्वंद्व-गीत’ 1940 में लिखी गई। दिनकर के काव्य में ‘दार्शनिकता’ का प्रणयन इसी से प्रारम्भ होता दिखता है। यद्यपि ‘सामधेनी’ का लेखन-वर्ष 1946 ‘भारत छोड़ो आंदोलन’ का समय था, तथापि इसमें ‘हुंकार’ की गर्जना प्रशमित दिखाई देती है। ‘द्वंद्वगीत’ का द्वन्द्व भी शांत होता दिखता है। शायद इसके पीछे का मूल कारण 1943 में कवि का युद्ध प्रचार-विभाग में नियुक्त हो जाना रहा होगा। हलाँकि इस कृति का मूल स्वर क्रांति ही है। कवि रागपूर्ण स्वर में चाँद से बातें करते हुए

छिपी चेतावनी दे ही देता है—

‘स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे,
रोकिये जैसे बने इन स्वप्न बालों को
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।’

1946 में प्रकाशित ‘कुरुक्षेत्र’ कवि का प्रथम प्रबंध काव्य है। युद्ध की शाश्वत समस्या और उसकी निवृत्ति की खोज कुरुक्षेत्र की पृष्ठ भूमि है। शांति खोज के गंभीर चिंतन में कवि दार्शनिक - सा उत्तर ढूँढ रहे हैं—

‘किन्तु इस विध्वंस के उपरांत भी
शेष क्या है?.....।’

‘धूप-छाँह’ (1946) दिनकर जी की 16 ओजस्वी कविताओं का संकलन है। आजादी के वर्ष 1947 में प्रकाशित काव्य ‘बापू’ के बापू महात्मा गाँधी उस समय दिनकर के आराध्य थे। ‘आग और अंगार’ कविता के कवि दिनकर ने ऐसा अनुभव किया की ‘बापू’ के सामने अंगार भी लजाते हैं। मतलब यह की महात्मा गाँधी के विचारों से दिनकर बेहद प्रभावित थे। कवि का यह विश्वास की बापू के सत्य, अहिंसा, निर्भीकता एवं संकल्पशीलता से निर्मित इतिहास भारत का स्वर्णिम इतिहास होगा, इस काव्य का कथ्य है। ‘बापू’ के व्यक्तित्व का प्रभावशाली वर्णन है इन पंक्तियों में—

‘तेरा विराट यह रूप कल्पना पट पर नहीं समाता है ,
जितना कुछ कहूँ, मगर, कहने को शेष बहुत रह जाता है।’

हालाँकि गाँधी जी की अहिंसावादी नीतियों से कवि असहमत दिखते हैं। अतः देखा जाए, तो स्वातन्त्र्येत्तर काल की कवि की लगभग सभी रचनाएँ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रति है, युवा दल में शक्ति भरने वाली है।

दिनकर ने जब काव्य - रचना प्रारम्भ की, उस समय पूरे देश में क्रांति की आग सुलग रही थी। इस क्रांति की आग एवं राष्ट्रीय चेतना को दिनकर ने हवा दी। दिनकर स्वयं स्वीकारते हैं— “मेरी कविता के भीतर जो अनुभूतियाँ उतरतीं, वे विशाल भारतीय जनता की अनुभूतियाँ थीं। वे उस काल की अनुभूतियाँ थीं, जिनके अंक में बैठकर मैं रचना कर रहा था। कवि होने की सामर्थ्य मुझमें शायद नहीं थी। यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता की आकुलता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई।”⁴ भारत की परतंत्रता से आकुल भारतीय जन को देखकर कवि व्याकुल होकर परतंत्र - विरोधी शक्तियों को आमंत्रित करता हुआ ‘हिमालय’ से कहता है—

‘व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
इस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।’

द्रष्टव्य है कि दिनकर के काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीयता है, और यह राष्ट्रीयता ‘गाँधी-युग’ की विद्रोही राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता की इसी भावना से प्रेरित रचना ‘हुंकार’ है, जिससे उन्हें काव्य जगत में पर्याप्त प्रसिद्धि और सफलता मिली। इसमें जो राष्ट्रीय भावनाएँ प्रस्फुटित हुई हैं, उनका मुख्य आधार है— अंग्रेजों के प्रति घृणा और आक्रोश का भाव। देश गुलामी के बंधन में बँधा था, अंग्रेजों का दर्पपूर्ण शासन खल रहा था। अंग्रेजों के अनाचार से त्रस्त देश दुर्भाग्य के अँधेरे में तड़प रहा था। चारों ओर करुणा और असंतोष की भावना थी। आँखों में निराशा की लौ थी, वेदना के अश्रुकण थे और हृदय में थी असहाय विपन्नता। संस्कृति और राजनीति के क्षेत्रों में सक्रिय आंदोलन की किरणें फूट रही थीं। ऐसे अवसर पर राष्ट्रकवि दिनकर ने आगे बढ़कर कविता के शंखनाद द्वारा इसी आंदोलन को गति देने की चेष्टा की। विगत के गीत गाकर समृद्ध आदर्शों की पवित्र स्मृति जगायी। मनुष्य के अंतर में सोये हुए प्रचंड पौरुष को जगाने के लिए ‘आलोकदीप’ जलाने की साधना की। ‘आलोकधन्वा’ कविता इसी साधना का अडिग चरण है—

प्रियमाण जाति को प्राण दिया करता हूँ,
पीयूष - प्रभा - मय गान दिया करता हूँ।

**जो कुछ ज्वलंत हैं भाव छिपे नर- नर में,
है छिपी विभा उनकी मेरे खर -शर में।**

‘हुंकार’ की लोकप्रियता ने हिंदी आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया और प्रान्त के बाहर के कवियों ने इसकी प्रतिभा का गान गाना शुरू कर दिया, पर कुछ लोग तो उनके प्रति ईर्ष्यालु हो गए और इनकी कविताओं के बारे में ऊटपटांग बातें कहने लगे। ऐसे ही आलोचकों में डॉ प्रकाशचंद्र गुप्त हैं। परन्तु इन कटु आलोचनाओं के बावजूद भी ‘हुंकार’ की कुछ कविताएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हुईं। इनमें राष्ट्रीय तेज और कर्मठ विद्रोह का ताप है।

दिनकर जी ने ज्ञान -विज्ञान, साहित्य, इतिहास और संस्कृति का बहुत गहनता से अध्ययन किया था। उनके समय में भारतीय वायुमंडल में विश्वस्तरीय क्रांतियाँ एवं क्रांतिकारी विचारधाराएँ तरंगायित हो रही थीं। समाज - चेता , जागरूक एवं युगधर्मी दिनकर पर भी कार्लमार्क्स, रूसो, फ्रायड, टॉलस्टॉय, डार्विन, गाँधी जी आदि का प्रभाव दिखता है। स्वतंत्रता के पूर्व एवं बाद में भी कवि ने सामाजिक -आर्थिक कमियों एवं कुरीतियों को पुरजोर विरोध किया। कवि की सामाजिक चेतना वर्ग -वैषम्य से आहत होकर विधि के बंधन को भी नहीं मानती। कवि भाग्यवाद रूपी पाप के आवरण में चुप बैठा नहीं रह सकता। सीधे शब्दों में कहें, तो कवि की कविताओं में अन्याय और नृशंस दमन के विरोध में प्रलय का बवंडर बसता है। कवि के अनुसार - “इस समाज की एक ही दवा है—आग और उल्काति।”⁵

संघर्ष और परिवर्तन का मिलित रूप है— क्रांति। यह एक अनिवार्य प्राकृतिक नियम है। क्रांति के साथ विध्वंस और निर्माण दोनों सम्पृक्त हैं। अपने विध्वंसात्मक रूप में क्रांति जहाँ सामाजिक बुराइयों, हानिकारक कुरीतियों से त्राण दिलाती है, तो सृजनात्मक रूप में यह नव -समाज के सृजन, आदर्श सामाजिक -व्यवस्था तथा भौतिक -मानसिक -आध्यात्मिक स्तर पर सुख का कारक बनती है। कवि की क्रांति नव -समाज के निर्माण हेतु है, जो मानव की प्रगति को कलुषित करने वाली रुढ़ियों एवं कुरीतियों की होलिका जलाने का आह्वान करती है—

**“उठो -उठो कुरीतियों की राह तुम भी रोक दो,
बढ़ो- बढ़ो की आग में गुलामियों को झोंक दो,
परंपरा की होलिका जला रही जवानियाँ।”⁶**

‘हुंकार’ एवं ‘रेणुका’ में कवि ने ध्वंसात्मक लाल -क्रांति का समर्थन किया है। कवि यदि ‘मास्को’ एवं ‘दिल्ली’ कविता में लाल -भवानी का स्वागत करता है, तो ‘मास्को’ के समर्थन में भारत की राजधानी ‘दिल्ली’ को भूल जाने वाली उस ‘लाल -बिरादरी’ को धिक्कारता भी है—

**“अर्पित करो सानिध्य, हे समता के अभिमानी,
इसी कुंड से निकलेगी भारत की लाल -भवानी।”⁷**

आजादी के पहले कवि इस आशा में था की आजादी प्रथम लक्ष्य है। आजादी मिलने के बाद स्थितियाँ अवश्य ही बेहतर होंगी, लेकिन जब नेतागण अंग्रेजों के ही पद-चिन्ह का अनुकरण करने लगे, तो कवि -हृदय क्रंदन कर उठता है। उसे पूर्ण विश्वास है की समतावादी सामाजिक व्यवस्था के बिना स्थायी शांति की स्थापना संभव नहीं। और, ऐसी शांति श्रद्धा, भक्ति, स्नेह जैसे उच्च नैतिक आदर्शों के बलबूते ही स्थापित हो सकती है।

आर्थिक वैषम्य की प्रतिक्रिया स्वरूप ‘साम्यवाद’ का जन्म हुआ। कवि दिनकर कार्ल- मार्क्स के इस समतावादी दृष्टिकोण का स्वागत जरूर करते हैं, परन्तु भारतीय संस्कृति एवं उसके समन्वयकारी दृष्टिकोण के आवरण में लपेटकर। इसलिए कवि ‘भूषण’ एवं ‘लेनिन’ दोनों को एक साथ स्मरण करता है—

**“उठ ‘भूषण’ की भाव - रंगिनी
‘लेनिन’ के दिल की चिंगारी।
युग -मर्दित यौवन की ज्वाला,
जाग -जाग री क्रांति कुमारी।”⁸**

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता स्वतंत्रता -पूर्व अंग्रेजी हुकूमत के प्रति विद्रोह की क्रांति का आह्वान एवं स्वाधीनता - संग्राम के समर्थन के रूप में लक्षित है। अंग्रेजी शासकों के अत्याचार से त्रस्त जन- मानस में विद्रोह की चिंगारी धीरे -धीरे सुलगकर प्रचंड रूप धारण कर लेती है, और, फलस्वरूप कवि अंग्रेज सरकार को स्पष्ट चेतावनी देता है—

“हटो तमीचरों, की हो चुकी समाप्त रात है,
कुहेलिका के पार जगमगा रहा प्रभात है।
लपेट में समेटता रुकावटों को तोड़ के,
प्रकाश का प्रवाह आ रहा दिगंत फोड़ के।”⁹

और संयोगवश वास्तव में ही, कवि के गीतों की शुभ्रता से, उज्ज्वलता से, परतंत्रता की काली निशा शेष हो गई। कवि की इस भविष्यवाणी के तीन वर्ष पश्चात् ही भारत स्वतंत्र हो गया।

निष्कर्ष

दिनकर स्वाधीनता- आंदोलन के कवि हैं। ध्यान दें, तो दिनकर का प्रारंभिक काव्य , यानि 1930 से 1947 तक का काव्य स्वाधीनता - संग्राम का काव्य है। स्वाधीनता -आंदोलन के उतार - चढ़ाव, दुविधा - द्वंद्व , जय- अजय को कहीं अगर एक साथ अभिव्यक्ति मिली है, तो दिनकर के काव्य में। स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद भी उनकी लेखनी राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने हेतु तत्पर रही है। कवि - कर्म के आधार पर दिनकर को बांग्ला के काज़ी नज़रुल इस्लाम, उर्दू के इक़बाल एवं जोश के समकक्ष रखकर देखा जाता है। दिनकर की कविताओं में भी वही शक्ति और आग है, जो उनकी कविताओं में है।

मानव - धर्म कवि दिनकर ने राष्ट्रीय आंदोलन की अलख जलाने के साथ - साथ उसे गति प्रदान करने हेतु बार बार सुषुप्त जनता को जगाया भी। ‘ओज’ गुण से परिपूर्ण कवि के काव्य की मूल चेतना कभी ‘रेणुका’ बन, तो कभी ‘हुंकार’ बन देशवासियों को मातृभूमि की रक्षा हेतु त्याग और बलिदान करने को ललकारती रही है। इनके यहाँ राष्ट्रीय चेतना शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने के रूप में भी दिखायी पड़ती है। कवि का कहना है कि नैतिकता का तकाज़ा है— युद्ध करना, न की अनैतिकता को प्रश्रय देना। दासता को मौन भाव से सहन करना घोर अधर्म है, पाप है—

छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग ताप से काम ले, यह पाप है।

अतः स्पष्ट है की आधुनिक युग के क्रांतिकारी कवियों के प्रतिनिधि रूप में दिनकर की उदात्त राष्ट्रीय चेतना क्रांति के आह्वान के साथ भारतीय मूल्यों व आदर्शों की स्थापना एवं गौरव की रक्षा हेतु तत्पर प्रहरी की तरह सजग है।

सन्दर्भ -सूची

1. दिनकर की सूक्तियां, पृ. 83
2. युग चारण दिनकर : सावित्री सिन्हा, प्रथम संस्करण -1963, पृ. 22
3. युग कवि दिनकर : प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव, पृ. 101
4. चक्रवाल : दिनकर (भूमिका), पृ. ग
5. नीलकुसुम : दिनकर, पृ. 16
6. सामधेनी : दिनकर, पृ. 32
7. रसवंती : दिनकर, पृ. 16
8. रेणुका (कस्मै देवाय) : दिनकर, पृ. 27
9. सामधेनी : दिनकर, पृ. 75



प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' में निहित नारी समस्या

श्वेता कंडुलना

स्नातक शिक्षा, द्वितीय वर्ष

फरारगंज, साउथ अंडमान-744206

मो. : 7063981380

प्रेमचंद एक ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से नारी जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं का खुलकर अंकन किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त बाल-विवाह, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, वेश्या समस्या तथा विधवा-विवाह जैसी अनेक सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में प्रमुखता दी है। उन्होंने वरदान, प्रेमाश्रम, प्रतिज्ञा, सेवासदन, निर्मला आदि उपन्यासों में समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों से जूझती और संघर्ष करती स्त्रियों का बहुत ही मार्मिकता से वर्णन किया है।

पुरुषप्रधान समाज होने के कारण स्त्रियाँ अपने अधिकारों से वंचित थी। इस संबंध में निधि सिंह लिखती है— “ऐसे समाज में प्रेमचंद ने पुरुषों के वर्चस्व वाले इस समाज में नारी की अस्मिता तथा उसके अधिकारों के प्रश्न को जिस निर्भीकता से उठाया वह अपने आप में एक बहुत बड़ी बात थी प्रेमचंद हिन्दी के पहले लेखक हैं जिन्होंने नारी समस्या की जटिलता को समझकर समाज के रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक ढाँचे को खुले आम चुनौती देते हुए, भारत के उस परम्परागत ‘व्यवस्था पर प्रहार किया है जिसके अन्तर्गत नारी पग-पग पर तिरस्कार तथा अपमान के कड़वे घूँट पीने को बाध्य है।”¹

इसी प्रकार डॉ. अनुराधा मिश्रा ने भी स्पष्ट किया है— “प्रेमचंद को महिला जागरण का भी श्रेय दिया जाता है क्योंकि पहली बार उनके महिला पात्र, पर्दे से बाहर निकलकर उत्पीड़न का प्रतिवाद करते मिलते हैं।”²

प्रेमचंद सामाजिक सरोकार के रचनाकार हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण देखने को मिलता है। उन्होंने सामाजिक विषमता और आर्थिक पराधीनता में फँसी मध्यम वर्गीय नारी की बेबसता और लाचारी को अपने उपन्यासों में अंकित किया है। ‘सेवासदन’ उपन्यास समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक कुरीतियों को समेटे हुए है। ये सामाजिक कुरीतियाँ दिखने में तो मामूली सी जान पड़ती हैं किंतु अंत में वही गंभीर समस्याओं का रूप धारण कर लेती हैं। ‘सेवासदन’ उपन्यास में प्रेमचंद जी ने यही बताने का प्रयास किया है कि दहेज जैसी कुप्रथाएँ आगे चलकर वेश्यावृत्ति जैसी गंभीर समस्याओं को जन्म देती हैं। डॉ. अनुराधा मिश्रा ने ठीक ही लिखा है कि- “एक और ‘सेवासदन’ में दहेज प्रथा का दुष्परिणाम वेश्या समस्या को जन्म देता है तो दूसरी ओर ‘निर्मला’ उपन्यास में दहेज प्रथा का अंत अनमेल विवाह में होता है तथा अन्ततः निर्मला की अकाल मृत्यु होती है।”³

‘सेवासदन’ उपन्यास में प्रेमचंद जी ने नारी के पूतन और उसके उत्थान के प्रयास को बड़े ही सजीवता से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में व्यक्ति न चाहते हुए भी कुमार्ग पर चलने को बाधित हो जाता है। ‘सुमन’ इस उपन्यास की नायिका हैं। सुमन के चरित्र का उद्घाटन करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं— “बड़ी लड़की सुमन सुंदर, चंचल और अभिमान थी, छोटी लड़की शान्ता भोली, गंभीर, सुशील थी। सुमन दूसरों से बढ़क रहना चाहती थी। यदि बाज़ार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार

की साहि आतीं, तो सुमन मुँह फुला लेती थीं।”⁴

इस उपन्यास में सुमन समाज की एक ऐसी नारी पात्र का प्रतिनिधित्व कर रही है, जो कुमार्ग पर चलना तो नहीं चाहती किंतु परिस्थितियों के हाथों मजबूर होकर कुमार्ग पर चलने को विवश हो जाती है।

तत्कालीन समाज में दहेज प्रथा का प्रसार बहुत व्यापक था सुमन के पिता दरोगा कृष्णचंद्र सुमन का विवाह शिक्षित परिवार में कराना चाहते थे परंतु उन्हें क्या पता था कि दहेज प्रथा का प्रसार शिक्षित समाज में भी हो गया है। इस संबंध में स्वयं प्रेमचंद लिखते हैं—“ वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन-देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है।”⁵

दहेज प्रथा और अर्थहीनता के कारण सुमन का विवा गजाधर नामक एक गरीब व्यक्ति से कर दिया जाता है। बेमेल विवाह जैर स्थिति में एक माँ की मानसिकता को व्यक्त करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं— “गंगाजली दामाद को देखकर बहुत रोई। उसे ऐसा दुख हुआ, मानो। किसी ने सुमन को कुँ में डाल दिया।”⁶ “इस कथन से यह स्पष्ट होत है कि कोई भी माता-पिता अपने बच्चे के साथ बुरा होता नहीं देख सकते परंतु सामाजिक कुरीतियों और आर्थिक विपन्नता के कारण उन्हें मजबूरन ऐसा कदम उठाना पड़ता है जो उनके लिए, कितना कष्टदायी होता है।

इस उपन्यास में लेखक ने दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को स्पष्टता के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। दहेज प्रथा, जैसी सामाजिक कुप्रथाओं के बढ़ते जाने के कारणों पर विचार करते हुए डॉ. चण्डीप्रसाद जोशी ने ठीक ही लिखा है— “एक प्रश्न विचारणीय है कि शिक्षित मध्यम वर्ग में जबकि अन्य रुढ़ियाँ दूर हो रही हैं, दहेज प्रथा भयंकर सामाजिक कुप्रथा होने पर भी क्यों पनप रही है। इसका कारण मध्यवर्ग की स्थिति है, जिसके पास सीमित आय तथा सुख साधनों की न्यूनता होती है लेकिन उसकी अभिलाषाओं की कोई सीमा नहीं होती। उसकी आर्थिक स्थिति उसे सर्वहारा वर्ग की ओर खींचती है लेकिन उसकी मनोदशा तथा काल्पनिक जगत उच्चवर्गीय जीवन को पाने के लिए। लालायित रहता है। ऐसी स्थिति में वह अपनी सामाजिक यथार्थ स्थिति की अवहेलना करके ऐसी सामाजिक प्रथाओं का आधार और भी शक्ति से पकड़े रखने चाहता है जिसमें व्यक्ति विशेष सुविधानुसार लाभ उठा सके मध्यवर्गीय व्यक्ति ऐसी स्थिति में सामाजिक हित के दृष्टिकोण से सोच कर वैयक्तिक लाभ की दृष्टि से सामाजिक संस्थाओं तथा रीतिरिवाजों का मूल्यांकन करता है। दहेज प्रथा से क्योंकि एक पक्ष का लाभ होता है। अतः उसे बनाए रखने के लिए प्रबल, दुराग्रह करता है और इस तरह यह प्रथा अबाध गति से बढ़ती जा रही है। मध्यमवर्ग की आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक चिंतनीय है अतः दहेज के प्रति दुराग्रह और भी अधिक है।”

सेवासदन उपन्यास में प्रेमचंद एक के बाद एक समस्याओं को पाठकों के समक्ष रखते जाते हैं। उपन्यास में दहेज प्रथा के कारण बेमेल विवाह जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती है। बेमेल विवाह और निर्धनता के कारण सुमन का दाम्पत्य जीवन तनावपूर्ण अवस्था में होता है। अंततः पति-प के बीच मन-मुटाव की स्थिति उत्पन्न होती है और गजाधर, सुमन के चरित्र पर सवाल उठाकर उसे घर से निकाल देता है। इस कथन से यह स्पष्ट होता है— “चल छोकरी, मुझे न चरा। ऐसे-ऐसे कितने भले आदमियों को देख चुका हूँ। वह देवता हैं, उन्हीं के पास, जा। यह झोंपड़ी तेरे रहने योग्य नहीं है। तेरे हौसले बढ़ रहे हैं। अब तेरा गुज़र यहाँ न होगा।”⁸

प्रेमचंद ने सुमन के माध्यम से स्त्री चेतना का स्वर मुखर किया है। वह आश्रय के लिए किसी की दया का पात्र नहीं बनना चाहती। यहाँ सुमन का स्वाभिमानी चरित्र सामने आता है। इस कथन में हम देख सकते हैं— “हाँ, यों कहा कि मुझे रखना नहीं चाहते। मेरे सिर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूँगी, वहीं पेट पाल लूँगी।”⁹

इस उपन्यास में बेमेल विवाह के कारणों तथा उनसे उत्पन्न कट परिस्थितियों को कथा वस्तु के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। जिन उन मान्यताओं, परिस्थितियों पर कटाक्ष किया गया है, जिनके कारण व अनमेल विवाह जैसी समस्याओं का जन्म होता है।

बेमेल विवाह के दुष्परिणामों को दर्शाते हुए प्रेमचंद, सुमन की दयनीय अवस्था को चित्रित करते हैं। परिस्थितियों के हाथों मजबूर होकर सुमन को वेश्या भोलीबाई के घर आश्रय लेना पड़ता है। जिन वेश्याओं को वह दुश्चरित्र और कुलटा समझती

थी आज वहीं आश्रय लेने को वह विवश थी। डॉ. गुलशन बानो लिखते हैं—“निर्मला की तरह सुमन भी अनमेल विवाह के दंश को झेलती है किंतु वह निर्म की भाँति शांत नहीं है, उसके मन में उपन्यास की अन्य पात्र भोल को देखकर उसके मन में प्रश्न उठते हैं। क्यों भोली वेश्या होकर इतनी इज्जत पा रही है जो उसे ब्याहता होने पर भी प्राप्त नहीं हो रही हैं।”¹⁰

यहाँ पर प्रेमचंद ने समाज की खोखली नैतिकता पर कहा प्रहार किए हैं। सुमन अब सुमनबाई हो जाती है। उसकी इस दुर्गति के लिए कौन जिम्मेदार है? यह प्रश्न विचारणीय है। वेश्यावृत्ति का कारण व्यक्त कर हुए प्रेमचंद लिखते हैं—“जो लोग वेश्याओं को बुलाते हैं, उन्हें धन देकर उनके लिए सुख-विलास की सामग्री जुटाने और ठाठ-बाट से जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाते हैं, वे उस कसाई के कम पाप के भागी नहीं हैं, जो बकरे की गर्दन पर छुरी चलाता है।”¹¹

एक वेश्या के रूप में सुमन के पास भोग-विल की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध थी। सुसज्जित भवन नर्म कालीनों, के सेज, भाँति भाँति के खाद्य पदार्थ परंतु समाज में उसकी जो मान मर्यादा थी अब वह सब समाप्त हो चुका था। सुमन को यह आभास हो चुका था कि वह अब पाप के दलदल में फँस चुकी हैं। उसके इस कप से, यह स्पष्ट होता है—“आह मुझे कैसा धोखा हुआ, यह स्थान दूर से कितना सुहावना, कितना मनोरम, कितना सुखमय दिखाई देता था। मैंने इसे फूलों का बाग समझा लेकिन है क्या? एक भयंकर वन, माँसाहारी पशुओं और विषैले कीड़ों से भरा हुआ।”¹²

उपन्यास के अंत में प्रेमचंद सुमन को पतन से उत्थान की ओर ले जाते हैं पद्मसिंह और विट्ठलदास की सहायता से वह वेश्यावृत्ति त्यागकर विधवाश्रम में रहने लगती है। वहाँ वह कई विधवाओं को सीना सिखात हैं। परंतु जैसे ही सबको सुमन के वेश्या होने की बात पता चलती है वे उसे आश्रम से निकाल देते हैं। कथा के अंतिम चरण में सुमन गजानंद का प्रस्ताव स्वीकार कर अनाथालय के बच्चों की देखभाल करने लगती है। जहाँ पर वेश्याओं की कन्याएँ भी थीं। इस कार्य में उसे शांति का अनुभव होता था।

उपन्यास में सुमन स्त्री विमर्श को पाठकों के सामने लाने में सक्षम होती है। कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करती है और अन्ततः उसका उत्थान हो जाता है। इस संबंध में डॉ० अनुराधा मिश्रा लिखती है “प्रेमचंद के ‘सेवासदन’ को यह गौरव प्राप्त है कि उसमें प्रथम बार वेश्या का चित्रण मानवतावादी धरातल पर किया गया। इतना ही नहीं उसे सहानुभूति भी मिली है। प्रेमचंद ने पहली बार यह पक्ष रखा कि घृणा की पात्र वेश्या सुमन नहीं, बल्कि वह समाज है जिसने उसे वेश्या बनने के लिए बाह्य किया। मध्यम वर्ग की लड़की सुमन आर्थिक अभावों, दहेज प्रथा, अयोग्य वैवाहिक संबंध तथा संकीर्ण मनोवृत्ति वाले पति के कारण पति के घर से निकाली जाती है और समाज की खोखली नैतिकता उसे वेश्या बना देती है।”¹³

निष्कर्षतः ‘सेवासदन’ उपन्यास नारी जीवन की समस्याओं को केंद्र में रखकर उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने का कार्य भी किया है। इस उपन्यास में नारी समस्या पर अत्यंत सूक्ष्मता से विचार किया गया है और साथ ही उस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। नारी जीवन की कहता को व्यक्त करने वाला यह एक सफल उपन्यास है।

संदर्भ

1. इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श - डॉ. रमेश कुमार, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली - 110053, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 395
2. कथा शिल्पी प्रेमचंद - डॉ. अनुराधा मिश्रा, पृ. 87
3. वही, पृ. 67
4. सेवासदन - प्रेमचंद, पृ.06
5. वही, पृ.06
6. वही, पृ. 17
7. कथा शिल्पी प्रेमचंद - डॉ. अनुराधा मिश्रा, पृ.67

8. सेवासदन - प्रेमचंद, पृ. 37.
9. वही, पृ. 41
10. प्रेमचंद की प्रासंगिकता - चंद्रकला सिंह, सुधीर सिंह, पृ.62
11. सेवासदन - प्रेमचंद, पृ.120
12. वही, पृ. 85
13. कथा शिल्पी प्रेमचंद - डॉ. अनुराधा मिश्रा, पृ. 70



राजस्थान की इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की हिंदी कहानी और बाजारवाद

साधना शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

mailto:999sadhana999@gmail.com

शोध आलेख सार

आधुनिक युग के प्रादुर्भाव के साथ-साथ वैश्वीकरण भूमंडलीकरण, बाजारवाद आदि कारकों ने सामाजिक जीवन को सीधे-सीधे प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद के कारण देश में आए बदलाव से महानगर, नगर ही नहीं गांव भी प्रभावित हुए हैं। भौतिकता, बाजारीकरण और बढ़ती आधुनिकता के फलस्वरूप आए बदलाव के साथ ही इस कारण से उपजे विकृतियों को इस अवधि की राजस्थान की हिंदी कहानियों में पूरी शिद्दत के साथ प्रकट किया गया है। समाज में बढ़ते इसके प्रभाव, परिवारों में उपजे विघटन की स्थिति और आधुनिकता से प्रभावित मनुष्य के अंदर पनपति महत्वाकांक्षा जैसे तमाम पहलू इस दशक की राजस्थान की हिंदी कहानियों में उजागर हुए हैं, जो वर्तमान यथार्थ से साक्षात्कार कराते प्रतीत होते हैं।

बीज शब्द : भूमंडलीकरण, भौतिकता, बाजारवाद, आधुनिकता, हिंदी कहानी।

मूल आलेख

साहित्य की सभी विधाओं में समृद्धतम विधा कहानी मानी जाती है। कहानी कहने की और सुनने की प्रक्रिया अति प्राचीन है। कहानी विधा में मानवीय संवेदनाओं, जीवन का यथार्थ चित्रण होता है। हिंदी कहानी जगत में मौलिक कहानियों का उदय 'सरस्वती पत्रिका' के उदय के साथ ही माना जाता है। राजस्थान की हिंदी कहानी का आरंभ सन 1915 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित 'चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' से मानी जाती है। राजस्थान की हिंदी कहानी को गति प्रदान करने में कई कहानीकारों का योगदान है। राजस्थान की हिंदी कहानीकारों ने अपने समय के यथार्थ को जन सामान्य के सामने लाने की पुरजोर कोशिश की और अपनी पहचान मुख्य धारा के कथाकारों में बनाई। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के राजस्थान के हिंदी कहानीकारों में चरण सिंह पथिक, संदीप मील, माधव राठौड़, नंद भारद्वाज, भागचंद गुर्जर, रतन कुमार सांभरिया, रामकुमार सिंह, दिव्या विजय, मनीषा कुलश्रेष्ठ, डॉ वीणा चूंडावत, डॉ शालिनी गोयल, डॉ पद्मजा शर्मा, ईशमधु तलवार, तसनीम खान आदि अग्रगण्य हैं, जो नए कलेवर व तेवर के साथ कहानी विधा को और अधिक पुष्ट कर रहे हैं। इस शोध आलेख में इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की राजस्थान की हिंदी कहानियों में बाजारवाद का प्रभाव किस तरह हुआ है, बाजारवाद ने कैसे समाज में अपने पांव जमा लिए हैं, आदि का विश्लेषण किया जाएगा।

वैश्वीकरण का अभिप्राय किसी भी घटना अथवा विचार से नहीं वैश्विक प्रभाव से है। हालांकि प्रचलित रूप में वैश्वीकरण

का आशय आर्थिक संस्थानों का भूमंडलीय विस्तार तथा उनके बाजारवादी सोच के कारण वैश्विक स्तर पर हावी होते जा रहे उपभोक्तावादी संस्कार हैं। आज के इस बाजारवादी, वैश्वीकरण के युग में लोगों की विचारधारा और जीवन शैली को बदल दिया है। बाजारवादी सोच के कारण धन के विस्तार ने लोगों के सुखचैन को छीन लिया है। समाज से करुणा, सेवा, त्याग, प्रेम जैसे मानवीय गुण गायब जैसा होने लगे हैं। दुनिया पहले ही महानगरीय सभ्यता के बोझ तले दबी हुई थी, बाजारवाद ने उसे और बढ़ा दिया। समृद्धि के चकाचौंध में मानवीय संवेदना दम तोड़ती परिलक्षित होती है। एक अजीब किस्म की लालसा ने मनुष्य जीवन को भर दिया है, जिसे पाने की चाह में वो सारे हथकंडे अपनाता दृष्टिगत होता है। इन्हीं सब विकृतियों का चित्रण इस दशक के राजस्थान की हिंदी कहानीकारों ने बड़े मनोयोग से किया है। विस्तृत फलक पर बाजारवाद की समस्याओं को और भी विस्तार तथा गहराई में जाकर विश्लेषित करने की स्थिति को बहुत सूक्ष्म संवेदन, गहराई और विस्तार में जाकर समाज और व्यक्ति पर पड़ने वाले बाजारवाद के प्रभाव का अध्ययन इस दशक की हिंदी कहानियों में किया जा सकता है।

मानव समाज के सभी क्षेत्रों की आवश्यकताएं बढ़ने लगी है। इन्हीं आवश्यकताओं में आरंभ से जुड़ी अग्रणी आवश्यकता 'बाजार' है। प्रत्येक परिवार और समाज में बाजार की महत्ता होती है। साहित्य भी इसे अछूता नहीं रह सका। कथा सम्राट प्रेमचंद के उपन्यास 'गबन' में बाजारवाद और मानवीय मूल्य के बीच के संघर्ष को देखा जा सकता है। बाजार का एक पक्ष मानव समाज की निहित ज़रूरतों की पूर्ति के रूप में उसके वरदान के रूप में साबित होता है तो दूसरा पक्ष अपने आकर्षण में व्यक्ति का अपने मनुष्यत्व तथा पारिवारिक एवं सामाजिक सरोकारों से रिश्ते तोड़ देता है और इसका किसी को पता भी नहीं चलता। चरण सिंह पथिक की कहानी 'ठंडी गदुली' में जब पातीराम महानगर से कमा कर वापस गांव आता है तो उसका रूप बदला हुआ होता है। पौने दो साल महानगर में रहने के कारण उस पर बाजारवाद का प्रभाव स्पष्टतरु लक्षित होता है। पथिक जी लिखते हैं— "लगभग डेढ़ पौने दो साल बाद पातीराम दिल्ली मद्रास मुंबई जैसे शहरों से कमाकर गांव आया पतिराम का हुलिया बदला हुआ था। जींस की। पेंट टी-शर्ट। पांव में चमड़े के बूट। कलाई में घड़ी। जुल्फ करीने से संवरी हुई। टीशर्ट की जेब में मोबाइल। चाल में लचक और बोली में खनक। पातीराम के कपड़ों से खुशबू आ रही थी।"¹ जब इस बदले हुए हुलिए का कारण घासी ने पातीराम से पूछा तो पातीराम कहता है - "सब माया - की - माया है।"² इस प्रकार बाजारवाद व्यक्ति की हर गतिविधि में अपने पैर जमाए रखे हैं। बाजारवाद के कारण आज की दुनिया की धारा 'पैसा कमाओ घर बसाओ' जैसे सोच से प्रभावित हो गई है।

बाजारवाद समय का यथार्थ ऊपरी तौर पर सौंदर्यमूलक, चमकीला, लुभावना, सभी सुविधा देने वाला प्रतीत होता है। भागचंद गुर्जर की कहानी 'काजल क्लब' बाजारवाद के दलदल में फंसते एक मजदूर की कथा है, जो बाजारवादी विज्ञापनों के कारण ठगा जाता है। "उस दिन वह उन विज्ञापनों को पढ़ रहा था। दो-तीन विज्ञापनों को पढ़ने के बाद एक विज्ञापन पर उसकी नजर अटक सी गई जिसमें लिखा था— 'काजल क्लब (रजिस्टर्ड) बेरोजगार युवक मिले, रोजाना 10 से घ15000 रुपये कमाए पार्ट टाइम जॉब के लिए आज ही संपर्क करें मोबाइल नंबर।"³

चरण सिंह पथिक की कहानी 'कोई जादू है क्या' मध्यवर्गीय परिवार की असीमित महत्वकांक्षाओं और बढ़ती भौतिकता के पीछे भागने के कारण उपजी स्थितियों को प्रकट करता है। कहानी का केंद्रीय पात्र एक अध्यापक होता है जो अपनी ज़रूरतों का गला घोटकर परिवार की आधुनिकता की फरमाईशों को पूरा करने का प्रयास करता है। जिससे उसका बजट भी बिगड़ जाता है। "आकस्मिक घर खर्च सारा बजट गड़बड़ा देता है। अब रोटियां चूल्हे के बजाय गैस की आंच पर सिकने लगी थी। पत्नी की जिद पर गैस कनेक्शन न चाहते हुए भी लाख तंगी के बावजूद उसे लेना ही पड़ा। वह पहले की तरह सुजुकी को घसीटते— घसीटते स्कूल पहुँचता और सुजुकी उसे भटपट की आवाज से लतियाती सही सलामत शाम को घर पहुँचा देती। टीवी पर धारावाहिक और विज्ञापन देख-देखकर पत्नी की चाल, बोली, उठने बैठने का तरीका और कपड़ों से लेकर नजरिया बदल गया था।"⁴ बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण व्यक्ति अपने आप को यहाँ उपभोक्ता मात्र महसूस करता है। "हच टु हच मुफ्त कॉल है। आपका भी तो हच वाला है। एक बबलू के पास रहेगा, एक मेरे पास घर। पत्नी आत्मविश्वास से कही जा रही थी और वह एक उपभोक्ता और दर्शक की तरह देख सुन रहा था। वह फनफनाता हुआ कमरे से बाहर निकला।

सामने बाड़े में बबलू के नए मोबाइल में फिल्म 'नो एंट्री' के गाने की रिंगटोन बज रही थी। उसे विश्वास नहीं हुआ। वह एक विद्वरूप हँसी हँसता हुआ बड़बड़ाया, “स्सालाईकोई जादू है क्या.....?”⁵

यह कहानी पूरी तरह बाजार के गिरफ्त में फँसे परिवार की कहानी है जिसमें परिवार की बढ़ती महत्वाकांक्षाओं के सामने मुखिया लाचार नजर आता है। चरण सिंह पथिक की अन्य कहानी 'फिरने वालियाँ' भी बाजारवाद से प्रभावित कहानी मानी जा सकती है जिसमें बाजारवाद के कारण मानवीय संवेदना का बदलता हुआ स्वरूप सामने आता है। कथानायक के माध्यम से पथिक जी बढ़ते बाजारवाद के प्रभाव का चित्रण करते हुए लिखते हैं “मुझसे कुछ भी कहते नहीं बना। सोचता हूँ - यह आदमी मनमाना किराया वसूल करेगा। ऊपर से घर का मामला बता कर अहसान लाद देगा। गमी के बहाने शौक भी प्रकट करेगा। बाजार आदमी को इस कदर ढक लेगा मैं यह सोच भी नहीं पाया था। बाला सिर्फ शिकारी था - कुशल और अनुभवी। वह जानता है मैं अन्य किसी की जीप तय नहीं करूँगा। उसका अनुमान सही था। बाजार का यही उसूल है। वह हजार पर अड़ गया, हजार सही।”⁶ इस तरह बाजारवाद के प्रभाव के कारण मनुष्य की सोच भी लाभोन्मुखी सोच होती जा रही है। भौतिकतावादी युग में बाजारवाद हमारी संस्कृति और परंपरा में भी घुसपैठ करती जा रही है। बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण मनुष्य संवेदनशील से संवेदनहीन होता जा रहा है। इसका बखूबी चित्रण 'फिरने वालियाँ' कहानी में देखा जा सकता है, जहाँ कथानायक की पत्नी की बुआ के दिवंगत होने पर पत्नी को बुआ की याद से ज्यादा उसके फिरने पर कैसी साड़ी ब्लाउज़ पहने उस पर ध्यान देती है, जैसे शोक सभा में ना जाकर शादी में जा रही हो। “मगर पत्नी बेटी से साड़ी और ब्लाउज़ की मैचिंग पर बहस में उलझी हुई थी। कुन्तो कह रही थी “मम्मी इस तोतिया रंग की साड़ी पर गुलाबी रंग का ब्लाउज़ जमा नहीं। हरे रंग वाला ठीक जमता। “हट पागल...। तू क्या समझे! ये गुलाबी रंग का ब्लाउज़ पिछली सर्दियों में जब मैं बुआ जी से मिलने गई थी उन्होंने बड़े लाड़ से दिया था मुझे।” पत्नी अपनी दिवंगत बुआ की यादों में उलझी आईने के सामने घूम - फिर कर खुद को निहार रही थी। मुझसे कहा “आप थोड़ी देर बाहर चले जाइए। मुझे यह पेटीकोट बदलना है। कुन्तो कहती है - यह भी ठीक नहीं है। तुम बुआ जी को फिरने जा रही हो या दुनिया को अपना पेटीकोट दिखाने....?”⁷

संदीप मील की कहानी 'जादू का गुलाब नबी' नामक कहानी में भी इस भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण मनुष्य किस तरह मानवीय गुणों से दूर और संवेदनहीन तथा लाभोन्मुखी सोच के कारण किस तरह गिरता जा रहा है का बखूबी चित्रण मिलता है। इस कहानी में मनुष्य, मनुष्य का हमदर्दी न होकर सिर्फ अपना फायदा देखने वाली प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है। इस कहानी में एक न्यूज़ संपादक को अपने शो की टीआरपी के लिए एक मासूम बच्चे का इस्तेमाल करते हुए दिखाया गया है। “लाइव न्यूज़ के रेजिडेंट संपादक रुद्र प्रताप सिंह लगातार हॉस्पिटल में जमे हुए थे। वे यहाँ पर ना तो किसी न्यूज़ के लिए आए थे और नहीं गुलाब नबी से उन्हें कोई हमदर्दी थी। उनका तो एकमात्र निवेश था जिसके बदले बड़ी टीआरपी कामना चाह रहे थे और टीआरपी से विज्ञापन। यह निवेश उन्होंने स्वयं किया था और ऑफिस में अपने स्टाफ के सामने खूब डींगें भी हाकी थी कि भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में गुलाब नबी का लाइव एक ऐतिहासिक कार्य होगा।”⁸ इसी कहानी में एक और प्रसंग जहाँ मानवीय संवेदनाएं मरती हुई नजर आती हैं— “रुद्र प्रताप सिंह कुछ मित्रों के साथ घूमने आया था। गुलाब नबी की नाच पर सारे लोग झूम उठे। रुद्र प्रताप सिंह खूब पी चुका था, पूँछ वाला बच्चा देखकर वह भी दंग रह गया। तभी उसने सोचा कि 'जादू का बच्चा' जब चैनल पर नाचेगा तो टीआरपी मंगल पर पहुंच जाएगी। फिर क्या था, जुगल किशोर से सौदा कर लिया। एक साल के लिए पांच लाख में गुलाब नबी को खरीदा। जुबैद को तीन हजार प्रति माह पर जुगल किशोर को पटा लिया था। दोनों को दिल्ली लाया गया और 'लाइव न्यूज़' चैनल पर प्रचार-प्रसार कर रहा था लांचिंग की।”⁹ इसी तरह संदीप मील की 'स्कीमें' कहानी भी बाजारवाद से प्रभावित कहानी कही जा सकती है, जहाँ 'राजकुमार' नामक युवा बाजारवाद की लुभावने 'स्कीमों' के दलदल में फँसता चला जाता है।

माधव राठौड़ जी की 'बिकी हुई शामें' कहानी में भी बाजारवाद की चकाचौंध का वर्णन हुआ है। इस कहानी के माध्यम से माधव राठौड़ जी ने बाजारवाद के मजबूत जाल को चित्रित किया है जिसकी गिरफ्त में फँसे बिना कोई भी व्यक्ति नहीं रह सकता। बाजार में एक अजीब से सम्मोहन की शक्ति होती है, जो अपने पास मनुष्य को खींचता चला जाता है। माधव

राठौड़ लिखते हैं— “देव उठ चुके थे। शहर में रौनक थी। लोग शादियों की खरीदारी में व्यस्त है। हल्की गुलाबी सर्दी में भी देव दीपावली दस्तक दी। श्रीमती जी को किसी शादी में जाना है तो कपड़ों की खरीदारी करनी है। ऐसे लगता है परकोटे के भीतर का शहर सांस लेने के लिए घुट रहा है। दुकानों के छज्जों के कंगूरे काले पड़ गए हैं। ऊपर देखो तो तारों और होर्डिंग से अटी पड़ी है गलियाँ।”... शोरूम की दूधिया रोशनी की चकाचौंध में दुल्हन की पोशाक पर लगे सलमा सितारे चमक रहे थे मगर रेट जानकर साथ आए पुरुषों के चेहरे फीके पड़ रहे थे।”¹⁰ बाजारवाद अब केवल बाजारों में क्रय - विक्रय तक सीमित नहीं रहा बल्कि वह व्यक्तिवाद और भोगवादिता के चलते लोगों की प्रकृति व प्रवृत्ति बन चुका है।

वर्तमान में भूमंडलीकरण में बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण लोग एक अंधी दौड़ के पीछे भागते दिखाई देते हैं। अपने लाभ के लिए पर्यावरण से भी छेड़खानी करने से परहेज नहीं करते। संदीप मील की ‘कोकिलाशास्त्र’, चरण सिंह पथिक की ‘पीपल के फूल’ जैसी कहानियों में ऐसे प्रसंग देखने को मिलते हैं। ‘पीपल के फूल’ कहानी में बाजारवादी सोच के कारण पीपलपूरा के गांव के लोग एक विशाल पीपल के वृक्ष को काट देते हैं। “महानगर से महज बीस किलोमीटर दूर और राष्ट्रीय राजमार्ग के निकट होने के कारण कीमत करोड़ों में आँकी गई है। तालाब और कुएँ का जीर्णोद्धार होगा। पहाड़ के सहारे— सहारे बहने वाले नाले को मोड़कर तालाब को बारहमासा पानी उपलब्ध कराया जाएगा। खजूरों को बिल्कुल साफ कर वहाँ सुंदर विदेशी पौधे रोपे जाएंगे। जो तालाब किसी जमाने में फसलों की प्यास बुझाता था, अब अर्द्धनग्न सैलानियों की वोटिंग के लिए तैयार होकर डॉलर और पाउंड उगलेगा। पीपल और उसके आसपास की जमीन पर पांच सितारा होटल का निर्माण होगा।”¹¹ आधुनिकता में बाजारवाद की दौड़ में तेजी से आगे बढ़ते गए भूमंडलीकरण बाजारवाद ने हर चेहरे की विशिष्टता को सपाट कर विविधता के सौंदर्य का खात्मा कर दिया है। बाजारवाद ने शहरों की कायापलट तो की ही है गांवों को भी अपनी चपेट में फँसाया है।

इस उपभोक्ता आंधी में समूचे जीवन मूल्य तहस-नहस हो गये हैं। युवा वर्ग अपने दर्द को, अपनी थकान नशे व पब में जाकर उतारने लगे हैं। माधव राठौड़ की ‘तयशुदा दूरियों के साथ जीना’ कहानी में ऐसे ही प्रसंग चित्रित है। बाजारवाद व भूमंडलीकरण अपने मूल चरित्र में कहीं न कहीं समाज विरोधी लक्षित होता है। लोगों का एक दूसरे पर से विश्वास उठ गया है। सब चीजों से ऊपर मनुष्य के लिए सिर्फ धन महत्वपूर्ण हो गया है। भाग चंद्र गुर्जर की कहानी ‘गणगौर का मेला’ में हम देख सकते हैं, जहाँ एक दम्पति को एक होटल में कुछ पैसों के लिए अपनी घड़ी रखनी पड़ती है तभी होटल मालिक दंपति को होटल से बाहर निकाल देता है। आज साहित्यकार साहित्य के माध्यम से भूमंडलीकरण के खतरे में संवेदनात्मक और वैचारिक धरातल पर न केवल अपना प्रतिवाद दर्ज करवा रहे हैं वरन् उसको सुधार कर मानव और समाज की प्रतिष्ठा भी करना चाहते हैं।

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की राजस्थान की हिंदी कहानियों में यदि आधुनिक चेतना का प्रभाव जहाँ सर्वाधिक दिखाई देता है वह आर्थिक जीवन ही है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद का स्थायी प्रभाव दिखाई देने लगा है। बाजार व्यक्ति के जीवन को परिवर्तित करने लगा है। शैली विचारधारा तथा आधारभूत आवश्यकताओं में भी बदलाव आया है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति भी वस्तुप्राय बनकर रह गये हैं। साथ ही संवेदनात्मक स्तर पर भी बदलाव हुए हैं। युवा वर्ग और स्त्री के जीवन में उपभोक्तावाद का व्यापक असर दिखाई देने लगा है। भूमंडलीकरण बाजारवाद ने व्यक्ति की संकुचित मानसिकता में भी विस्तार किया है। अपने विचारों की अभिव्यक्ति में व्यक्ति और अधिक स्वतंत्र होने लगा है। एक सिकके के दो पहलुओं की तरह इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की राजस्थान की हिंदी कहानियों में बाजारवाद और भूमंडलीकरण का प्रभाव अच्छा और बुरा दोनों रूपों में पड़ा है। बाजारवाद और भूमंडलीकरण आधुनिक चेतना का पर्याय बनकर ही उभरे हैं।

संदर्भ सूची

1. पथिक, चरणसिंह, मैं बीड़ी पीकर झूठ नहीं बोलता, कलमकार मंच, जयपुर, 2019, पृ. 20
2. वही, पृ. 20
3. गुर्जर, भागचंद, कठपुतली नाच, ज्योति पर्व प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 2016, पृ. 32
4. पथिक, चरणसिंह, दो बहनें, राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 86
5. वही, पृ. 78
6. वही, पृ. 43
7. वही, पृ. 44
8. मील, संदीप, कोकिलाशास्त्र, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ, 2016, पृ.27
9. वही, पृ. 41
10. राठौड़, माधव, मार्क्स में मनु ढूंढती, बोधि प्रकाशन, 2018, पृ. 30
11. पथिक, चरणसिंह, दो बहनें, राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 107



परिवार के दंश को झेलता किन्नर समाज

कृतिका चौधरी

शोधार्थी हिंदी विभाग

हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

संपर्क 7018378556

ई-मेल Kritikachd94@gmail.com

डॉ. प्रीति सिंह

शोध निर्देशिका

हमारा समाज दो वर्गों में विभाजित है स्त्री एवं पुरुष। परंतु यह समाज भूल जाता है कि स्त्री पुरुष के अतिरिक्त भी एक तीसरा वर्ग है जिसे उभयलिंगी कहते हैं। जो न पूरी तरह से नर होते हैं न नारी होते हैं। वे प्रजनन न करने के कारण समाज से दरकिनार कर दिए जाते हैं। न इन्हें समाज अपनाता है न परिवार। परंतु उनके मन में परिवार से मिलने की आकांक्षा बनी रहती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज से अलग में नहीं जी सकता वही परिवार समाज की लघुतम इकाई है परिवार से ही मनुष्य संस्कार सीखता है, नैतिक गुण, आदर्श आदि परिवार से ही मिलते हैं। मूलतः परिवार दो प्रकार के होते हैं—संयुक्त परिवार और एकल परिवार। संयुक्त परिवार में माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाचा, बच्चे, आदि होते हैं। वहीं एकल परिवार में माता-पिता तथा बच्चे होते हैं परंतु आधुनिक युग में केवल एकल परिवारों का ही वर्चस्व रह गया है।

एल. एच. मॉर्गन के अनुसार परिवार के प्रकार

रक्त संबंध परिवार— एक समूह में भाइयों तथा बहनों के बीच विवाह ऐसे परिवार का आधार था।

पुनर्वातु परिवार— अनेक भाइयों की कुछ सांझी पत्नियों और उनके बहनों के कुछ सांझे पति जिसमें की पति और पत्नी के बीच भाई बहन का संबंध न हो।

युगलन परिवार— एक पुरुष एक स्त्री का विवाह परंतु सहवास या यौन संबंध में एक निष्ठा नहीं होती थी।

पितृसत्तात्मक परिवार— एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ।

एक विवाही परिवार— एक पुरुष एक स्त्री और सहवास केवल उन्हीं के बीच।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि परिवार का मुख्य उद्देश्य केवल यौन संबंध ही रहा है। पहले का मनुष्य स्वतंत्र रूप से यौन संबंध बना लेता था परंतु धीरे-धीरे नियंत्रण हुआ तथा आधुनिकता के कारण पुरुष परिवार पर शासन करने लगा।

अपेक्षित समुदाय यानी उभयलिंगी की बात करें तो यह लोग ज्यादातर घर से दूर ही रहते हैं। क्योंकि परिवार वाले इन्हें अपनाते नहीं हैं। यह लोग परिवार से दूर गंदी बस्तियों में रहने के लिए विवश है, जहां आम लोग जाना तक पसंद नहीं करते हैं, जहां स्वच्छता नाम मात्र भी नहीं है उसी जगह पर यह जीवन भर रहते हैं। लैंगिक विकलांग बच्चों के माता-पिता बच्चों को स्वीकार नहीं करते हैं उसके साथ कोई संबंध नहीं रखना चाहते हैं। माना कि वह लैंगिक रूप से विकलांग है परंतु उसके भीतर भी संवेदनाएं होती हैं परंतु कभी माता-पिता तथा कभी समाज उनकी संवेदनाओं का गला घोट देते हैं इन्हें परिवार

वाले भी कोई अधिकार नहीं देते हैं जैसे ही इन्हें पता चलता है कि उनकी संतान लैंगिक विकलांग है तो उसे उसी क्षण छुटकारा पाने के लिए उपाय सोचने लगते हैं तथा उससे छुटकारा पाकर ही चैन लेते हैं। उनके साथ परिवार वाले सौतेला व्यवहार करते हैं तभी तो वह पूरी तरह से टूट जाता है तथा ठोकरे खाने को मजबूर हो जाता है। अंततोगत्वा उसे अपने समुदाय में ही शामिल होना पड़ता है जहां उसके साथ किसी का खून का रिश्ता तो नहीं होता है परंतु उसके जैसे उसके दुख दर्द पीड़ा और संघर्ष से मिलते जुलते लोगों से वह मिल जाते हैं जिन्हें अपना मान लेते हैं तथा परिवार की तरह रहने लगता है। इसी प्रक्रिया में भी कई बार खुद को कोसता भी है तथा आत्महत्या का विचार भी करने लगता है। जिन सपनों को वह सजाता है उसका सरे आम कत्ल होते हुए देख वह टूट जाता है और यही कहानी लगभग हर उभयलिंगी व्यक्ति की कहानी होती है जिसे भी आजीवन भूल नहीं पाता है।

उपन्यासों में उभयलिंग की व्यक्ति की परिवार में स्थिति ठीक नहीं है जन्म लेते ही उसे ठिकाने लगाने का प्रयत्न किया जाता है। “प्रत्येक किन्नर अभिशप्त है अपने परिवार से बिछड़ने के दर्द से समाज का पहला घाट यहीं से शुरू होता है अपने परिवार से अपने लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर किया जाता है परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें भोगना पड़ता है।”

यही दंश उन्हें कई बार भीतर से कठोर भी बना देता है उनकी संवेदनाएं आत्महत्या कर लेती है क्योंकि परिवार ही वह संस्था होती है जहां मनुष्य को नैतिक, आर्थिक, भौतिक हर तरह का सहयोग मिलता है परिवार के द्वारा ही उसका नैतिक विकास संभव है परंतु किन्नर समुदाय को जन्म लेते ही परिवार से दूर होना पड़ता है। हम यह भूल जाते हैं कि परिवार में किन्नर भी बराबर के हकदार है उन्हें भी वह अधिकार मिलने चाहिए जो सामान्य मनुष्य को दिए जाते हैं जब परिवार में किसी किन्नर व्यक्ति का जन्म होता है तो परिवार के लोग उसकी पहचान को गुप्त रखना चाहते हैं। खुद छुप-छुप कर रोते हैं तथा ईश्वर को उलाहना देते हैं परंतु उस नन्हे बच्चे की तरफ कोई ध्यान नहीं देता जो उन्हीं का अंश है वह उसे परिवार पर कलंक मानते हैं तथा जल्द से जल्द उससे छुटकारा पाना चाहते हैं।

‘यमदीप’ उपन्यास में परिवार और नंदरानी के संघर्ष को बहुत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। नंदरानी कक्षा आठवीं तक पढ़ी होती है तथा माता-पिता भी उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं। परंतु समाज के डर से मजबूर होकर नंदरानी को त्याग देना पड़ता है तथा एक दिन अंदर आने चुपचाप घर छोड़कर चली जाती है क्योंकि वह अपने माता-पिता को समाज के सामने और शर्मिंदा होते हुए नहीं देखना चाहते थे इसलिए मैं अपने अस्तित्व को मार कर सपनों का गला गोंदकर किन्नर समुदाय में शामिल हो जाती है जिन किन्नर बच्चों का परिवार त्याग कर देते हैं वह यह भूल जाते हैं कि उनमें भी संवेदनाएं हैं नाज भी जब पागल औरत और उसके बच्चे को देखती हैं तो उसके भीतर की संवेदनाएं जाग उठती हैं। ममत्व कुलचे भरने लगता है। वह उस बच्चे को गोद में उठा लेती है और पागल औरत दर्द में तड़प कर मर जाती है तब ने में भी दुखी हृदय से कहती है, “हाय हाय बेचारी दर्द से तड़प रही है।” जिन लोगों को मां-बाप का प्रेम नसीब नहीं हुआ वह एक बच्ची को देखकर तड़प उठते हैं जहां आम इंसान उस बच्चे को देखा तक नहीं है। नाज न केवल उस बच्चे को पालती है। अपितु अच्छी शिक्षा भी मुहैया करवाती है। उसके भीतर अपनों से बिछड़ने का दुख आज भी है वह मानवी से भी कहते हैं।” पापा को अपमान लगेगा हमारे साथ रहने में हम हिजड़े जो ठहरे कोई कुछ कह देगा तो मरण हो जाएगा उनका तोड़”

किन्नर बच्चे को मां-बाप कलंक मानते हैं तथा उसे जल्द से जल्द छुटकारा पाना चाहते हैं। ‘किन्नर कथा’ उपन्यास में राजा जगत सिंह को जब यह पता चलता है कि संतान किन्नर है, तो वह उसे मरवाने का आदेश दे देते हैं वह उसे अपने परिवार पर कलंक मानते हैं। एक पिता अपनी संतान को मरवाने का आदेश देता है ताकि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बनी रहे उसके पुरुषत्व पर कोई सवाल न उठा सके। परिवार से दूर होने का दर्द भी उसे हमेशा सताता है वह उन्हें याद करती है याद करती हुई वह सोचती है।” कभी नहीं पल छीन उसे अपने घर परिवार के लोग याद आते रहे हैं मां की सुनी उसे निहारती आशीष देती आंखें पिता अपने हृदय पर पत्थर रख नम आंखों से विदा कर रहे थे।” पिता अपनी बेटी को मरवाने तक का आदेश देते नहीं है परंतु पुत्री के हृदय में अपने पिता के लिए प्रेम वैसे ही बना हुआ है वह अपने पिता को मजबूर बताती है न कि हत्यारा समझती है ऐसा केवल एक पुत्र ही सोच सकती है उसे अपनी मां की भी बहुत याद आती है परंतु

वह मजबूर है अपनों से दूर रहकर दर्द भरा घूंट पीने के लिए। यह केवल एक सोने की कहानी नहीं है प्रत्येक उस किन्नर की कहानी है। क्योंकि परिवार उन्हें अपना ही नहीं चाहता है इसलिए उनके मन में हीन ग्रंथि पैदा हो जाती है तथा आजीवन वह इसी से ग्रस्त रहकर मर भी जाते हैं उन्हें प्रेम, सम्मान तथा अपने तो की आवश्यकता होती है जो केवल किन्नर व्यक्ति की ही नहीं हर व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकता होती है हम व्यायाम के बिना रह सकते हैं आध्यात्मिक के बिना जी सकते हैं परंतु प्रेम के बिना जीवित नहीं रह सकते हैं क्योंकि यही मनुष्य का स्वभाव है परंतु आज का मानव इतना स्वार्थी है कि अपनी मान मर्यादा की झूठी शानो शौकत की रक्षा के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है तथा कोई भी धिनौना कृत्य कर सकता है तभी तो राजा अपनी ही बच्ची को मार डालने तक का आदेश दे देते हैं यहां हमें पितृसत्ता का पक्ष भी पता चलता है कि उनकी मानसिकता बहुत नीच है जो अपने घमंड में अपनी ही पुत्री के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं।

‘पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा’ का नायक विनोद भी अपने परिवार से प्रश्न पूछता है कि आखिर क्यों उसे परिवार से दूर कर दिया गया। वह पढ़ने में भी अच्छा था, फिर भी उसे परिवार से निकाल दिया गया क्यों विनोद कहता है कि “तूने मेरी बा तूने और पापा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया जिस नर्क में तूने और पापा ने धकेल है मुझे वह एक अंधा कुआं है जिसमें केवल सांप बिछू रहते हैं।” विनोद के घर वाले वाले उसका त्याग कर देते हैं परंतु विनोद के मन में अभी भी अपने परिवार के प्रति अपार प्रेम है जिसे वह चाह कर भी नहीं मिटाना चाहता है वह लगातार अपनी मां को पत्र लिखता है तथा उसे अपने अन्य बच्चों से अधिक स्नेह है परंतु किस्मत को कुछ और ही मंजूर था इसलिए विनोद चंपा बाई नमक किन्नर गुरु के पास चला जाता है पिता बदनामी के दर से उसे सारे रिश्ते तोड़ देते हैं तथा उसकी मौत की झूठी खबर चला देते हैं ताकि उनका समाज में मान सम्मान बना रहे तभी तो विनोद का मित्र ईशान उसे फोन करता है तथा पूछता है, “तू कहां से बोल रहा है विनोद तू जिंदा है जीप एक्सीडेंट में तुम्हारा नहीं तेरे पापा को तेरी मौत का भ्रम हुआ था बोल न विनोद?” यह सुनकर विनोद स्तब्ध रह जाता है तथा अपने ही परिवार के सदस्यों के षड्यंत्र को सोचकर रात भर रोता रहता है विनोद को यह समझ नहीं आता है कि आखिर उसकी गलती क्या है क्या जो व्यक्ति संतान उत्पत्ति नहीं कर सकता है। वह समाज में रहने लायक नहीं है क्यों पिता ने मेरी मौत की झूठी खबर फैलाई ऐसे बहुत से सवाल उसके मन में उठने लगते हैं।

उभयलिंगी व्यक्ति शायद अपने जीवन से बहुत हताश व निराशा हो जाता है तभी तो वह मरने तक का फैसला कर लेता है क्योंकि परिवार किसी भी इंसान की सबसे बड़ी ताकत होती है और यदि परिवार साथ न दे तो इंसान अकेला पड़ जाता है तथा कई बार तो अपने जीवन की एहलीला तक समाप्त कर देना चाहता है परंतु परिवार को उभयलिंगी व्यक्तियों को अधिक स्नेह करना चाहिए जैसे सामान्य बच्चों की देखभाल की जाती है। ठीक वैसे ही इन बच्चों की भी करनी चाहिए। क्योंकि परिवार ही हमें सर्वप्रथम नैतिकता आदर्श आदि गुण मिलते हैं वहीं से हमारा विकास शुरू होता है परंतु अब अभे देंगे व्यक्ति की दुर्गति का मुख्य कारण ही परिवार है अगर परिवार चाहे तो सामाजिक व्यवस्था से लड़कर अपने बच्चों का विकास कर सकता है परंतु परिवार ही उसके साथ खड़ा नहीं होता है इसलिए वह टूट जाता है तथा आत्महत्या जैसे कदम उठा लेता है, जो उसके लिए हानिकारक है। आज के परिवार को यह सोचने की आवश्यकता है कि जैसे एक सामान्य बच्चा पढ़ लिखकर उनका नाम रोशन कर सकता है ठीक वैसे ही परिवार के सहयोग से किन्नर भी उनका नाम रोशन कर सकता है किन्नर केवल प्रेम और सम्मान ही चाहते हैं। यदि परिवार चाहे तो उन्हें प्रेम तथा सम्मान दिलवा सकते हैं परंतु इसके लिए उन्हें हिम्मत से काम लेना होगा तथा उनके भीतर की संवेदना को भी जिंदा रखना होगा क्योंकि वह आपकी ही संतान है जिस तरह अन्य बच्चे आपकी संतान है ठीक उसी तरह वह भी मां की कोख से पैदा होते हैं।

मनुष्य हमेशा अनुकूल परिस्थितियों की ही चाह रखता है। प्रतिकूलता से वह भागत ही रहता है परंतु यदि हम प्रतिकूलता को अपने जीवन में स्वीकार्यता दे दें तो वह हमें कभी परेशान नहीं करेगी। जीवन बेहद सुखद लगेगा। ऐसा ही फैसला ‘हॉफमैन’ उपन्यास के दंपति लेते हैं, जो सब कुछ जानते समझते हुए भी ऐसे बच्चों को जन्म देते हैं, जो यौन रूप से विकलांग हैं। मां को जीवनदायनी इसलिए ही कहा जाता है, क्योंकि वह अपने बच्चों के लिए सबसे लड़ जाती है। इस उपन्यास में भी

कुछ ऐसा ही दिखाया गया है, जब परिवार समाज के डर से दंपति का साथ छोड़ देते हैं, तब दंपति उस किन्नर बच्चे के लिए परिवार से दूर हो जाते हैं तो नायक के पिता कहते हैं “मैंने परिवार के लिए कितना कुछ किया और जब आज मुझे जरूरत है तो सब यह कहकर किनारा कर गए कि इससे परिवार की छवि खराब होगी भाड़ में जाओ मुझे किसी की जरूरत नहीं मैं स्वयं कर लूंगा।”

“हिजड़ों का कोई घर नहीं होता देवेंद्र न ही घर वाले होते हैं। सबसे पहले घर वाले ही उन्हें दुधकर कर घर से बाहर फेंक देते हैं और पलट कर यह जाने की कोशिश भी नहीं करते हैं कि उसका क्या हुआ? जिंदा भी है या मर गया।” ‘दर्द न जाने कोई’ उपन्यास की यह पंक्तियां बेहद मार्मिक हैं जो यह सोचने पर विवश कर देती हैं कि अपने ही माता-पिता अपनी ही औलाद से इस तरह व्यवहार कैसे कर सकते हैं किन्नर बच्चा भी उसी मां के कोख से पैदा होता है जिससे सामान्य बच्चे पैदा होते हैं फिर ऐसा भेदभाव क्यों उसके साथ ऐसा भेदभाव के कारण में अंदर से बिल्कुल टूट जाता है वह इतना टूट जाता है कि सामान्य मनुष्य इस बात का अंदाजा तक नहीं लग सकता है अगर परिवार वाले करुणाकर अपना भी ले तो समाज उन्हें चैन से जीने नहीं देता है वह एक ऐसे गुनाह को भोग रहे हैं जो उन्होंने किया ही नहीं।

निष्कर्षतः यह हम कह सकते हैं कि यदि परिवार और समाज का बराबर सहयोग मिले तो यौन विकलांग व्यक्ति का भविष्य भी उज्ज्वल हो सकता है। वह भी समाज में वही स्थान पा सकता है जो एक सामान्य मनुष्य का होता है। वह केवल मान सम्मान से जीना चाहते हैं, जो कि प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। अतः हमें उभयलिंगी व्यक्ति को कलंक नहीं मानना चाहिए उन्हें भी सामान्य मनुष्य की तरह देखना चाहिए ताकि उन्हें भी वह मान सम्मान मिल सके जिसके वह अधिकारी हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. नारायण प्रियंका किन्नर सेक्स और सामाजिक स्वीकार्यता प्रथम संस्करण 2021 पृष्ठ संख्या 26
2. भीष्म महेंद्र किन्नर कथा प्रथम संस्करण 2018 पृष्ठ संख्या 41
3. माधव नीरज यमदीप समिक प्रकाशन 2017 पृष्ठ संख्या 10
4. वही पृष्ठ संख्या 223
5. भीष्म महेंद्र किन्नर कथा प्रथम संस्करण 2018 पृष्ठ संख्या 49
6. मुद्गल चित्रा, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 33
7. वही पृष्ठ संख्या 32
8. उपाध्याय भुवनेश्वर हॉफमैन अमन प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 17
9. माधव नीरज यमदीप सम्यक प्रकाशन संस्करण 2021 पृष्ठ संख्या 27
10. भीष्म महेंद्र किन्नर कथा प्रथम संस्करण 2018 पृष्ठ संख्या 59
11. वही पृष्ठ संख्या 60



हिन्दी नाटक की परम्परा का विकास विवरण

डॉ. रवि देव

जी 01 प्रथम तल प्रीत विहार दिल्ली-110092

मो. : 8368774150

Ravi92dev@gmail.com

पूर्व-भारतेन्दुयुगीन नाटक

ईसा की सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत देश में राजनैतिक अराजकता छा गई। देश पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे। युद्धों और कठिनाइयों के उपरांत वे अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुए। उस समय देश में अभिनय-कला के दो ही मुख्य केंद्र थे — राज्य सभा और मंदिर। चूंकि आक्रमणकारियों ने दोनों ही केंद्रों को क्षति पहुंचाई, परिणामतः अभिनय कला को क्षति पहुंची। यों भी इस्लाम नाट्यकला की अनुमति नहीं देता। प्रारंभ में आक्रमणकारी धर्मांध थे, उनमें कला के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति नहीं थी। बाद के मुगल शासकों में कला के प्रति अनुराग जागृत हुआ। अतः भारतीय इतिहास के मध्य युग में नाट्यकला फलने-फूलने लगी।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने 'नाटक' नामक निबंध में हिंदी नाटक के संबंध में टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "हिंदी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रंथ के सृष्टि हुए पच्चीस वर्ष से विशेष नहीं हुए।" उस समय उपलब्ध नाट्य साहित्य के आधार पर भारतेन्दु का यह मत बनना स्वभाविक है किंतु भारतेन्दु पूर्व हिंदी नाटकों का परिचय प्राप्त करने के लिए उपलब्ध सामग्री के आधार पर हुए अनुसंधान को दृष्टिगत रखते हुए यह कहना समीचीन होगा कि हिंदी नाटक का आविर्भाव विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में हो गया था। डॉ. दशरथ ओझा का मत है कि पिछले पच्चीस वर्षों में प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के अनुसंधानकर्ता विद्वानों ने इतना साहित्य उपलब्ध कर लिया है, जिससे सिद्ध होता है कि हिंदी का नाट्य साहित्य विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में प्रारंभ हो गया था। सत्रह से उन्नीसवीं शताब्दी तक मिलने वाला नाट्य साहित्य उसी परंपरागत नाट्य साहित्य की एक शाखा है, जो विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से लेकर अब तक प्रवाहित होती चली जा रही है।¹ डॉ. भानुदेव शुक्ल का मत है कि चौदहवीं शताब्दी के आसपास से हिंदी का प्रारंभिक मौलिक तथा अनूदित नाटक साहित्य मिलता है। मैथिली तथा हिंदी के नाटक प्रधान थे।²

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने 'नाटक' नामक निबंध में लिखा है कि 'नाटक' शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने व किसी वस्तु के स्वरूप के फेर या स्वयं दृष्टिरोशन के अर्थ फिरना। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप धारण करते हैं व वेश-विन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकीय कार्य साधन के हेतु फिरते हैं।³ प्रकट है यह 'स्वरूप के फेर' की क्रिया या 'अनुकरण की क्रिया' अपने आकृति और स्वाभाविक रूप में जो विशेष प्रयोजनों से संबद्ध होती है, तब हमारे सामने अभिनय की स्थिति आती है। अभिनय की स्थिति के कारण रूपक अथवा नाटक को संस्कृत के आचार्यों ने दृश्य काव्य के अंतर्गत माना है। काव्य के संबंध में भारतीयों ने विस्तार से चर्चा की है। केवल आचार्यों ने ही नहीं अपितु नाटक कारों ने अपने अपने मतों से उसके व्यापकत्व को स्वीकार किया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने रूपक के संबंध में लिखते

हुए लिखा है कि काव्य दो प्रकार के हैं - दृश्य और श्रव्य दृश्य। काव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके हृदय का आशय और हाव-भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे; जैसे कालिदास के शाकुंतल में भ्रमण के आने पर शाकुंतला की सुधि चितवन से कटाक्षों का फेरना ही दृश्य काव्य है। यदि श्रव्य काव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रंथ में पढ़िए तो वह काव्य जनित आनंद होगा। यदि कोई प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उसे चार गुना आनंद होता है। दृश्य काव्य की संज्ञा रूपक है। रूपकों में नाटक ही सबसे मुख्य है।⁵

वस्तुतः पूर्व-भारतेंदु और भारतेंदुकाल के रचनाकार संस्कृत के 'प्रबोध-चंद्रोदय' से प्रभावित रहे हैं। महाकवि केशव की 'विज्ञान गीता' पर इस नाटक का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'आनंद रघुनंदन' के रचनाकार महाराजा विश्वनाथ सिंह के पुत्र रघुराज सिंह ने इसी शैली में 'परम प्रबोध विधु' नाटक लिखा। इसका अभिनय रामप्रसाद ने किया। ब्रजभाषा काव्य नाट्य-परंपरा में भारतेंदु के पिता गिरिधर दास कृत 'नहुष' प्रसिद्ध है। भारतेंदु इसे हिन्दी का पहला नाटक मानते हैं। यद्यपि शैली की दृष्टि से यह अन्य ब्रजभाषा के नाटकों से भिन्न नहीं है। लेकिन ब्रजभाषा के अन्य नाटककारों से दृष्टि भिन्न है।

भारतेन्दुयुगीन नाटक

भारतेंदु के मौलिक नाटकों में जीवन की व्यापक समस्याओं को ग्रहण किया गया है। नाटककार ने प्राचीन तथा अर्वाचीन विषयों की बड़ी शक्तिमत्ता के साथ नाटक का माध्यम प्रदान किया है। किसी कृति में प्रेम, विरह और मिलन का निरूपण है तो किसी में समाज, धर्म एवं राजनीति से सम्बद्ध समस्या का चित्रण है, किसी में पुराण अथवा इतिहास के वृत्त को कथानक का आधार बनाया है तो किसी देश एवं समाज की हैदयनीय दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उनकी कला में अतीत जो प्रति आस्था तथा वर्तमानोन्मुखता का सहज समन्वय मिलता है। भारतेंदु के प्रहसन व्यंग्य और विनोदों से पूर्ण है तथा उनमें जीवन की असंगतियों पर प्रहार किया गया है। नाट्य-कला की दृष्टि से भारतेंदु के नाटक संस्कृत-नाट्य-पद्धति के अनुवर्ती हैं। उनके अधिकांश नाटकों में नांदी पाठ, भरतवाक्य, प्रस्तावना, प्रवेशक, विष्कम्भक, स्वगात, अंकावतार आदि की योजना हुई है और उनका शिल्प-विधान संस्कृत-रूपकों से साम्य रखता है। कहीं-कहीं उनमें 'अंतर्द्वंद्व', 'कार्यव्यापार', 'चरित्र-चित्रण' आदि पाश्चात्य नाट्यकला की कतिपय विशेषताएँ, आई देखी जा सकती हैं। भारतेंदु ने नाट्य-सर्जना के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र का भी निर्माण किया। उन्होंने निजी अध्ययन एवं अनुभव के बल पर 'नाटक' (सन 1883) शीर्षक कृति में शीर्षक कृति में नाट्य-सिद्धांतों का विवेचन किया है। इसे हिंदी का पहला नाट्य-शास्त्र माना जा सकता है। नाटक के क्षेत्र में इस महत्वपूर्ण देन के कारण भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी-नाटक परम्परा के प्रवर्तक के रूप में सदा स्मरण किया जाएगा। इस महान् प्रतिभा ने नाट्यकृतियों की रचना के साथ-साथ हिंदी रंगमंच की भी स्थापना की। प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों ने अनुप्राणित तथा युग-चेतना से भारतेंदु की नाट्य-सृष्टि हिंदी के लिए वरदान है।

इस युग में प्रतीक शैली के नाटक भी लिखे गए- जैसे अंबिकाव्यास का 'भारत सौभाग्य' तथा प्रतापनारायण मिश्र का 'भारत दुर्दशा'। प्रतीक शैली के अधिकांश नाटकों पर संस्कृत के 'प्रबोध चंद्रोदय' और बंगला के नाटक 'भारतेयवन' का प्रभाव है। इसमें मानव मनोविकारों को पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वैसे प्रतीक शैली पर लिखे गए नाटकों की संख्या अधिक नहीं है क्योंकि प्रथम तो इस शैली का निर्वाह अत्यंत कठिन है और उपयुक्त कथावस्तु कम उपलब्ध होती है, दूसरे अधिकांश दर्शक प्रतीक शैली के नाटकों के प्रति उत्साह नहीं दिखाते; क्योंकि जैसा कि शिलीमुख ने लिखा है— "वह आनंद कि नहीं स्वाध्याय की वस्तु होती है।"¹⁷ वस्तुतः इस काल के अधिकांश प्रतीक नाटकों की दो विशेषताएँ हैं। उनमें राष्ट्रीय तथा सुधारवादी भावना का चित्रण है और अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की गई है।

भारतेंदु का पहला लक्ष्य जनता का रुचि परिष्कार करना था, उन्होंने अपने विभिन्न नाटकों द्वारा देश की जनता को उद्बोधन प्रदान किया और समाज-सुधार इत्यादि की प्रेरणा प्रदान की। 'नील देवी' और 'सती प्रताप' में इतिहास और पुराण कि वे उज्ज्वल गाथाएँ हैं। जिनके आलोक में पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से ग्रस्त आर्य ललनाएं अपना मार्ग पहचान सकती हैं। यह वास्तव में पाश्चात्य संस्कृति के विरोध में जागरण का चिन्ह था।

समाज-सुधार वाले नाटकों में लेखकों ने देश की कुरीतियों को दिखलाना अपना मुख्य कर्तव्य समझा है। अतः इनके विषय हैं— शिक्षा की उन्नति, विवाह संबंधी कुरीति निवारण और धर्म संबंधी संशोधन। ‘प्रेम योगिनी’ नाटक में भारतेन्दु ने अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं का संकेत किया है। अन्य नाटककारों ने भी व्यवस्था, बाल विवाह, अनमेल विवाह की सहायता, गो-वध, पाश्चात्य आचार नीति आदि विषयों पर नाटक लिखे हैं। राधाकृष्ण दास का ‘दुखिनीबाला’, प्रताप नारायण मिश्र का ‘गो संकट’ ऐसे ही नाटक हैं। इस काल के नाटककारों ने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीयता का भाव भी जगाने की चेष्टा की है। भारतेन्दु ने ‘भारत दुर्दशा’ में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाई है। उनके प्रारंभ में ही उन्होंने निवेदन किया है—

**“अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पर धन विदेश चली जाए यह की ख्वारी”¹⁹**

इस नाटक के अंत में भारत भाग्य, परमात्मा और राज राजेश्वरी की पुकार लगाकर विदा होता है और भयानक निराशावादिता के साथ नाटक का अंत हो जाता है। इसी के आधार पर प्रेम जी ने ‘भारत सौभाग्य’ नाटक लिखा। जिसमें देश की राजनीति, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का भावात्मक चित्र उपस्थित किया गया है।

शृंगार, हास्य, कौतुक समाज संस्कार और देश का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने कहा था शहर के अंतःकरण की दृष्टि और सामाजिक रीति पद्धति, राधाकृष्ण दास ने ‘दुखिनी बाला’, ‘धर्मात्मा’, ‘महाराणा प्रताप’ जैसे नाटक लिखे। ब्रजरत्न दास ने इनके ‘महाराणा प्रताप’ को श्रेष्ठ माना है, क्योंकि इसमें स्वातंत्र्य चेतना का स्वर अत्यंत प्रमुख है। इसमें नाटककार प्रसिद्ध आदर्श चरित्रों के मुख से ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ने के लिए उद्बोधित करता है—

**जब लौं तन में प्राण न तबलों टेकहिं छोड़ों।
स्वाधीन बचाइ दासता शृंखला तोड़ो।²⁴**

वस्तुतः राधाकृष्ण दास गुलाम राष्ट्र को स्वतंत्रता का महत्त्व समझाना चाहते थे।

राधाचरण गोस्वामी का नाट्य साहित्य भारतेन्दु साहित्य के समान आदर्शपूर्ण है। ‘सती प्रताप’, ‘अमरसिंह राठौर’ आदि इनके नाटक हैं; जिसमें वे भारतेन्दु के समान पराधीन देश की मानसिकता और जातीय जीवन को दैन्य भाव से मुक्त करना चाहते थे।

प्रसादयुगीन नाटक

जयशंकर प्रसाद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटककार हैं। उनका आगमन हिंदी नाट्य साहित्य में एक युगांतर प्रस्तुत करता है। प्रसाद अपनी सर्वोच्चमुखी प्रतिभा के कारण हिंदी के रविंद्र कहे जाते हैं। उनके नाटकों से हिंदी नाट्य साहित्य पूर्णता को प्राप्त करता है। प्रसाद के नाटक इस प्रकार हैं — ‘सज्जन’, ‘करुणालय’, ‘कल्याणी परिणय’, ‘प्रायश्चित’, ‘राज्यश्री’, ‘विशाख’, ‘अजातशत्रु’, ‘कामना’, ‘चंद्रगुप्त’, ‘एक घूंट’, ‘स्कंदगुप्त’, ‘जन्मेजय का नागयज्ञ’, तथा ‘ध्रुवस्वामिनी’। ‘एक घूंट’ तथा ‘कामना’ को छोड़कर प्रसाद के अन्य सभी नाटक ऐतिहासिक एवं पौराणिक हैं। प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से हिंदू संस्कृति के उद्धार तत्वों की अभिव्यंजना की है। प्रसाद के नाटक प्रणयन का उद्देश्य यह रहा है “इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत प्रयत्न किया है।”²⁷ परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार प्रसाद ने अपने पात्रों को मनोवृत्तियों का नाम देकर हमारे सम्मुख हमारी पराधीनता की कथा प्रस्तुत की है।²⁸ प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक पात्रों, वातावरण आदि के प्रस्तुतीकरण के साथ सांस्कृतिक वातावरण उपस्थित करने में भी सफल रहे हैं। विद्या खंडेलवाल के अनुसार “प्रसाद ने विश्व-मानवता के जिन आदर्शों के प्रचार का प्रयास किया है, उसकी रेखाएं राष्ट्र की भौगोलिक-राजनीतिक आयामों का स्पर्श करती हुई भी, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति की उच्चता और सामाजिक आदर्शों के भव्य स्वर्ग का भी स्पर्श करती है।”²⁹

प्रसाद के नाटक दुखांत या सुखांत ना होकर प्रसादांत हैं। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में अतीत साधन है तथा वर्तमान

जीवन की सामाजिक-राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याएं एवं उनका समाधान साध्य बनकर आया है। निसंदेह प्रसाद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटककार हैं। उनके नाटक हिंदी नाटकों का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

प्रसादोत्तर युगीन नाटक

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक, पौराणिक तथा समस्या प्रधान तीन प्रकार के नाटक लिखे गए; लेकिन इस युग की प्रमुख विशेषता यह है कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, उपेंद्रनाथ अशक, लक्ष्मीनारायण मिश्र, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर आदि ने रंगमंचीय नाटक लिखे।

ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविंद बल्लभ पंत, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'रक्षाबंधन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्नभंग', 'आहुति', 'उधार', 'शपथ', 'भवन', 'प्राचीर', 'कीर्ति स्तंभ', 'संरक्षक', 'विदा' 'आन का मान' आदि हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक हैं। 'आत्म-त्याग', 'बलिदान' आदि इनके नाटकों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। एक अन्य ऐतिहासिक नाटककार वृन्दावन लाल वर्मा हैं। 'झाँसी की रानी', 'पूर्व की ओर', 'वीरमल' तथा 'ललित विक्रम' इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं। गोविंद बल्लभ पंत ने प्रायः अभिनय नाटकों की रचना की है। 'राजमुकुट' तथा 'अन्तःपुर का छिद्र' इनके दो प्रमुख ऐतिहासिक नाटक हैं। इसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त विद्यालंकार' ने 'अशोक' तथा 'रेवा' दो ऐतिहासिक नाटक लिखे। सेठ गोविंददास का 'कुलीनता', 'उदयशंकर भट्ट' का 'मुक्तिपथ' और 'शिविर', 'सियारामशरण' का 'पुण्य पर्व', लक्ष्मी नारायण मिश्र का 'गरुड़ज', 'वत्सराज' भी ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इसी प्रकार सुदर्शन का 'सिकंदर', 'जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद' का 'गौतम नंद', जगदीश चंद्र माथुर का 'कोणार्क', देवराज दिनेश का 'यशस्वी भोज' तथा 'मानव प्रताप' तथा चतुरसेन शास्त्री का 'छत्रसाल' आदि भी कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं।³¹

इस युग में ऐतिहासिक नाटकों के साथ-साथ कुछ पौराणिक नाटक भी लिखे गए हैं। पौराणिक नाटककारों में सेठ गोविन्द दास, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृथ्वीनाथ शर्मा, मेघनाथ, रामवृक्ष बेनीपुरी, गोकुलचंद्र शर्मा, किशोरीलाल वाजपेयी, उदयशंकर भट्ट, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, गोविन्द वल्लभ पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा रांगेय राघव के नाम गिनाए जा सकते हैं। इस संदर्भ में सेठ गोविंददास का 'कर्त्तव्य', चतुरसेन शास्त्री का 'मेघनाथ' तथा 'राधा-कृष्ण', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'मंझली रानी', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'सीता की माँ', किशोरीलाल वाजपेयी का 'सुदामा', कैलाशनाथ भटनागर का 'भीम प्रतिज्ञा', उदयशंकर भट्ट का 'सागर विजय', डॉ. लक्ष्मण स्वरूप का 'नल दयम्यंती', गोविंददास का 'कर्ण', गोविंदवल्लभ पंत का 'ययाति', उमाशंकर बहादुर का 'वचन का मोल', श्री निवास का 'माँ दुर्गे' आदि कुछ महत्त्वपूर्ण पौराणिकनाटक हैं।³² ये सभी नाटक पौराणिक कथानकों पर आधारित हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन नाटक

सन् 1950 के पश्चात् हिंदी नाटक में एक नया आयाम स्थापित हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश की साधारण जनता अनेक समस्याओं से जूझ रही थी, जो कि मानव-निर्मित थी। विशेषकर, निम्न मध्यम वर्ग तो बढ़ती महंगाई, आडम्बरपूर्ण जीवन-शैली आदि के कारण भीतर से खोखला हो चुका था। इस वर्ग में अशांत दाम्पत्य जीवन, बढ़ती भौतिकवादी प्रवृत्ति आदि के साथ-साथ समाज में फैलते भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद आदि का भी चित्रण किया गया है। इस प्रकार हिंदी नाटक की विषय-वस्तु में मध्यम वर्ग एवं उसकी समस्याओं को मूल रूप से स्थान दिया गया। इसमें विज्ञान के बढ़ते प्रभाव का भी हिंदी-नाटकों पर प्रभाव पड़ा।

हिंदी नाटक केवल दृश्य या देखने की सीमा से बंधा न रह सका, बल्कि रेडियो के द्वारा वह सुना जाने लगा। फलतः रेडियो के अनुरूप रेडियो नाटक भी लिखे जाने लगे। इस युग में पौराणिक नाटकों की या तो रचना बहुत कम हुई या फिर उन पौराणिक नाटकों में आधुनिक युग की समस्याओं को भी उभारा गया है। इस युग के प्रमुख पौराणिक नाटकों में आचार्य

चतुरसेन शास्त्री कृत 'गांधारी', रांगेय राघव कृत 'स्वर्गभूमि का यात्री', गोविंद बल्लभ पंत कृत 'जाति' आदि का नाम लिया जा सकता है।

इस युग में मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों — 'लहरों के राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'आधे अधूरे' के द्वारा हिंदी नाटक की विकास यात्रा को एक नया मोड़ दिया। उनका प्रमुख नाटक 'आधे अधूरे' वर्तमान युग की पारिवारिक प्रथा की सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ मध्यम वर्ग की नारी की चिंताजनक दशा को भी दर्शाता है। इस युग के प्रमुख नाटककारों में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का 'मिस्टर अभिमन्यु', 'अंधा कुआँ', 'रक्त कमल' आदि; मन्नू भंडारी का 'बिना दीवारों का घर', जगदीश चंद्र माथुर का 'कोणार्क' भीष्म साहनी का 'हानूश' सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', 'लड़ाई' आदि; विजय तेंदुलकर का 'घासीराम कोतवाल', सुरेंद्र वर्मा का 'द्रोपदी', 'आठवां सर्ग' आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी नाट्य परम्परा अत्यंत दीर्घ और सुदृढ़ है। संस्कृत से नाटक लेखन की परम्परा चलती है लेकिन हिन्दी साहित्य में भारतेंदु युग से हमें नाटकों का गद्यात्मक लेखन दिखता है। नाटकों में मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के नाटक लिखे गये और लिखे जा रहे हैं; लेकिन प्रारम्भ में अनूदित नाटकों के ही दर्शन होते हैं। प्रसाद युग में आकर ही नाटकों को सही और प्रौढ़ रूप मिलता दिखता है। इसी समय नाटक सही मायने में समाज से सीधे जुड़े दिखते हैं। प्रसादोत्तर नाटकों में हमें विविधता और नवीनता दिखती है। स्वातंत्र्योत्तर युग में ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, मिथकीय आदि अनेक रूपों में नाटकों का सृजन हुआ है; और यह लेखन परम्परा अनवरत जारी है। हालांकि बड़े और छोटे परदे के आने से इसपर थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा है पर नुक्कड़ नाटकों ने विशेष रूप से इस विधा को जीवंत रखे हुए हुए।

संदर्भ

1. भारतेंदु ग्रंथावली, ब्रजरत्नदास, पृष्ठ संख्या 752
2. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, पृष्ठ संख्या 81
3. भारतेंदुयुगीन हिंदी साहित्य, डॉ. भानुदेव शुक्ल, पृष्ठ संख्या 6
4. भारतेंदु ग्रंथावली, ब्रजरत्नदास, (परिशिष्ट) पृष्ठ संख्या 715
5. भारतेंदु ग्रंथावली, ब्रजरत्नदास, पृष्ठ संख्या 715
6. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, पृष्ठ संख्या 34
7. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, प्रथम, परिच्छेद, पृष्ठ 367
8. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, प्रथम, परिच्छेद, पृष्ठ 367
9. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, पृष्ठ संख्या 557
10. भारतेंदुयुगीन हिंदी साहित्य, डॉ. भानुदेव शुक्ल, पृष्ठ संख्या 6
11. रामायण महानाटक : प्राणचंद चौहान, पृष्ठ 23, चौपाई 82
12. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, डॉ. रामसिंह तोमर, प्रश्न संख्या 201
13. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, पृष्ठ संख्या 84
14. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रश्न संख्या 453
15. हिंदी का पहला नाटक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवां भाग, 1905 ईसवी, पृष्ठ संख्या 45
16. भारतेंदुयुगीन हिंदी साहित्य, डॉ. भानुदेव शुक्ल, पृष्ठ संख्या 13

17. मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, रमेश गौतम, पृष्ठ संख्या 111
18. प्रसाद की नाट्य कला, रामकृष्ण शिलीमुख, पृष्ठ संख्या 123
19. सत्य हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ संख्या 22
20. भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ संख्या 6
21. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय, पृष्ठ संख्या 253
22. हिन्दी साहित्य विचार : शांति स्वरूप गुप्त, पृष्ठ संख्या 128
23. हिन्दी नाटक : मिथक और यथार्थ : रमेश गौतम, पृष्ठ 83
24. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह, पृष्ठ 112
25. महाराणा प्रताप : राधाकृष्ण दास, पृष्ठ 22
26. हिन्दी नाटक रू उद्भव और विकास : दशरथ ओझा, पृष्ठ 226
27. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह, पृष्ठ 128
28. विशाख : जयशंकर प्रसाद पृष्ठ संख्या 2
29. प्रसाद के नाटक : श्री परमेश्वरी लाल गुप्त, पृष्ठ संख्या 234
30. प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना : श्रीमती विद्या खंडेलवाल पृष्ठ संख्या 58
31. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ संख्या 148
32. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ संख्या 149
33. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ संख्या 149
34. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ संख्या 150



कृष्णा सोबती की कहानियों में विभाजन की पीड़ा

मोहम्मद रहबर

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

मलिक मो. जुबैर अली

शोध-सार

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी खासकर नयी कहानी के दौर में जिन लेखिकाओं ने अपनी रचनात्मक क्षमता से हिन्दी समाज का ध्यान आकर्षित किया है। उनमें कृष्णा सोबती का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। सोबती जी का रचना संसार काफी व्यापक है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर लिखा। सोबती जी का एक मात्र कहानी-संग्रह 'बदलो के घेरे' है। इस संग्रह की कहानियाँ में तीन पक्षों को देखा जा सकता है। प्रथम स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधी, द्वितीय स्त्री की पीड़ा और तृतीय विभाजन की समस्या को देखा जा सकता है।

इस संग्रह में तीन कहानियाँ ही भारत-पाक विभाजन की त्रासदी और पीड़ा से संबंधित हैं। भारत-पाक विभाजन की त्रासदी और साम्प्रदायिक राजनीति के चलते किस तरह मानवीय संवेदनाओं का हास तथा मूल्यहीनता को इन कहानियों में देखा जा सकता है। इन तीनों कहानियों में समुदाय विशेष के प्रति भय डर तथा अपने ही देश में परायेपन की स्थिति और वर्षों से साथ रह रहे लोगों के आचार विचार में परिवर्तन को देखा जा सकता है। साम्प्रदायिकता से उपजी मार काट, आगजनी और विस्थापन के कारण समुदाय विशेष के लोगों की शारीरिक और मानसिक पीड़ा को देखा जा सकता है।

प्रस्तुत लेख में कृष्णा सोबती की तीनों कहानियों 'सिक्का बदल गया', 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' और 'मेरी माँ कहें' के माध्यम से विभाजन की त्रासदी के दर्द, पीड़ा को देखने का प्रयास किया गया है। यही मेरे लेख का ध्येय है।

कुंजी शब्द- विभाजन, त्रासदी, साम्प्रदायिकता, पीड़ा, भारत-पाक, विस्थापन आदि।

कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 ई. को पूर्वी पंजाब (अब पाकिस्तान) के गुजरात में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुजरात में ही हुई। जब देश का विभाजन हुआ तब वे फतेहचंद कॉलेज लाहौर की छात्रा थी। कृष्णा सोबती का परिवार विभाजन की त्रासदी से गुजरा और जन्मभूमि छोड़कर दिल्ली में रहने लगा।

कृष्णा सोबती की कहानियों में स्त्री की आत्म सजगता, परम्परागत समाज में उसकी घुटन एवं उससे बाहर निकलने की छटपटाहट प्रमाणिकता के साथ अभिव्यक्त हुई है।

कृष्णा सोबती की कहानियाँ 'बदलो के घेरे' संग्रह में संकलित हैं। कृष्णा सोबती के इस संग्रह की कहानियों में तीन तरह की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। एक तो प्रेम और स्त्री पुरुष संबंधों की कहानियाँ हैं जो नई कहानी की एक विशेष प्रवृत्ति है। दूसरे वर्ग की कहानियों में उन्होंने स्त्री की यातना और पीड़ा को सामाजिक संदर्भों में चित्रित करने का प्रयास किया है।

कृष्णा सोबती की कहानियों का तीसरा वर्ग देश विभाजन और साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित यातना और विडम्बनाओं

का चित्रण है। 'सिक्का बदल गया' इसी तरह की कहानी है जहाँ मानवीय प्रेम के लुप्त हो जाने के बावजूद सदभाव का एक संदेश निहित है।

विभाजन यह केवल एक शब्द नहीं बल्कि एक भाव बन गया है-दर्द का पीड़ा का विभाजन उस तूफान का नाम है जिसने लाखों लोगों को उनके ठिकानों से उखाड़ फेंका। भारत और पाकिस्तान के असंख्य लोगों के मत-मस्तिष्क पर इसकी अमिट छाप पड़ चुकी है। जो आज तक बरकरार है। "सम्प्रदाय शब्द बहुधा धर्म के साथ जुड़कर आता है। संप्रदाय का संबंध और आधार धर्म में ही केन्द्रित होता है परंतु जब इसमें राजनीति का प्रवेश होता है तो राष्ट्र, समाज पर उसका दुष्प्रभाव पड़ने लगता है और धर्म की आड़ लेकर स्वार्थ लोलुप लोग उथल-पुथल मचाने लगते हैं। धर्म की ऐसी ही सीमित और खण्डित विचारधारा सांप्रदायिकता कहलाती है।"

भारत विभाजन वह घटना है जिसकी पीड़ा से लोग आज तक नहीं उबर पाए हैं। यही कारण है कि अनेक साहित्यकारों जैसे-यशपाल, मंटो, भीष्म साहनी, अमृता प्रीतम, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राही मासूम रज़ा आदि के सृजन में उस दर्द को देखा जा सकता है। जो बंटवारे के फलस्वरूप उपजा। भारत-पाकिस्तान विभाजन भारत इतिहास की त्रासदियों में से एक है। यह एक राजनीतिक ध्वंस से अधिक मानसिक ध्वंस के रूप में हिंदी कथा साहित्य में उजागर हुआ है। यह हिंदी साहित्य के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं में विशेषकर उर्दू, सिंधी, पंजाबी के लेखकों ने भी इस त्रासदी को अपने साहित्य में स्थान दिया है। उर्दू में सआदत हसन मंटो और राजेन्द्र सिंह बेदी ने क्रमशः 'खोल दो', टोबाटेक सिंह और लाजवंती पंजाबी में कुलवंत सिंह विर्क की 'घास' तथा लोचन बख्श की 'धूल तेरे चरणों की' रचना की तो वहीं सिंधी भाषी मोतीलाल जोतवाणी और गुलज़ार अहमद ने क्रमशः 'धरती से नाता' और 'यादें' कहानी लिखी। हिंदी लेखकों ने विभाजन में टूटते नैतिक मूल्यों और मानवीय संवेदना के धरातल पर अपनी कहानियाँ लिखी। विभाजन की पीड़ा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक लेखक विभाजन पर कई कहानियाँ लिख कर भी अपने मन की पीड़ा को कम न कर सका। कथाकारों की बेचौनी (पीड़ा) इतनी बढ़ी कि उन्होंने अब उपन्यास का भी सहारा लिया।

कृष्णा सोबती के अतिरिक्त अज्ञेय ने शरणदाता, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने 'खुदाराम', विष्णुप्रभाकर ने 'तांगेवाला', उपेन्द्रनाथ अश्व ने 'चारा काटने की मशीन', अमृतलाल नागर ने 'आदमी जाना अनजाना', मोहन राकेश ने 'मलबे का मालिक', भीष्म साहनी ने 'अमृतसर आ गया है', बदीउज्जमा ने 'अंतिम इच्छा', स्वदेश दीपक ने 'रिफ्रूजी', नासिरा शर्मा ने 'सरहद के इस पार' आदि कहानियों में विभाजन की त्रासदी को दिखाया गया है।

भारत-पाकिस्तान विभाजन भारत की सबसे विनाशकारी त्रासदी है। यह कहा जा सकता है कि क्रांति की प्रतिक्रिया में जो अंग्रेजों ने क्रूरतापूर्वक व्यवहार और ज़्यादाती हमारे स्वतंत्रता सेनानियों और भारतवासियों के साथ की थी उससे भी भयानक नरसंहार जैसी घटनाएँ घटी।

कृष्णा सोबती उन साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने विभाजन की समस्या को न सिर्फ देखा अपितु स्वयं भोगा भी है इस संबंध में एक साक्षात्कार में सोबती जी कहती हैं "सिर्फ मैं ही नहीं स्वतंत्रता प्रप्ति और विभाजन के ऐन बीचोबीच से होकर निकली पीढ़िया भी जो आज तक दशकों-दशक लम्बा सफर तय कर चुकी हैं वह न उस त्रासदी को भूली हैं और न ही विभाजन से जुड़े देश के स्वाधीनता पर्व, को विभाजन को भूलना भी मुश्किल और उसे याद करते चले जाना भी खतरनाक लाखों लाख लोग जड़ों से कट गए कुनबे के पुराने छायादार पेड़ उखड़ कर ठंडे हो गए। इतिहास और भूगोल बदल गए। ऐसे में अपने को जीवित पाकर ही विस्थापित की इस त्रासदी से ऊबर कर खड़े हो जाने की कोशिश कम महत्वपूर्ण नहीं थी। व्यक्तिगत आतंक, पीड़ा, जख्म सब हकीकत को चुनौती दे रहे थे। अपने-अपने ढंग से दोनों ओर से समय का आख्यान प्रस्तुत किया गया।"

उसी भोगे हुए विभाजन की समस्याओं को यथार्थ रूप में अपने कथा साहित्य में चित्रित किया है जिनमें 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान तक' में विशेष रूप से साम्प्रदायिकता को दिखाया गया है कृष्णा सोबती के एकमात्र कहानी संग्रह 'बादलो के घेरे', में संकलित 'सिक्का बदल गया', 'मेरी माँ कहाँ', 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' आदि कहानियों में

विभाजन की पीड़ा, साम्प्रदायिकता एवं विस्थापन इत्यादि को बड़े ही मार्मिक रूप से दिखाया गया है।

‘सिक्का बदल गया’ कहानी में शाहनी की मनः स्थिति के माध्यम से पाकिस्तान में वर्षों से रह रहे एक समृद्ध परिवार के उस दर्द को बयां करता है जो सत्ता परिवर्तन (विभाजन) के बाद होने वाले एक साथ रह रहे लोगों के मन में आए बदलाव का भी रेखांकन करता है। शाहनी की ये असमंजसता एक द्वन्द्व की स्थिति को उद्घाटित करती है।

वर्षों से एक साथ रह रहे लोगों के मन में अनेक प्रश्न कौंधने लगते हैं जिससे उनका मन विचलित हो जाता है। एकाएक शाहनी अपने ही समाज, अपने ही घर, अपने ही देश में पराई हो गई है। वे लोग जो कई वर्षों से अपनी संस्कृति और परंपरा को एक साथ निभाते आए थे, एक राजनीतिक दाव के चलते अलग हो गए। यहाँ विभाजन सिर्फ भूमि का ही नहीं अपितु साथ रह रहे लोगों के मानवीय मूल्यों का भी हुआ है। जैसे कि दाऊद खां, शेरा, मुल्ला इस्माईल, बेगू पटवारी आदि पात्र जो शाहनी परिवार पर आश्रित थे विभाजन के फलस्वरूप अब वे एक दूसरे से अनजान हो गए हैं। ‘सिक्का बदल गया’ कहानी में शाहनी ट्रक की आवाज सुनकर अपनी हवेली से विस्थापन को सोचकर ही दर्द से कराह उठती हैं तभी वहाँ इंस्पेक्टर दाऊद आता है और शाहनी से अपने साथ कैप में चलने को कहता है।

शाहनी का कमजोर शरीर लड़खड़ा गया और वह अपनी स्मृतियों में खो गई। “शाहनी के कदम डोल गए, चक्कर आया और दीवार के साथ लग गई इसी दिन के लिए छोड़ गये थे शाहजी उसे? बेजान सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है क्या गुजर रही है शाहनी पर। मगर क्या हो सकता सिक्का बदल गया है....।” जो गाँव शाहजी और शाहनी के इशारों पर चलता था उन सभी के परिवारों के फैसले शाहनी की चौखट पर ही हुआ करते थे और उन्हीं का फैसला सर्वमान्य माना जाता था। आज शाहनी विभाजन के चलते उन्हीं गाँव वालों के बीच अनजान, पराई, एवं असहाय दिखाई देती हैं। शाहजी की मृत्यु के पश्चात उसी गाँव के लोग शाहनी की संपत्ति को न केवल लूटना चाहते हैं अपितु उनकी हत्या का भी षड्यंत्र रचते हैं। शाहनी को आभास होते हुए भी वह उन लोगो के सामने अनभिज्ञ बनी रहती है और अपनी पीड़ा को अपने हृदय में कचोट कर रह जाती है और अपने भावों और विचारों को किसी के सम्मुख व्यक्त नहीं करती हैं।

शाहनी की इस पीड़ा को लेखिका इस तरह व्यक्त करती हैं-“शाहनी का घर से निकलना छोटी सी बात नहीं। गाँव का गाँव खड़ा है हवेली के दरवाजे से लेकर उस द्वारे तक जिसे शाहजी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था। गाँव के सब फैसले सब मशविरे यहीं होते रहे हैं। इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गई थी। यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो। वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं किया। लेकिन बड़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है।” लम्बे संघर्षों के बाद देश को अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त हुई लेकिन अपने ही देश के स्वार्थ लोलुप राजनीतिज्ञों तथा स्वार्थपरक लोगों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए जनमानस की भावनाओं को ध्यान न रखते हुए हिन्दु-मुसलमान में विभाजित कर दिया। दोनों धर्मों के लोगों को विभाजन के उपरांत उपजी विस्थापन, मानवीय मूल्यों का ह्रास और आपसी विश्वास का अभाव जैसी पीड़ादायक समस्याओं को झेलना पड़ा।

वहीं कृष्णा सोबती ने अपनी दूसरी कहानी मेरी माँ कहाँ में 1947 के दंगे और उससे उपजी साम्प्रदायिकता ने मानवीय मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। इस कहानी में सोबती जी ने विभाजन के समय होने वाले दंगों, मारकाट, आगजनी इत्यादि जघननीय घटनाओं को दिखाया है। इस त्रासदी ने केवल मनुष्यों के शरीरों को नहीं छलनी किया बल्कि उनकी आत्माओं एवं विश्वासों को भी छलनी कर दिया जिसके परिणामस्वरूप इसने न केवल हिन्दुस्तान की गंगा-जमुनी तहजीब को क्षतिग्रस्त किया बल्कि मानवीय संबंधों और विश्वासों में हिंदू-मुस्लिम की ऐसी लकीर खींच दी, जो शायद कभी आपस में एक हो पाए। धर्म के नाम पर दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने केवल मानवीय संवेदनाओं को ताक पर रखा अपितु एक दूसरे की निर्मम हत्याएँ की जिससे एक भीषण साम्प्रदायिक वातावरण तैयार हो गया, तथा हजारों लोग मौत के घाट उतारे गए बस्तियाँ धू-धू जलकर साम्प्रदायिकता की चपेट में खाक हो गई। कृष्णा सोबती जी साम्प्रदायिक की आग से उपजी आगजनी और भीषण पीड़ा के पीछे किसी समुदाय विशेष को ज़िम्मेदार ठहराया जाना और उससे अपराधी घोषित करने को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करती और ‘सोबती वैद संवाद’ पुस्तक में कहती हैं कि “विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटनाएँ जो संघर्ष के बाद किसी एक

देश के विभाजन और नए देश के जन्म का कारण भी बनी हों, उनके राजनैतिक और सामाजिक विश्लेषण के बिना ही इकतरफा दोषारोपण करना भोलापन ही होगा। यह कहना कि यह दल अथवा वह दल, समुदाय, जाती, संप्रदाय ऐसा करने का गुनाहगार है। हिंसा, नरसंहार, आगजनी, मारकाट और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं में से लुप्त होते हुए सिर्फ एक समुदाय विशेष को अपराधी करार देना न राजनैतिक विश्लेषण होगा और ना ही साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक।”

कृष्णा सोबती ऐसी कथाकार हैं, जिनका विभाजन की विभीषिका से सीधा सामना हुआ। देश विभाजन के बाद सबसे अधिक कष्ट शरणार्थियों को झेलना पड़ा। शरणार्थी शिविरों का जीवन बड़ा ही कष्टपूर्ण और दर्द-भरा था। इस नारकीय जीवन की उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। ये सभी शरणार्थी दूसरे के द्वारा बचाए जा रहे इतिहास के शिकार थे। कई लोग अपने वतन में नहीं लौट पाए थे और अपने परिवार से बिछुड़ गये थे। सोबती ने विभाजन, सांप्रदायिकता, शरणार्थी-जीवन और भ्रष्टाचार के दृश्य अपनी आँखों के सामने देखे थे।

विभाजन की त्रासदी एवं उससे उत्पन्न घटनाओं के संबंध में नरेन्द्र मोहन जी का विचार है-“लोग युद्धों में मरते हैं राजकीय प्रकोप के शिकार होते हैं, लेकिन सदियों से एक साथ रहते आए-एक सांस्कृतिक विरासत के लोग एक दूसरे के प्रति इतनी घृणा और नफरत प्रकट कर सकते हैं हत्या करने के लिए इतने जघन्य और क्रूरतम तरीके व्यवहार में ला सकते हैं ऐसा शायद किसी ने नहीं सोचा था। भारत विभाजन इस महाद्वीप के जीवन की सबसे भयंकर त्रासदी है। इसके अप्रत्याशित आघात ने सदियों से अर्जित संस्कृति, जातीयता, भाषा और प्रकृति तथा मानवीय संबंधों को एक झटके से नष्ट कर दिया।” इसी प्रकार की भारत-पाक विभाजन से उपजी मारकाट, साम्प्रदायिकता को सोबती जी ने अपनी कहानी ‘मेरी माँ कहाँ’ में दिखाया है कि वहाँ का वातावरण धर्म के नाम पर फैली हिंसा, सांप्रदायिकता और आगजनी में परिवर्तित हो गया है। “क्या लंबी सड़क पर खड़े-खड़े यूनुस खाँ दूर-दूर गाँव में आग की लपटे देख रहा है। चीखों की आवाज़ उसके लिए नई नहीं। आग लगने पर चिल्लाने में कोई नयापन नहीं। उसने आग देखी है। आग में जलते बच्चे देखे हैं औरतें और मर्द देखे हैं। रात-रात भर जलकर सुबह खाक हो गए मुहल्लों में जले लोग देखे हैं। वह देखकर घबराता थोड़े ही है? घबराए क्या? आज़ादी बिना खून के नहीं मिलती, क्रांति बिना खून के नहीं आती और इसी क्रांति से तो उसका नन्हा सा मुल्क पैदा हुआ है।” विभाजन के फलस्वरूप उपजी समस्याएं अत्यंत गंभीर हो चुकी थी दोनों सम्प्रदायों के लोगों के बीच विश्वास नाम की कोई चीज नहीं बची थी। प्रत्येक दिशा में फैला साम्प्रदायिकता का सन्नाटा और दंगे की भेंट चढ़ी लाखों निर्दोष लोगों की लाशें ही लाशें दिखाई दे रही थीं। इस भीषण स्थिति में एक दूसरे के प्रति विश्वास का क्षरण हो चुका था। जिसको इस कहानी में साम्प्रदायिकता भेंट से बची एक बच्ची के माध्यम से देखा जा सकता है। यूनुस खाँ और उसके साथियों द्वारा भारी मारकाट करते हुए बच्ची के परिजनों को भी मौत के घाट उतार देते हैं। यद्यपि यूनुस खाँ बच्ची के प्रति स्नेह प्रकट करता है किंतु बच्ची के मन में यूनुस के प्रति किए गए स्नेह का कोई मोल नहीं था बल्कि उसके हृदय में एक सम्प्रदाय विशेष के प्रति घृणा, भय, क्रोध था। उसके हृदय में उसके परिजनों की हत्या की स्मृतियाँ कौंधने लगती हैं। स्वयं को वह यूनुस खाँ के पास असुरक्षित महसूस करती है। इस पूरी भावपूर्ण मनोदशा का वर्णन सोबती जी ने इस प्रकार किया है-“यूनुस खाँ बच्ची का सिर सहलाता है, बच्ची काँप जाती है। उसे लगता है कि हाथ गला दबोच देंगे। बच्ची सहमकर पलकें मूँद लेती है। कुछ समझ नहीं पाती कहाँ है वह? बलोची? वह भयानक रात। और उसका भाई। एक झटके के साथ उसे याद आता है कि भाई की गर्दन गंडासे से दूर जा पड़ी थी। नहीं लड़की खान की छाती पर मुट्ठियाँ मारने लगी, ‘तुम मुसलमान हो-तुम’.....एकाएक लड़की नफरत से चीखने लगी मेरी माँ कहाँ है। मेरे भाई कहाँ है। मेरी बहन कहाँ है।”

निष्कर्ष

इस तरह देखें तो सोबती जी ने विभाजन की समस्याओं को अपने उपन्यासों एवं आख्यायिकाओं में रेखांकित किया है। यद्यपि उनकी कहानियों की बात की जाए तो उनकी कहानियों में ‘सिक्का बदल गया’, ‘मेरी माँ कहाँ’, और ‘डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा’ में भारत-पाक विभाजन की त्रासदी से उपजी साम्प्रदायिक समस्या, विस्थापन, आपसी अलगाव के दर्द

को महसूस किया जा सकता है।

ये सभी घटनाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे कि स्वयं हमारे सामने घटित हो रही हों। निःसन्देह ये कहा जा सकता है कि सोबती जी ने इन सब घटनाओं को न केवल देखा बल्कि भोगा भी है। कृष्णा सोबती जी की ये प्रमुख कहानियाँ विभाजन की पीड़ा, दर्द एवं साम्प्रदायिकता को एक जीवंत दस्तावेज़ के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ

1. दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द, प्रो० मंजुला राणा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ०- 70
2. bbchindi.com शुक्रवार, 17 नवम्बर 2006.
3. सिक्का बदल गया, (बादलों के घेरे, कहानी संग्रह), कृष्णा सोबती राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ०-138
4. वही, पृ०-138
5. <https://abhivyakti-life/2020/12-13>
6. सिक्का बदल गया, नरेन्द्र मोहन (संपादक), सीमांत पब्लिकेशन, 1975, पृ० 11
7. मेरी माँ कहाँ, (बादलों के घेरे, कहानी संग्रह), कृष्णा सोबती राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ०-187
8. वही, पृ०-189-190



‘रुको रुको रामराज आ रहा है’ में बहिष्कृतों के जीवन का यथार्थ

डॉ. मिलिंद बनकर

सहायक प्राध्यापक,
आबासाहेब गरवारे महाविद्यालय, (स्वायत्त) पुणे

हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में नाटक महत्वपूर्ण विधा है। नाटक का पहला जन्म लिखित रूप में होता है, तो दूसरा जन्म मंचन के साथ पूर्ण होता है। इन विशेषताओं के कारण नाटककार जब नाटक लिखता है तो साहित्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ रंगमंचीयता को भी महत्व देता है। हिंदी साहित्य में नाटक विधा का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। इस शृंखला में द्विवेदी युगीन नाटककारों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने हिंदी नाटकों की विशेष पहचान दी। आगे जयशंकर प्रसाद ने इतिहास की कथावस्तु को आधार बनाकर ऐतिहासिक पुरुषों को रंगमंच पर साकार किया। केवल तीन नाटक लिखकर मोहन राकेश हिंदी के श्रेष्ठ नाटककारों में गिने जाने लगे। मोहन राकेश ने हिंदी नाटकों को विस्तृत फलक प्रदान किया, अब हिंदी नाटक केवल हिंदी के ही नहीं बल्कि ‘विश्व साहित्य’ की अनमोल धरोहर बन गये हैं। बावजूद इसके हिंदी का नाटक साहित्य अधूरा था क्योंकि हिंदी नाटकों के विषय ‘वर्ग-विशेष’ तक सीमित थे।

सन् 1960 के बाद भारतीय साहित्य में क्रांती की लहर दौड़ने लगी, क्योंकि साहित्य के विषय दबे-कुचले, शोषित, पीड़ित, अपमानित लोग बनने लगे। भारतीय साहित्य में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को आदर्श मानकर साहित्य-सृजन का सूत्रपात हुआ, जिसे दलित साहित्य कहा गया। मूलतः दलित साहित्य यह नामाभिधान असंगत, अनर्गल है। दलित साहित्य बाबासाहेब के दर्शन की अभिव्यक्ति है, जबकि स्वयं बाबासाहेब ने इस शब्द से परहेज किया है। अतः उनके विचारों को आधार बनाकर सृजित साहित्य को दलित साहित्य कहना कथ्या उचित है? अतः बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर को प्रेरणा मानकर जो साहित्य सृजन हो रहा है उसे दलित साहित्य नहीं बल्कि ‘आंबेडकरवादी साहित्य’ कहा जाना चाहिए।

आंबेडकरवादी साहित्य की शुरुआत मूलतः मराठी से हुई है और धीरे-धीरे समस्त भारतीय भाषाओं में इस साहित्य का सृजन होने लगा। भारत के विभिन्न प्रांतों के लोग आज आंबेडकरवादी साहित्य का सृजन कर रहे हैं। इस साहित्य की सामाजिकता के कारण आज यह साहित्य समस्त भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व कर रहा है। हिंदी साहित्य में आंबेडकरवादी नाटकों का सृजन अल्प मात्रा में हुआ है। प्रकाश त्रिभुवन ने इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है, उनका ‘रुको, रुको रामराज आ रहा है’ इस दिशा में महत्वपूर्ण नाटक है।

भारतीय समाज में सदियों से साम्प्रदायिकता, जातिवाद एवं अस्पृश्यता का बोलबाला रहा है और उस समाज का एक बहुत बड़ा तबका जिसे ‘डिप्रेस्ड क्लास’ के नाम से जाना जाता है इन तीनों का शिकार आज भी बना हुआ है। परिणामस्वरूप इन जातियों का शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास बुरी तरह प्रभावित हुआ और यह पशुओं से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर है। समाजवाद, गांधीवाद और मार्क्सवाद जैसी अनेक परिवर्तनकारी अवधारणाएँ निरन्तर अपने खोखलेपन को भरने में नाकामयाब रही हैं। जातिवाद और अस्पृश्यता आज भी अपने अलग-अलग मुखौटे के साथ प्रजातंत्र और संविधान

के अस्तित्व को चुनौती देते नजर आते हैं। इस सच्चाई की अनुभूति है, 'रूको, रूको रामराज आ रहा है'। प्रस्तुत नाटक मूलतः मराठी में लिखा गया तथा स्वयं नाटककार प्रकाश त्रिभुवन ने इसका हिंदी अनुवाद किया। नाटक के रावण, राक्षस, पटेल, आनंद आदि प्रमुख पात्र हैं तथा आनंद नाटक का नायक है। उसने एम.ए. तक की शिक्षा ग्रहण की है तथा वह अनुसूचित जाति की बस्ती में स्कूल खोलकर ज्ञानदान का कार्य कर रहा है। गांव के रामराव पटेल को यह बात अच्छी नहीं लगती इसलिए वे हनुमान रूपी प्रतीक को लंका जलाने का आदेश देते हैं। उसे पहले स्कूल जलाने को कहा जाता है।

आनंद बस्ती जलाने की रपट पुलिस में लिखवाता है पर उल्टा पुलिस उसी पर इल्जाम लगाती है कि वह स्कूल में लड़ाई-झगड़े की बातें बच्चों को सिखाता है। प्रस्तुत घटना का संवाद दृष्टव्य है।

पुलिस : तुम कौन हो?

आनंद : मैं आनंद, गाँव के बहिष्कृतों में जागृती पैदा करने के लिए इस जलायी गयी बस्ती की एक झोपड़ी में स्कूल चला रहा था।

पुलिस : सिर्फ स्कूल फिर उसे क्यों जलायेंगे? तुम क्या करते थे? मुझे तो अलग ही शक हो रहा है। तुम वहाँ पटेल के खिलाफ साजिश कर रहे होंगे?

आनंद : गलत है। मैं इन सबसे कह रहा था, तुम सब इन्सान हो, इन्सान का जिना जियो अन्याय के विरुद्ध लड़ना, सिखो।

पुलिस : अच्छा तो तुम उन्हें लड़ना सिखाते थे। गाँव में लड़ाई-झगड़े लड़वाने आते हो? हरिजनों की बस्ती जलाने के लिए अब तुम्हें ही गिरफ्तार करना पड़ेगा।¹

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से लेखक ने वर्तमान पुलिस प्रशासन की हकीकत को पाठकों के सामने रखा है वाकई भारतीय पुलिस सांप्रदायिक मानसिकता से ऊपर नहीं पायी है और आनंद इसी मानसिकता का शिकार बन जाता है। वह न्याय चाहता है। पटेल ने उसकी बस्ती जलायी है और पुलिस उसे ही गुनहगार बता रही है।

ऐसे तैसे वह इस प्रसंग से बाहर निकलता है। आगे गाँव में पुलिस पटेल की जगह निकलती है। आनंद पुलिस पटेल पद के लिए अर्जी करता है। फिर से पुलिस उसके सामने दिक्कतें पैदा करती है। पुलिस कहती है कि तुम बौद्ध हो इसलिए तुम इस पद के लिए आवेदन नहीं कर सकते। क्योंकि तुमने धर्मांतर किया है, तुमने धर्मांतर नहीं करना चाहिए था, हरिजन रहकर अर्जी करता तब ही यह संभव है।² मूलतः धर्मांतरीत बौद्ध के लिए यह सहूलियत है पर जातिवादी मानसिकता की पुलिस आनंद को रोकती है। ब्राम्हणवादी मानसिकता के लोग और पुलिस भी नहीं चाहती कि बौद्ध धम्म का प्रचार-प्रसार हो। वर्तमान समय में धर्मांतरण बंदी कानून बौद्ध धम्म की दीक्षा लेने से लोगों को रोकने के लिए सरकार की ओर से किया जानेवाला 'शरकारी षड़यंत्र' है। इस षड़यंत्र को देश के नागरिकों ने सचेत रहकर विफल बनाना समय की जरूरत है।

भारतीय लोग जातिव्यता की मानसिकता से ग्रसित हैं। रूढ़िवादी मानसिकता का चित्रण लेखक ने प्रस्तुत नाटक में अत्यंत सशक्तता के साथ किया है। होता यह है कि गाँव के जातिवादी लोग आनंद के शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कृत्य से क्रुद्ध हो जाते हैं और बहिष्कृतों की बस्ती पर हमला करते हैं। वे बहिष्कृतों की बस्ती को आग लगा देते हैं। स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं तथा एक युवक को बुरी तरह पीटते हैं। पिटाई के कारण वह बेहोश हो जाता है तो उसे पानी पिलाकर होश में लाया जाता है। होश में आनेपर उसे भागने के लिए कहा जाता है वह जान की बाजी लगाकर भागता है, उसे फिर से पकड़ लिया जाता है, और पीटा जाता है और पुछा जाता है- कहेगा जयभिम, वह जय भिम कहता रहता है। उसे फिर से पीटा जाता है और उसी में उसका अंत हो जाता है।

मूलतः यह लोग इतने क्रूर कैसे होते हैं? वे बहिष्कृतों के साथ ऐसी, अमानवीयता से क्यों पेश आते हैं? इसका जवाब हमें मोहनदास नैमिशराय से मिलता है। वे लिखते हैं कि- हिंदू जातिभेद इसलिए नहीं मानते कि वे क्रूर हैं या उनके मस्तिष्क में कोई विकार है। वे जातिभेद इसलिए मानते हैं कि उनका धर्म उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करता है। अतः कसूर उन धर्मशास्त्रों का है जिन्होंने उनकी ऐसी मनोवृत्ति कर दी है।³

यही वजह है कि बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर ने हिंदू धर्मशास्त्रों को बारूद से उड़ा देने की बात कही थी। प्रस्तुत नाटक में लेखक ने मनुवादी मानसिकता का विश्लेषण अत्यंत सशक्तता के साथ किया है। बहिष्कृतों की बस्तियां जलाना और युवकों की निर्ममता से पिटाई करकर हत्या कर देना इस प्रकार की घटनाएँ प्रजातन्त्रीय भारत में नियमित रूप से घटीत होती है और जैसा की ऐसी घटनाओं के बाद मोर्चे आंदोलन किये जाते हैं तो प्रस्तुत नाटक में भी यही होता है। आनंद सभी बहिष्कृतों को इकट्ठा करता है। उनकी चेतना जागृत करता है। प्रशासन पर हल्लाबोल करता है। नारे लगाए जाते हैं - श्मता मोर्चा जिंदाबाद, 'समता दीडी जिंदाबाद', 'लॉन्गमार्च जिंदाबाद' आदि। कई घोषणाएँ दी जाती है पर यहा भी वही होता है जो स्वाधीन भारत में हमेशा से होता आ रहा है, जो जेएनयू में हो रहा है, जो एचसीयु में हो रहा है। पुलिस मोर्चे को रोककर सभी को पकड कर ले जाती है। इस व्यवस्था में हमेशा पुलिस के माध्यम से दबे-कुचले, शाषित, बहिष्कृत लोगों की आवाज दबायी जाती है। लेखक ने इस हकीकत को यहाँ पर प्रासंगिक अभिव्यक्ति दी है।

आनंद और सभी बहिष्कृत जाति के लोग जेल से छूटकर आ जाते हैं। अब आनंद पुलिस पटेल बननेवाला है। यह बात गांव के पटेल तथा अन्य लोगों को मंजूर नहीं है, इसलिए वे शुरू से आनंद को मीठी-मीठी, बड़ी-बड़ी बातें कहकर पुलिस पटेल बनने से रोकना चाहते है। पर आनंद है कि मानता ही नहीं। अंत में आनंद के छोटे भाई का अपहरण किया जाता है। आनंद को मजबूर होकर पुलिस पटेल पद की अर्जी वापस लेना पड़ती है। क्योंकि तुका आनंद से कहता है, ए आनंद पटेल ने कहा है, तुने अर्जी वापस ले ली तो ही तेरा भाई लौटेगा, जरा भी होशियारी दिखायी, तो तू तेरे भाई का नाखून भी देख सकेगा।'⁴

वैसे भी आनंद की माँ नहीं चाहती कि आनंद पुलिस पटेल बने। क्योंकि उसकी नजर में पुलिस पटेल बनना याने, गरीबों की गरदन काटना है। माँ-बहनों की इज्जत लूटना है। स्वाधीन भारत के देहातों की यह हकीकत आनंद की माँ के वक्तव्य से ने पाठकों के सामने रखी है और यही वजह है कि बाबासाहेब ने अपने अनुयायियों को देहात छोड़कर नगरों में आने के लिए कहा था। भले ही आनंद अपनी अर्जी वापस ले लेता है पर वह अन्याय के खिलाफ लड़ना नहीं छोड़ता। वह बाबासाहेब को अपना आदर्श मानता है। उसका मानना है कि बाबासाहेब ने हमें अन्याय के खिलाफ लड़ना सिखाया है। 'टूट जाऊंगा, लेकिन झुकूंगा नहीं, यह बाना था उनका मैं भी लडूंगा।'

प्रस्तुत नाटक की निर्मिती रंगमंच को ध्यान में रखते हुए की गई है। अतः नाटक के सभी महत्वपूर्ण दृश्य मंच पर प्रस्तुत किए जा सकते हैं। आंबेडकरवादी नाटकों में 'रुको रुको रामराज आ रहा है' का विशेष महत्व है। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से लेखक ने आधे भारत की मैली तस्वीर को मंच पर साकार करने की सफल कोशिश की है।

संदर्भ

1. त्रिभुवन प्रकाश, रुको रुको, रामराज आ रहा है, पृ. 13
2. वही, पृ. 14
3. नैमिशराय मोहनदास, (संपा.), बयान, पृ. संपादकीय से
4. त्रिभुवन प्रकाश, रुको रुको, रामराज आ रहा है, पृ. 23



हिंदी रंगमंच की परंपरा का विकास विवरण

डॉ. रवि देव

जी 01 प्रथम तल प्रीत विहार दिल्ली-110092

मो. : 8368774150

Ravi92dev@gmail.com

नाटक एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसका उद्भव ही मंचन के लिए हुआ है। अतः उसके लिए रंगमंच का होना आवश्यक है। इसी प्रकार रंगमंच एक ऐसा फल है जो इसी उद्देश्य से निर्मित हुआ है कि वहां किसी नाटक का मंचन हो। अतः दोनों का संबंध अन्योन्याश्रित है। एक के बिना दूसरे का कोई महत्व नहीं है। नाटक के लिए रंगमंच का महत्व स्वीकारते हुए मोहन राकेश लिखते हैं लिखा है कि “लिखा गया नाटक हड्डियों के एक ढांचे की तरह है, जिसे रंगमंच का वातावरण ही मान क्षमता प्रदान करता है।”¹

हिंदी रंगमंच की स्थिति को देखते हुए मोहन राकेश सहज मंच के हिमायती हैं; दूसरी ओर जयशंकर प्रसाद नाटक के लिए रंगमंच को आवश्यक नहीं मानते वे कहते हैं “रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक है। हां रंगमंच पर सुशिक्षित और कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है।”²

वस्तुतः नाटक रंगमंचीय विधा है। नाटक की सही परीक्षा रंगमंच पर होती है। नाटक को हम सुनते भी हैं और देखते भी हैं। नाटक जब मंचित होता है तो उसमें केवल पात्र ही नहीं बोलते पूरा मंच बोलता है। मंच-सज्जा, रूप-सज्जा, वेशभूषा सभी बोलते हैं। यहां तक कि पात्र का पूरा शरीर बोलता है। अतः जिस नाटक में जितनी ही अधिक संभावनाएं होती हैं, वह नाटक उतना ही अधिक सफल होता है।

भारतीय रंगमंच परिकल्पना

भारत में प्रारंभ में रंगमंच का स्वरूप क्या रहा होगा? उसका आरंभ किन लोगों द्वारा किस रूप में हुआ होगा? इसकी कल्पना भर की जा सकती है। कोई ठोस और प्रामाणिक जानकारी नहीं दी जा सकती। इसका आरंभ आदिम जाति के नृत्य या उन धार्मिक अनुष्ठानों से हुआ होगा, जिनमें देवी-देवताओं की पूजा और उनके अनुकरण की प्रवृत्ति रहती थी। उस समय कोई विशेष संवाद, उन्हें बोलना, सीखने-सिखाने की आवश्यकता और किसी प्रकार की विशेष वेशभूषा भी नहीं रही होगी। लोग कहीं भी आंगन, चौपाल, पूजास्थल, देव-यात्राओं में यात्रा मार्गों पर एकत्र होते रहे होंगे और अनुकरण या पूर्व-क्रिया की आवृत्ति के प्रदर्शन रूप में कुछ क्रियाएं की जाती रही होंगी।

मनुष्य की मूल प्रवृत्ति नृत्य-गीतात्मक है। आदि मनुष्य चाहे जहां रहा हो, उसका जन्म स्थान चाहे जो है, परंतु नृत्य-गीत उसके जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं। जर्मन विद्वान विलहम बुन्ट का कथन है कि “आदिम युग में नृत्य ही मनुष्य की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन था। हाथों, पैरों, कलाइयों और कटि की विविधताओं से जैसे उसके मनोभावों की अभिव्यक्ति

के सहज प्रसव के लिए द्वार सा खुल जाता है।”⁴

भारतीय नाटकों में भी मुखौटों का प्रयोग सदा से होता आया है। द्रविड़ सभ्यता के जो अवशेष सिंध की उपत्यका में मिलते हैं। उसमें भी एक चेहरे पर बैल के सींग की भांति वाले सींग हैं तथा दूसरे चेहरे पर भेड़ के सींग की भांति। संभव है, इनका प्रयोग नृत्य-नाट्यों में होता रहा हो। भरत के ‘नाट्यशास्त्र’ में भी एक प्रकार के मुखोटे का वर्णन है। जिसे ‘प्रतिशीर्षक’ की संज्ञा दी गई है।⁶

वैदिक युग में नाटक किस रूप में था, निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। ‘वाल्मीकि रामायण’ में राम के राज्याभिषेक के समय नटी, नर्तकों और गायकों का उल्लेख किया गया है। श्री किशोरीदास वाजपेयी का तो अनुमान है कि “वाल्मीकि ने ‘रामायण’ नामक नाटक की ही रचना की थी, जो अब उपलब्ध नहीं है।”⁷

प्राचीन ग्रंथों में नाटक के लिए ‘समाज’ शब्द का प्रयोग भी होता है। समाज प्रायः सरस्वती भवन में हुआ करते थे। इनमें पक्षी या महीनों के प्रसिद्ध पर्व के अवसर पर राजा की ओर से नियुक्त नटों का अभिनय होता था। जिन्हें उत्सव कहा जाता था। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि “ये उत्सव अन्य मंदिरों में भी होते होंगे। इसके अतिरिक्त अन्य पारिवारिक उत्सवों पर भी नाटकों का आयोजन होता था।”⁸ ऐतिहासिक दृष्टि से गुफा मंच भी प्रकाश में आते हैं जो सबसे ठोस प्रमाण है अशोककालीन गुफाओं में सीतावेंगा जोगीमारा गुफाएं प्रसिद्ध हैं। जिन पर अशोक के समय की ब्राह्मी में लेख लिखे हुए हैं। सीतावेंगा की गुफा नाट्य मंडप की भांति ही बनी हुई है। उसके समक्ष सीढ़ी की भांति प्रेक्षागृह के भी अवशेष विद्यमान हैं। गुफा के भीतरी भाग में रंगमंच की व्यवस्था है। सीतावेंगा के समक्ष जो प्रेक्षागृह है उसमें 50 आदमी बड़े आराम से बैठ सकते हैं। भरत ने भी लिखा है कि रंगमंच का स्वरूप पहाड़ की गुफा जैसा होना चाहिए-

‘कार्यः शैलगुहाकारो, द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः।’⁹

मध्य प्रदेश की रामगढ़ पहाड़ी पर सीताबेंता गुफा का आकार नाट्यमंडप जैसा ही है। इस गुफा के विषय में डॉ. टी. ब्लाख ने अपने पुरातात्विक सर्वेक्षण में लिखा है कि “रामगढ़ पहाड़ी की यह सीताबेंता गुफा संसार की मोह माया से विरक्त साधु-सन्यासियों का स्थान नहीं था बल्कि बिना किसी संकोच के हम इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि वह ऐसा स्थान था जहां कविता पाठ होता था। जहां प्रेम के गीत गाए जाते थे और नाट्य अभिनय हुआ करते थे।”¹⁰ डॉ. ब्लाख के अनुसार इस गुफा के दर्शकों के बैठने के लिए जो सीढ़ीनुमा व्यवस्था है। वह यूनानी प्रभाव से ग्रहण की गई होगी, लेकिन भरतमुनि ने ‘नाट्यशास्त्र’ में प्रेक्षकों के बैठने के लिए रंगमंच में इसी प्रकार की व्यवस्था का निर्देश दिया है—

“स्तम्भानां बाह्यतश्चापि सोपानाकृति पीठकम्।

इष्टका-दारुभिः कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम्।”¹¹

अर्थात् स्तंभों के बाहर की ओर प्रेक्षकों के बैठने के लिए ईंटों और लकड़ियों द्वारा सीढ़ियों के आकार में पीठक बनाना चाहिए। आगे उन्होंने यह भी लिखा की धरातल से एक-एक हाथ ऊपर उठती हुई सीढ़ियां दर्शकों के बैठने के लिए इसलिए बनाई जाए, जिससे रंगपीठ को भली प्रकार देख सकें।

प्राचीन काल में पर्वत की गुफाओं में रंगमंडप की व्यवस्था हुआ करती थी इसका संकेत कालिदास ने भी अपने मेघदूत में दिया है। अलकापुरी से निष्कासित यक्ष मेघ से कहता है जब तुम विदिशा से आगे बढ़ोगे तो पहाड़ी पर उतर जाना, वहां तुम्हें नागराजन, शिलावेश में कला-विलास का आनंद लेते हुए मिलेंगे। यहां शिलावेश से तात्पर्य पर्वतीय गुफा से ही है। भारतीय रंगमंच का आरंभ हिमाचल शिखरों की छाया में एक विजय उत्सव के रूप में हुआ। उसके वास्तु कलात्मक स्वरूप को और रंग विधान को देखकर सम्राट नहुष के मन में विविध शिल्पों और कलाओं के समायोजन को अपने देश की समतल भूमि पर भी संपन्न करने की इच्छा पैदा हुई।

भरत ने अपने ‘नाट्यशास्त्र’ में रंगमंच के निर्माण की बात कही है लेकिन उसके कुछ वर्णन ऐसे भी हैं, जिनसे पता चलता है कि नाटकों का प्रदर्शन खुले प्रांगण हो या मंदिरों में होता था। प्रांगण किसी महल का भी हो सकता था और गांव की चौपाल का भी। भरत ने यह भी बताया है कि कैसा नाटक किस समय खेला जाए। उनके अनुसार नाटक दोपहर, आधीरात,

गोधूलि वेला या रात्रि भोजन के समय प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। नाट्यशास्त्र के कर्ता के अनुसार नाट्यमंडप की कल्पना सर्वप्रथम विश्वकर्मा ने की थी।¹²

भरत ने मंडप का वर्गीकरण दो आधारों पर किया है— आकार और प्रकार। आकार की दृष्टि से नाट्य मंडप तीन प्रकार के होते हैं— ज्येष्ठ, मध्यम और अवर। प्रकार की दृष्टि से नाट्यमंडप विकृष्ट (आयताकार), चतुरस्र (वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) होते थे।¹³

भरत द्वारा वर्णित रंगमंडल को सरल भाषा में कहना चाहे तो कह सकते हैं कि नाट्यशाला के दो भाग होते थे। पीछे का भाग अभिनय के लिए और आगे का भाग दर्शकों के लिए होता था। अभिनय के लिए निर्धारित भाग को नेपथ्य गृह, रंगशीर्ष और रंगपीठ भागों में विभाजित किया जाता था। नाट्यमंडप का अंतिम भाग नेपथ्य के लिए सुरक्षित रहता था, जिसमें पात्र वेशभूषा धारण करते थे। नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी नाटकों में अभिनय करती थीं। अतः सूचिकागृह दो भागों में विभाजित होता था एक स्त्रियों के लिए दूसरा पुरुषों के लिए। जनरल आदि ध्वनियाँ नेपथ्य से भी उत्पन्न की जाती थीं।

नाट्यमंडप के दो भागों के विषय में नाट्याचार्यों में मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार मुख्य अभिनय रंगशीर्ष भाग में होता था और कुछ के अनुसार रंगपीठ में। कुछ लोगों की मान्यता यह भी है कि यह दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, लेकिन अभी तक अधिकतर विद्वानों ने भरत तथा अभिनव गुप्त के आधार पर दोनों को अलग अलग ही माना है। मंच की सजावट में प्रमुख स्थान काष्ठ निर्मित वस्तुओं का होता था। दीवारों पर लेप करके चित्र बनाए जाते थे। भट्टतैत्ति के अनुसार दर्शकों के बैठने के लिए क्रमशः ऊँचे उठते जाने वाले सोपान की भूमि होती थी।¹⁴ अभिनव भारती के अनुसार विकृष्ट मंडप में रंगशीर्ष रंगपीठ से ऊँचा रहना चाहिए।¹⁵

‘जवनिका’ का उल्लेख करते हुए जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि वेग के साथ जिस परदे को उठाया-गिराया जाता था उसे जवनिका कहते हैं। रंगपीठ और रंगशीर्ष के बीच यह जवनिका रहती थी। यह कोई स्थाई परदा नहीं था, ना ही यह इतना बड़ा होता था जो पूरे मंच की ऊँचाई और चौड़ाई को ढक सके। यह कपड़े का एक छोटा सा टुकड़ा होता था, जिसे दोनों सिरों से पकड़कर दो व्यक्ति लाते थे और पकड़े रहते थे। अगर किसी बाहर के दृश्य को अंदर के दृश्य में परिवर्तन होता था मात्र इसी परिवर्तन दिखाने के लिए जवनिका का प्रयोग होता था। इसे ‘अपत्ति’, ‘आड़कापड़’ अथवा ‘तिस्करणी’ भी कहते थे।¹⁶

आचार्य भरत के ‘नाट्यशास्त्र’ का रचनाकाल निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता लेकिन प्रस्तुत ग्रंथ में विभिन्न प्रकार के अभिनय और रंगमंडप रचना का जो सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन तथा अनेक प्रकार के विवरण मिलते हैं, उनसे सिद्ध हो जाता है कि भरत से पहले बहुत से भारतीय रंगमंच परंपरा पर्याप्त समृद्ध हो चुकी थी।

संस्कृत रंगमंच अपने युग में अपनी उन्नति के शिखर को स्पर्श कर चुका था। गुप्तकाल में संस्कृत नाटकों का मंचन भी अपनी चरम सीमा पर था किंतु संस्कृत नाटकों के मंचन की यह परंपरा मध्ययुग तक आते आते लुप्तप्रायः हो गयी थी। चाहे संस्कृत की नाट्य परम्परा को विराम मिल गया था, लेकिन लोकमंच के रूप में रासलीला, रामलीला, नौटंकी आदि के मंचन का प्रचलन जोर पकड़ रहा था। कहा जा सकता है कि रामलीला का संपूर्ण भारत में अनेक रूपों में मंचन होता था। इस प्रकार उत्तरी भारत में राधा-कृष्ण के जीवन से संबंधित विभिन्न प्रसंगों को लेकर रासलीलाएं भी रची जाती थीं। विजयदशमी के अवसर पर भारत के गांव कस्बों और नगरों में रामलीलाओं की धूम मच जाती है। लोकमंच हिंदी रंगमंच के समीप की वस्तु है, लेकिन आज के रंगमंच पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। इसकी परंपरा की निरंतरता का प्रमुख कारण यह भी है कि लोक नाटक के मंचन का विधान अत्यंत सरल एवं सुविधाजनक है। रामलीला और रासलीला के अतिरिक्त यहां की ऐतिहासिक गाथाओं के मंचन की परंपरा भी लोक मंच के अंतर्गत आती है सत्य हरिश्चंद्र, वीर अभिमन्यु, हकीकत राय आदि इसके उदाहरण हैं।

पारसी थियेटर का आगमन - जब हिंदी नाटक लिखे जाने लगे और हिंदी रंगमंच का आरंभ होने लगा तब उर्दू

का बोलबाला था और पारसी रंगमंच अपने चरम विकास पर था। पारसी रंगमंच व्यवसायिक ढंग का रंगमंच था। उनका प्रमुख लक्ष्य धन कमाना था। लोग इनके रंग-बिरंगे परदों और पात्रों की चमकीली और भड़कीले पोशाकों को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाते थे। जनता की रुचि को परिमार्जित करने की ओर इनका ध्यान नहीं जाता था। पारसी नाटक मंडलियों का उद्देश्य जनता का सस्ता मनोरंजन करना और धन-उपार्जन करना था।

पारसी रंगमंच में बाह्य सज्जा अथवा तड़क-भड़क ही अधिक होती थी, इसलिए रंगमंच के वास्तविक विकास की संभावना यहां कम ही थी। ये नाटक साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से भी स्तरीय नहीं थे।

भारतेंदुकालीन हिंदी रंगमंच- पारसी नाटक मंडलियों की उन दिनों धूम मची हुई थी। इन मंडलियों के विरोध के फलस्वरूप कुछ व्यावसायिक साहित्य मंडलियों का उदय हुआ। इन संस्कृत व्यावसायिक मंडलियों का हिंदी रंगमंच के विकास में सराहनीय योगदान रहा। उनका दृष्टिकोण साहित्यिक एवं सांस्कृतिक था। हिंदी रंगमंच का वास्तविक आरंभ भारतेंदु जी के आगमन से हुआ था। वे अपने नाटकों का अभिनय करते थे। बलिया में उन्होंने बड़ी सफलता के साथ 'सत्य हरिश्चंद्र' का अभिनय किया था। इस युग में नाटकों में साहित्यिकता का जितना विकास हुआ उसकी अपेक्षा हिंदी रंगमंच का विकास कम हुआ; किंतु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेंदु युग में हिंदी रंगमंच अपने अस्तित्व में अवश्य आ गया था।

सन् 1861 ईस्वी में पं. शीतला प्रसाद त्रिपाठी का लिखा हुआ नाटक 'जानकी मंगल' बनारस थिएटर में सफलतापूर्वक अभिनीत किया गया। कानपुर में भी 'रणधीर प्रेममोहिनी' तथा 'सत्य हरिश्चंद्र' का सफल अभिनय किया गया। वे किसी बाह्य रंगशाला की स्थापना तो न कर सके, किंतु रंगमंच के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम अवश्य कहे जाएंगे। उस समय के हिंदी रंगमंच की डांवाडोल स्थिति की ओर संकेत करते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है "हिंदी रंगमंच को शिक्षित लोगों के व्यसन के रूप में अपना मरता-गिरता अस्तित्व अवश्य रखता है; किंतु यह जनसाधारण की वस्तु न बन सका।"²³

भारतेंदु परवर्ती हिंदी रंगमंच- भारतेंदु युग के पश्चात् रंगमंच के नाटककारों में माखनलाल चतुर्वेदी, जमुनादास मेहरा, दुर्गाप्रसाद गुप्त, शिवराम गुप्त आदि के नाम बड़े आदर से लिए जाते हैं। इन्होंने अपनी नाट्य रचनाओं में साहित्यिक नाटक और रंगमंच के नाटकों की विशेषताओं का अनोखा मिश्रण किया था। इस समय माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध हुआ था। इसका कई बार अभिनय किया गया।

जयशंकर प्रसाद का आगमन हिंदी नाटक के विकास की दृष्टि से वरदान सिद्ध हुआ; किंतु हिंदी रंगमंच के विकास के अभाव के कारण प्रसाद जी के नाटकों का मंचन नहीं हो सका। प्रसाद जी के नाटकों की अभिनेता के संबंध में बाबू गुलाबराय का मत है कि "प्रसाद जी के नाटकों की अभिनेता में उनका विस्तार तो बाधक था ही किंतु उनकी संस्कृत गर्वित दार्शनिकता प्रधान भाषा ने उनको जनसाधारण की पहुंच से बाहर कर दिया। वास्तव में प्रसाद जी के नाटकों के लिए दर्शक और अभिनेता दोनों का ही सुसंस्कृत होना अपेक्षित है। उसी के अनुकूल रंगमंच और दर्शक चाहिए।"²⁴

पृथ्वी थिएटर की स्थापना - 15 जनवरी 1944 में मुंबई में पृथ्वीराज कपूर ने 'पृथ्वी थिएटर' की स्थापना की। इस थियेटर ने हिंदी रंगमंच को नया मोड़ दिया था। इस थिएटर के मंच पर 'शकुंतला', 'दीवार', 'पठान', 'गद्दार', 'आहुति', 'पैसा', 'कलाकार' आदि कई नाटकों का रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनय किया गया। पृथ्वीराज कपूर न केवल अभिनय के लिए दूसरों को प्रेरित करते थे अपितु स्वयं भी नाटकों के अभिनय में भाग लेते थे।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी नाटक और रंगमंच में आशातीत विकास हुआ। हिन्दी रंगमंच के उत्थान हेतु सरकारी और गैर-सरकारी अनेक नाट्य संस्थाओं की स्थापना की गयी। विद्यालय-महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर भी रंगमंच को विशेष महत्त्व दिया गया। स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में अनेक हिन्दी नाटकों के मंचन के सफल प्रयास किये गये। दिल्ली स्थित शास्त्रीय नाट्य विद्यालय ने स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी रंगमंच के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त 'अभियान', 'अनामिका' आदि अन्य नाट्य संस्थाओं ने भी हिन्दी रंगमंच के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दिल्ली की 'संगीत नाट्य अकादमी' भी हिन्दी रंगमंच के विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

मन्नू भंडारी के प्रसिद्ध उपन्यास 'महाभोज' का दिल्ली स्थित 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' के कलाकारों ने कुशल मंचन किया है। श्री लाल शुक्ल के 'राग दरबारी' और कृष्ण सोबती के 'डार से बिछुरी' उपन्यासों का क्रमशः गिरीश रस्तोगी और देवेन्द्रराज के कुशल निर्देशन में अभिनय किया गया है। प्रेमचन्द और निर्मल काव्यी की प्रमुख कहानियों का भी कुशल मंचन किया गया है। इस प्रकार स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी रंगमंच में अनेक नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं तथा वह निरंतर विकास की ओर बढ़ रहा है।

‘इप्ता’ और एन. टी. ए. - भारत में जनवादी नाट्य-आन्दोलन के अंतर्गत नुक्कड़ नाटक प्रमुख हैं। विद्यालय-विश्वविद्यालय स्तर के छात्र-छात्राओं तथा अन्य उत्साही प्रगतिशील युवक-युवतियों द्वारा सामाजिक नवजागरण, सर्वहारा के शोषण के विरोध तथा राजनीतिक चेतना जगाने के प्रयास में बिना किसी रंगमंच के चौराहों या नुक्कड़ों पर अपनी अभिनय प्रतिभा का परिचय देते हैं, लोगों को प्रभावित एवं प्रेरित करते हैं। बिना वेष-परिवर्तन के लोकशैली में अपना संदेश प्रस्तुत करते हैं। ‘इप्ता’ अखिल भारतीय स्तर का संगठन था। भारत के विभिन्न प्रदेशों के नाट्यकर्मों और नाटककार एक ही मंच पर मिल सकते थे और विचारों का आदान-प्रदान कर सकते थे।

रंगमंच किसी एक विशिष्ट विचारधारा का ही हथियार बनकर न रह जाए, इसलिए एक अन्य अखिल भारतीय रंगमंच संगठन का आयोजन किया गया और श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय के नेतृत्व में ‘इण्डियन नेशनल थियेटर’ अस्तित्व में आया। एन. टी. ए. का पहला प्रदर्शन जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक ‘डिसकवरी ऑफ इण्डिया’ पर आधारित एक नृत्य-नाटक था। 132 अलग-अलग नगरों में एन. टी. की शाखाएँ स्थापित हुईं। इसके तत्वाधान में सभी भाषाओं के नाटकों का प्रदर्शन हुआ। ये दोनों संगठन स्वतंत्रता से पहले ही अस्तित्व में आ चुके थे और इनके साथ ‘कला केन्द्र’, ‘रंगभूमि’, ‘तारमण्डल’, ‘मुंबई साहित्य संघ’ की रंगमंच शाखा आदि नाट्य संस्थाओं की गतिविधियों से यह आशा बँधने लगी थी। व्यावसायिक और अव्यावसायिक रूप में नया रंगमंच उभरेगा और देश के सांस्कृतिक जीवन में अपना स्थान बनाएगा।

रंगमंच के विकास की दिशा में संस्थागत और व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास जारी थे। कलकत्ता के शंभुमित्र और मुम्बई के सत्यदेव दुबे जैसे कलाकार इस दिशा में संगठित प्रयास कर रहे थे। सत्यदेव दुबे अलकाजी के ‘थियेटर यूनिट’ से सम्बद्ध थे। ‘थियेटर यूनिट’ विदेशी नाटककारों के नाटकों का ही प्रदर्शन कर रहा था, लेकिन श्री दुबे द्वारा प्रस्तुत हिन्दी का पहला मालिक नाटक ‘अन्धायुग’ का प्रदर्शन मील का पत्थर बन गया। संस्थागत प्रयासों के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की सांस्कृतिक शाखा का सदस्य बन गया। ‘भारतीय नाट्य संघ’ नाम से एक अखिल भारतीय संस्थान यूनेस्को के ‘वर्ल्ड थियेटर सेंटर’ से जुड़ गया। सरकारी स्तर पर केन्द्रीय तथा राज्य स्तर को साहित्य अकादमी, ललित कला और संगीत-नाटक अकादमियों का संगठन हुआ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रंगमंच का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इसकी ओर शिक्षित और अशिक्षित सभी आकृष्ट होते हैं। सामूहिक कला होने के कारण रंगमंच से दर्शकों में भावात्मक एकता स्थापित होती है। इससे दर्शकों का मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही उनको अपनी सांस्कृतिक परंपरा से भी जोड़ता है और उसके मानस को परिष्कृत करता है। इससे समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना होती है। रंगमंच कथ्य को व्यापकता के साथ अभिव्यक्त करता है और इसका प्रभाव भी दर्शकों पर गहरा पड़ता है; क्योंकि यह गतिशील कार्य-व्यापार से युक्त है। यह दर्शकों को सीधे कलाकृति से जोड़ता है।

नाटक और रंगमंच का संबंध अन्योन्याश्रित है। बिना रंगमंच के नाटक अपूर्ण है और बिना नाटक के रंगमंच। जो नाटककार रंगमंच की सीमाओं को जानता है और उनको दृष्टि में रखकर नाटक लिखता है, उसके नाटक प्रायः अधिक सार्थक और मंच के अनुकूल होते हैं। वैसे तो पर्याप्त साधन और मंच उपकरण उपलब्ध होने पर जटिल और गंभीर नाटक भी वंचित कर लिए जाते हैं, पर उनसे रंगमंच का व्यापक विकास नहीं हो पाता। हिंदी का रंगमंच अभी अधिक समृद्ध नहीं है। अतः इसके लिए सहज अभिनय नाटक ही उपयुक्त हैं।

नुक्कड़ नाटक - नुक्कड़ नाटक लोकमंच की नवीनतम विधा कही जा सकती है। ‘उत्तरार्द्ध’ पत्रिका के जनवादी नाटक विशेषांक की भूमिका के रूप में सम्पादक सव्यसाची ने लिखा है— ‘बिना साज-सज्जा के सीधे-सरल रूप में मंचित ये ‘नुक्कड़

नाटक' इतने प्रभावशाली हैं कि इनका देश की अनेक नाट्य संस्थाओं ने बार-बार मंचन किया है। गाँवों और कस्बों में जहाँ प्रेक्षागृहों की सुविधाएँ नहीं हैं तथा शहरों में साधनहीन नाट्य मंडलियों के लिए प्रेक्षागृह का खर्चा वहन करना असम्भव हो जाता है, 'नुक्कड़ नाटक' जनता के घर तक पहुँचता है और उसमें भागीदार होने के लिए प्रेरित करता है, अतः इसका क्षेत्र प्रेक्षागृह से व्यापक हो जाता है।²⁹

इस विधा की अपनी जरूरियात है, अपना अनुशासन और अपना व्याकरण है जिन्हें हासिल करने के लिए लगन, मेहनत, साधना और अभ्यास की जरूरत है। नुक्कड़ नाटक में नाच-गाना और लोक कलाओं का इस्तेमाल आम होता जा रहा है.. .. कलाकार इनमें पारंगत भले ही न हों, लेकिन इनको ठीक से सीखना चाहिए और इनका ठीक से इस्तेमाल होना चाहिए। ..लोककलाएँ लोकसंस्कृति से उत्पन्न होती हैं। अपनी जीवन्तता के बल पर हर जगह हर किस्म के आदमी को गहरे रूप से प्रभावित करती हैं और उसका भरपूर मनोरंजन करती हैं। 'नुक्कड़ नाटक' किसी एक मुद्दे पर दो-एक सांग-रूपकों पर आधारित होने के कारण 'सर्वव्यापी' और 'सम्पूर्ण' नाटकों की बनस्पति ज्यादा दूर तक जाता है।³⁰

इस प्रकार भारत का लोकमंच अपनी समानता और प्रादेशिक भिन्नताओं के साथ निरंतर विकासमान रहा है। सत्तरहवीं सदी के आते-आते वह संस्कृत नाटकों की जगह ले चुका था। उसके लिए कोई भी चौराहा रंगमंच था। अभिनेताओं की व्यावसायिक जाति अस्तित्व में आ चुकी थी।

संदर्भ

1. मोहन राकेश (रंग-शिल्प और प्रदर्शन) : डॉ. जयदेव तनेजा, पृष्ठ 43
2. जयशंकर प्रसाद - रंग दृष्टि और रंग सृष्टि : डॉ. महेश आनंद, पृष्ठ 24
3. न तग्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।। नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, (1-116)
4. लेक्चर ऑन ह्यूमन एंड एनिमल साइकोलॉजी : विलहम बुन्ट पेज 86
5. भारतीय नाट्य परंपरा : नेमीचंद्र जैन, पृष्ठ 67
6. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि (संस्कृत नाट्य मीमांसा—पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगांवकर, पृष्ठ 66
7. साहित्य मीमांसा : किशोरीदास वाजपयी, पृष्ठ 45
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी समग्र पुनरावलोकन : चौथीराम यादव, पृष्ठ 77
9. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि (संस्कृत नाट्य मीमांसा—पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगांवकर, पृष्ठ 61
10. पुरातत्व विज्ञान : रामप्रकाश ओझा, पृष्ठ 88
11. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि (संस्कृत नाट्य मीमांसा — पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगांवकर, पृष्ठ 68
12. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि (संस्कृत नाट्य मीमांसा — पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगांवकर, पृष्ठ 67
13. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि (संस्कृत नाट्य मीमांसा — पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगांवकर, पृष्ठ 65
14. भारतीय काव्यशास्त्र : भागीरथ मिश्र, पृष्ठ 55
15. भारतीय काव्यशास्त्र : भागीरथ मिश्र, पृष्ठ 56
16. जयशंकर प्रसाद — रंग दृष्टि और रंग सृष्टि : डॉ. महेश आनंद, पृष्ठ 45
17. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ 58
18. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ 77
19. रंग परम्परा : भारतीय नाट्य में निरंतरता और बदलाव : नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 44
20. रंग परम्परा : भारतीय नाट्य में निरंतरता और बदलाव : नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 46

21. रंगानुभाव के बहुरंग : रमेश गौतम, पृष्ठ 111
22. रंगानुभाव के बहुरंग : रमेश गौतम, पृष्ठ 116
23. रंगानुभाव के बहुरंग : रमेश गौतम, पृष्ठ 118
24. रंगानुभाव के बहुरंग : रमेश गौतम, पृष्ठ 119
25. रंग परम्परा : भारतीय नाट्य में निरंतरता और बदलाव : नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 44
26. पारसी हिन्दी रंगमंच : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ 46
27. रंग परम्परा : भारतीय नाट्य में निरंतरता और बदलाव : नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 44
28. बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच : गिरीश रस्तोगी,
29. रंग परम्परा : भारतीय नाट्य में निरंतरता और बदलाव : नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 44
30. पारसी हिन्दी रंगमंच : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ 46



पंडिता रमाबाई के सामाजिक सुधारवादी विचार और आधुनिक भारत

नेहा कुमारी सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा

डॉ. रणजीत कुमार सिंह

शोध निर्देशक, विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,
पी. जी. सेंटर सहरसा,
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा

शोध सारांश

पंडिता रमाबाई 19वीं शताब्दी की एक महान समाज सुधारक, शिक्षाविद और नारीवादी थीं, जिन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष किया। उनका जीवन महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा और सामाजिक न्याय के लिए समर्पित था। यह शोध आलेख 'पंडिता रमाबाई के सामाजिक सुधार वाले विचार और आधुनिक भारत' विषय पर केंद्रित है, जिसमें उनके विचारों का विश्लेषण किया गया है और यह देखा गया है कि आधुनिक भारत में उनके सुधारवादी सिद्धांतों की प्रासंगिकता कितनी है।

भारत में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए रमाबाई ने शिक्षा को सबसे प्रभावी हथियार माना। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह, महिला शिक्षा और जातिगत भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई। 1889 में उन्होंने पुणे में शारदा सदन की स्थापना की, जो समाज में हाशिए पर रहने वाली महिलाओं के लिए शिक्षा और आश्रय प्रदान करने वाला केंद्र था। इसके अलावा, उन्होंने अपने लेखन और भाषणों के माध्यम से लैंगिक समानता और महिला अधिकारों की वकालत की।

यह शोध आलेख पंडिता रमाबाई के विचारों का गहन अध्ययन करता है और यह विश्लेषण करता है कि आधुनिक भारत की सामाजिक और कानूनी संरचना में उनका क्या प्रभाव पड़ा है। भारत में बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, महिलाओं के लिए आरक्षण और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ रमाबाई के विचारों से प्रेरित प्रतीत होती हैं।

आलेख का उद्देश्य पंडिता रमाबाई के विचारों की ऐतिहासिक और समकालीन प्रासंगिकता को उजागर करना है। यह अध्ययन भारत में महिला अधिकारों और सामाजिक सुधारों की पृष्ठभूमि को समझने में सहायक होगा तथा यह दर्शाएगा कि रमाबाई का योगदान केवल अतीत तक सीमित नहीं है, बल्कि आधुनिक भारत के सामाजिक सुधार आंदोलनों के लिए एक प्रेरणा बना हुआ है।

बीज शब्द : पंडिता रमाबाई, सामाजिक सुधार, महिला शिक्षा, नारी सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, विधवा पुनर्विवाह, जाति प्रथा और भेदभाव, शारदा सदन, नारीवादी विचारधारा, पितृसत्तात्मक समाज, धार्मिक सुधार, ईसाई धर्म और सामाजिक सेवा, महिला अधिकार आंदोलन, शिक्षा और आत्मनिर्भरता, भारत में सामाजिक न्याय, आधुनिक भारत में महिला अधिकार, संवैधानिक सुधार और महिलाएँ, नारी उत्थान के प्रयास, समाज सुधार आंदोलन, भारत में महिला नीतियाँ।

परिचय

पंडिता रमाबाई 19वीं शताब्दी की एक क्रांतिकारी समाज सुधारक, शिक्षाविद और नारीवादी विचारक थीं, जिन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका मानना था कि महिलाओं की शिक्षा और आत्मनिर्भरता ही समाज में उनके उत्थान का एकमात्र तरीका है। यह शोध 'पंडिता रमाबाई के सामाजिक सुधार वाले विचार और आधुनिक भारत' विषय पर केंद्रित है, जिसमें उनके विचारों का विश्लेषण किया गया है और यह समझने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक भारत में उनके सिद्धांत कितने प्रासंगिक हैं।

रमाबाई ने विशेष रूप से महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, जातिगत भेदभाव के उन्मूलन और पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना जैसे विषयों पर कार्य किया। उन्होंने 1889 में पुणे में शारदा सदन की स्थापना की, जो बेसहारा और विधवा महिलाओं को शिक्षा और आत्मनिर्भरता प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण संस्थान बना। उनके विचारों का व्यापक प्रभाव न केवल उनके समकालीन समाज पर पड़ा, बल्कि आधुनिक भारत की नीतियों और सुधारों में भी देखा जा सकता है।

आधुनिक भारत में महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता को लेकर जो प्रयास किए जा रहे हैं, वे कहीं न कहीं रमाबाई के विचारों से प्रेरित हैं। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, सर्व शिक्षा अभियान, और महिला आरक्षण जैसी योजनाएँ रमाबाई के शिक्षा और सशक्तिकरण संबंधी विचारों का ही विस्तार हैं। भारतीय संविधान में महिलाओं को समान अधिकार देने वाले प्रावधान, जैसे कि अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15 (लैंगिक भेदभाव का निषेध), और अनुच्छेद 39 (महिलाओं के कल्याण से संबंधित निर्देश), रमाबाई के सुधारवादी दृष्टिकोण के अनुरूप हैं।

इसके अतिरिक्त, जातिगत भेदभाव के उन्मूलन के लिए जो कानून और नीतियाँ बनाई गई हैं, जैसे अनुसूचित जाति और जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम (1989), वे भी उनके विचारों की आधुनिक अभिव्यक्ति हैं। उनके प्रयासों का प्रभाव हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856) और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) में भी देखा जा सकता है। अतः यह स्पष्ट होता है कि पंडिता रमाबाई का योगदान केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि एक सतत प्रेरणा है। उनके सुधारवादी विचार आज भी महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा और सामाजिक न्याय की दिशा में भारत के लिए मार्गदर्शक बने हुए हैं। आधुनिक भारत की महिला सशक्तिकरण नीति और सामाजिक सुधार योजनाएँ उनके विचारों की निरंतरता को दर्शाती हैं।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सदियों से संघर्षपूर्ण रही है। विशेष रूप से 19वीं शताब्दी के दौरान, जब सामाजिक कुरीतियाँ, जैसे बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा उत्पीड़न और शिक्षा का अभाव, महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित कर रही थीं, उस समय कुछ समाज सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्हीं में से एक थीं पंडिता रमाबाई, जिन्होंने न केवल महिलाओं की शिक्षा पर बल दिया बल्कि विधवा पुनर्विवाह, जातिगत भेदभाव और लैंगिक समानता की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पंडिता रमाबाई भारतीय समाज सुधार आंदोलन की अग्रणी महिला थीं, जिन्होंने महिलाओं की शिक्षा को उनका मौलिक अधिकार माना और इस दिशा में कार्य किया। उनके विचार और सुधारवादी प्रयास न केवल 19वीं शताब्दी के भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन लेकर आए, बल्कि आज भी भारतीय समाज की सामाजिक नीतियों, महिला शिक्षा कार्यक्रमों और लैंगिक समानता से संबंधित कानूनों में उनकी छाप देखी जा सकती है।

पंडिता रमाबाई के सामाजिक सुधार वाले विचारों और उनके आधुनिक भारत में प्रभाव का विश्लेषण करना है। यह शोध उनकी सुधारवादी विचारधारा, उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं और आधुनिक भारत में उनके विचारों की प्रासंगिकता की विस्तृत चर्चा करता है।

1. पंडिता रमाबाई का जीवन परिचय और सुधारवादी यात्रा

1.1 प्रारंभिक जीवन और शिक्षा

पंडिता रमाबाई का जन्म 23 अप्रैल 1858 को कर्नाटक के गंगामूल गाँव में हुआ था। उनके पिता, अनंत शास्त्री, एक संस्कृत विद्वान थे, जिन्होंने समाज की परंपराओं को तोड़ते हुए अपनी बेटी को शिक्षा प्रदान की। भारतीय समाज में लड़कियों की शिक्षा को महत्व नहीं दिया जाता था, लेकिन रमाबाई को वेद, पुराण और संस्कृत शास्त्रों का गहन अध्ययन करने का अवसर मिला।

उनकी असाधारण विद्वता के कारण उन्हें षण्डिता और पसरस्वती की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। हालाँकि, उनके माता-पिता का देहांत हो जाने के बाद, उन्होंने अपने संघर्षपूर्ण जीवन में महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक सुधारों के लिए कार्य करने का निर्णय लिया।

1.2 विवाह और वैधव्य

रमाबाई ने बंगाल के बिपिन बिहारी दास से विवाह किया, जो एक कायस्थ परिवार से थे। यह अंतरजातीय विवाह उस समय के सामाजिक मानदंडों के विरुद्ध था, जो उनके सुधारवादी दृष्टिकोण को दर्शाता है। लेकिन उनके पति की शीघ्र मृत्यु हो गई, जिससे वे विधवा हो गईं। इस घटना ने उन्हें विधवा महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए प्रेरित किया।

2. पंडिता रमाबाई के प्रमुख सामाजिक सुधारवादी विचार

2.1 महिला शिक्षा का समर्थन

रमाबाई का मानना था कि महिलाओं की शिक्षा ही उनके सशक्तिकरण की कुंजी है। उन्होंने 1889 में पुणे में शारदा सदन की स्थापना की, जहाँ विधवाओं और बेसहारा महिलाओं को शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

आज भारत में महिला शिक्षा के लिए चलाए जा रहे कार्यक्रम, जैसे बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, सर्व शिक्षा अभियान, उनके विचारों से प्रेरित माने जा सकते हैं।

2.2 विधवा पुनर्विवाह का समर्थन

19वीं शताब्दी में विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। रमाबाई ने विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में समाज में जागरूकता फैलाने का प्रयास किया।

उनकी विचारधारा का प्रभाव 1856 में पारित विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पर देखा जा सकता है, जिसने भारतीय विधवाओं को पुनर्विवाह का कानूनी अधिकार प्रदान किया।

भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति ऐतिहासिक रूप से कठिन रही है। 19वीं शताब्दी से पहले विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी, और उन्हें सामाजिक अपमान और प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था। ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों से 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित किया गया, जिसने उन्हें पुनर्विवाह का कानूनी अधिकार दिया।

आज भारतीय संविधान महिलाओं को समानता (अनुच्छेद 14), भेदभाव निषेध (अनुच्छेद 15) और जीवन के अधिकार (अनुच्छेद 21) जैसी सुरक्षा प्रदान करता है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 और डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट, 2005 भी महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित करने में सहायक हैं।

2.3 जाति प्रथा और सामाजिक भेदभाव का विरोध

रमाबाई ने जातिगत भेदभाव का खुलकर विरोध किया। उनका मानना था कि शिक्षा और समान अवसर सभी को मिलने चाहिए, चाहे वे किसी भी जाति के हों।

आधुनिक भारत में अनुसूचित जाति और जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम (1989) जैसे कानून इसी सुधारवादी सोच का परिणाम हैं।

2.4 पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना

उन्होंने भारतीय समाज की उस संरचना की आलोचना की, जहाँ महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम अधिकार दिए

जाते थे।

आधुनिक भारत में महिलाओं के लिए बने कानून, जैसे महिला उत्पीड़न अधिनियम, घरेलू हिंसा अधिनियम, आदि, उनके विचारों की झलक प्रस्तुत करते हैं।

3. आधुनिक भारत में पंडिता रमाबाई के विचारों की प्रासंगिकता

3.1 महिला शिक्षा नीति

महिला शिक्षा किसी भी समाज के समग्र विकास की आधारशिला है। भारत में महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नीतियाँ बनाई गई हैं, जिनमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (छम् 2020), बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, सर्व शिक्षा अभियान आदि प्रमुख हैं। इन नीतियों का उद्देश्य महिलाओं को सशक्त बनाना, उनकी साक्षरता दर बढ़ाना और उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने महिलाओं की उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित करने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने पर विशेष ध्यान दिया है। इसके तहत लड़कियों की शिक्षा तक आसान पहुँच, वजीफा योजनाएँ और डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है।

महिला शिक्षा से न केवल आर्थिक विकास होता है, बल्कि यह सामाजिक जागरूकता और लैंगिक समानता को भी सुदृढ़ करता है। महिलाओं की शिक्षा में निवेश, राष्ट्र के भविष्य में निवेश के समान है, क्योंकि शिक्षित महिलाएँ परिवार, समाज और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

3.2 विधवा पुनर्विवाह और महिलाओं के अधिकार

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) महिलाओं को उनकी संपत्ति में समान अधिकार प्रदान करता है।

3.3 जातिगत भेदभाव का उन्मूलन

संविधान में जातिगत भेदभाव को समाप्त करने के लिए कठोर कानून बनाए गए हैं।

3.4 महिलाओं के कानूनी अधिकार और सुरक्षा

भारतीय संविधान महिलाओं को समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14), स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19), और भेदभाव के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 15) प्रदान करता है।

3.5 महिलाओं के आर्थिक अवसर और आत्मनिर्भरता

महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए स्टार्टअप इंडिया, मुद्रा योजना और स्वयं सहायता समूहों जैसी योजनाएँ चलाई जा रही हैं।

निष्कर्ष

पंडिता रमाबाई के विचारों का प्रभाव आधुनिक भारत की सामाजिक और कानूनी संरचना में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके प्रयासों ने महिलाओं की शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, जातिगत समानता और महिला सशक्तिकरण की दिशा में नए द्वार खोले।

आज भारतीय समाज में लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को लेकर जो भी नीतियाँ और कानून बनाए जा रहे हैं, वे कहीं न कहीं उनके विचारों और प्रयासों से प्रेरित हैं।

इसलिए, यह कहा जा सकता है कि पंडिता रमाबाई का योगदान भारतीय समाज सुधार आंदोलन में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है और उनकी विचारधारा आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक बनी रहेगी।

संदर्भ सूची

1. पंडिता रमाबाई, 'द हाई-केस्ट हिंदू वुमन', 1887।
2. उमा चक्रवर्ती, "Rewriting History: The Life and Times of Pandita Ramabai", 1998
3. मीरा कोसांबी, "Feminism and Nationalism in Colonial India", 2007
4. रोमिला थापर, "A History of India", 2002
5. सरकार, सुनील कुमार, "Indian Renaissance and Pandita Ramabai", 2010.



वागड़ क्षेत्र में हनुमान और भैरव रूपाकृतियों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व

डॉ. सुशील सोमपुरा

प्राचार्य

न्यू लूक गर्ल्स कॉलेज, बाँसवाड़ा

अल्पेन्द्र सिंह झाला

शोधछात्र, दृश्यकला विभाग

गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बाँसवाड़ा

alpendrasingh1984@gmail.com

9549637240

शोधसार

वागड़, राजस्थान का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में हनुमान और भैरव की पूजा विशेष रूप से श्रद्धा और भक्ति के प्रतीक के रूप में की जाती है। हनुमान जी को शक्ति, साहस, और भक्ति का प्रतीक माना जाता है, वहीं भैरव जी को विनाश, शक्ति और तंत्रिक साधना का देवता माना जाता है। वागड़ क्षेत्र में इन दोनों देवताओं की पूजा के विभिन्न रूपों के माध्यम से लोग जीवन की विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हैं और आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति करते हैं। इन देवताओं की पूजा से न केवल मानसिक शांति मिलती है, बल्कि यह सांस्कृतिक धरोहर और धार्मिक परंपराओं का भी महत्वपूर्ण हिस्सा है।

महत्वपूर्ण शब्द : वागड़ क्षेत्र, हनुमान जी, भैरव जी, धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक विरासत, मारुति, पवनपुत्र, शिव के रौद्र रूप, काल भैरव, कपालभैरव, भैरवनाथ, तांत्रिक साधना, स्थानीय देवता।

परिचय

वागड़, राजस्थान का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो अपनी विविध धार्मिक परंपराओं, स्थापत्य कला, और सांस्कृतिक धरोहर के लिए प्रसिद्ध है। यहां के लोग विभिन्न धार्मिक त्योहारों और अनुष्ठानों के माध्यम से अपनी आस्था और श्रद्धा को व्यक्त करते हैं। वागड़ क्षेत्र में विशेष रूप से हनुमान और भैरव की पूजा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन दोनों देवताओं की पूजा के अलग-अलग रूप वागड़ क्षेत्र के धार्मिक जीवन को एक विशेष दिशा देते हैं और यहां के भक्तगण इनके माध्यम से अपनी आस्था, शक्ति, साहस और भक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं।

हनुमान जी की पूजा : शक्ति, साहस और भक्ति का प्रतीक

हनुमान जी का नाम लेते ही उनके अद्भुत बल, साहस, भक्ति और समर्पण की छवि सामने आती है। हनुमान जी को हिंदू धर्म में 'बजरंगबली', 'पवनपुत्र', 'मारुति' और 'अंजनीसुत' जैसे अनेक नामों से पूजा जाता है। वागड़ क्षेत्र में भी हनुमान जी की पूजा अत्यधिक श्रद्धा और विश्वास के साथ की जाती है। यह क्षेत्र विशेष रूप से हनुमान जी के वीर रूप और राम के प्रति उनकी अनमोल भक्ति के लिए प्रसिद्ध है।

हनुमान जी के प्रमुख रूप

1. वीर हनुमान : वीर हनुमान का रूप उनके शरीर की शक्ति और युद्धकला को प्रदर्शित करता है। इस रूप में हनुमान जी को एक गदा पकड़े हुए, युद्ध की मुद्रा में चित्रित किया जाता है। इस रूप में वह शत्रुओं को नष्ट करने के लिए तैयार होते हैं। वागड़ के मंदिरों में इन मूर्तियों की पूजा खासतौर पर वीरता और साहस के प्रतीक के रूप में की जाती है। यह रूप उन लोगों के लिए प्रेरणा है जो जीवन में किसी बड़ी चुनौती का सामना कर रहे होते हैं।

2. राम भक्त हनुमान : रामभक्ति का प्रतीक हनुमान जी का रूप उनके राम के प्रति असीम श्रद्धा और समर्पण को दर्शाता है। यह रूप रामायण में वर्णित हनुमान जी के कार्यों को दर्शाता है, जैसे उन्होंने सीता माता की खोज में समुद्र लांघा और लंका में रावण के महल को आग लगाई। राम के प्रति हनुमान की असीम भक्ति उनकी मूर्तियों में शांति और समर्पण के रूप में प्रकट होती है।

3. चरणामृत रूप : हनुमान जी का एक रूप भक्तों के प्रति उनके महान प्रेम और आशीर्वाद को दर्शाता है। इसमें हनुमान जी अपने भक्तों को उनके चरणों का पवित्र जल (चरणामृत) प्रदान करते हैं। यह रूप भक्तों की भक्ति और आशीर्वाद की अभिव्यक्ति है।

हनुमान जी की पूजा के महत्व

वागड़ क्षेत्र में हनुमान जी की पूजा मंगलवार और शनिवार को विशेष रूप से की जाती है। भक्तों का मानना है कि इन दिनों हनुमान जी के पाठ और पूजा से हर प्रकार की विपत्ति और संकट दूर होते हैं। यहां के लोग हनुमान चालीसा का पाठ करते हैं और विशेष रूप से पूजा अर्चना के दौरान शक्ति और साहस प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। हनुमान जी की पूजा से न केवल मानसिक शांति मिलती है, बल्कि व्यक्ति में साहस, आत्मविश्वास और शक्ति का संचार होता है।

हनुमान जी के विभिन्न रूपों की पूजा

वागड़ क्षेत्र में हनुमान जी के कई रूपों की पूजा की जाती है, जैसे वीर हनुमान, रामभक्त हनुमान, और चरणामृत रूप। इन रूपों के माध्यम से भक्तगण अपनी आस्था, शक्ति और साहस का अनुभव करते हैं।

भैरव जी की पूजा : शक्ति, विनाश और तंत्रिक साधना का प्रतीक

भैरव जी को भगवान शिव के उग्र रूप के रूप में पूजा जाता है। वे शक्ति, विनाश, तंत्रिक मंत्रों और सिद्धियों के देवता माने जाते हैं। भैरव जी की पूजा तंत्र-मंत्र साधना से जुड़ी हुई है और विशेष रूप से तांत्रिक साधकों द्वारा की जाती है। वागड़ क्षेत्र में भैरव जी की पूजा के कई रूपों की प्रथा है, जो उनके अलग-अलग स्वभाव और गुणों को दर्शाती है।

भैरव जी के प्रमुख रूप

1. काल भैरव : काल भैरव, जिन्हें समय का देवता माना जाता है, का रूप भय और विनाश से जुड़ा हुआ है। उनका दर्शन और पूजन समय की बाधाओं और नकारात्मक प्रभावों से मुक्ति पाने के लिए किया जाता है। काल भैरव की पूजा विशेष रूप से उनके भक्तों को बुरी शक्तियों से बचाने और उन्हें शक्ति और सुरक्षा प्रदान करने के लिए की जाती है।

2. उग्र भैरव : उग्र भैरव का रूप भगवान भैरव के क्रोधित और उग्र स्वभाव को दर्शाता है। इस रूप में भैरव जी को त्रिशूल और गदा जैसे शस्त्रों से लैस दिखाया जाता है। उनका चेहरा क्रोध और शक्ति से भरा होता है, जो उनके विनाशक स्वभाव को प्रकट करता है। यह रूप विशेष रूप से तंत्र साधकों द्वारा पूजा जाता है, क्योंकि इस रूप में भैरव जी से सिद्धियाँ और शक्ति प्राप्त की जाती है।

3. कपाल भैरव : कपाल भैरव रूप में भगवान भैरव के हाथ में एक मानव सिर (कपाल) होता है, जो उनके उग्र और विनाशकारी स्वभाव को दर्शाता है। यह रूप तांत्रिक साधकों द्वारा विशेष रूप से पूजा जाता है और इसे शक्ति, भूत-प्रेत, और

नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करने का प्रतीक माना जाता है।

भैरव जी की पूजा का महत्व

भैरव जी की पूजा वागड़ क्षेत्र में विशेष रूप से तंत्र साधना और शक्ति के प्रतीक रूप में की जाती है। काल भैरव जयंती और भैरव अष्टमी जैसे पर्वों पर भक्तगण भैरव जी के मंदिरों में जाकर विशेष पूजा अर्चना करते हैं। इन पूजा विधियों के माध्यम से भक्त न केवल आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करते हैं, बल्कि भैरव जी से सुरक्षा और शक्ति भी प्राप्त करते हैं।

वागड़ क्षेत्र में हनुमान और भैरव की पूजा के सांस्कृतिक पहलू

वागड़ क्षेत्र की संस्कृति में हनुमान और भैरव की पूजा का अत्यधिक महत्व है। यहां की धार्मिक परंपराओं में इन देवताओं की पूजा के विभिन्न रूपों के माध्यम से जीवन के विभिन्न पहलुओं का सामना किया जाता है — चाहे वह साहस और शक्ति हो, या फिर विनाश और तंत्रिक साधना। इन देवताओं की पूजा से न केवल आध्यात्मिक शांति मिलती है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक धरोहर का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

वागड़ क्षेत्र में हनुमान और भैरव केवल पूजा के देवता नहीं हैं, बल्कि इन्हें सामाजिक संरक्षक और न्यायप्रिय देवता भी माना जाता है। ग्रामीणों का मानना है कि संकट या झगड़े की स्थिति में इन देवताओं की शरण में जाने से न्याय की प्राप्ति होती है।

हनुमान मंदिरों को शक्ति केंद्र माना जाता है, जहाँ मनोकामना पूर्ति के लिए धागा बाँधने, नारियल चढ़ाने और अखंड दीपक जलाने की परंपराएँ आम हैं। वहीं, भैरव मंदिरों में रात्रिकालीन पूजा, शराब का चढ़ावा और मांसाहारी प्रसाद की परंपरा भी कुछ समुदायों में प्रचलित है, जो उनकी तांत्रिक प्रकृति को दर्शाती है।

सांस्कृतिक धरोहर और मूर्तिकला में योगदान

वागड़ क्षेत्र की प्राचीन मूर्तिकला में भी हनुमान और भैरव की मूर्तियों को विशेष स्थान प्राप्त है। मंदिरों की दीवारों पर उकेरी गई भव्य आकृतियाँ, हाथों में शस्त्र, मुखमंडल पर क्रोध या भक्ति की अभिव्यक्ति, इन रूपों को और प्रभावशाली बनाती हैं।

इन मूर्तियों के माध्यम से न केवल धार्मिक भावनाएँ व्यक्त होती हैं, बल्कि यह स्थानीय शिल्प, कलात्मकता और धार्मिक विश्वास का संगम भी है। यह क्षेत्र धरोहर स्थलों के रूप में भी समृद्ध है, जहाँ लोककला और वास्तुकला का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है।

समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

आज के समय में भी जब समाज आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, वागड़ के लोग अपने इन आस्था केंद्रों से जुड़ाव बनाए हुए हैं। विशेष रूप से युवा पीढ़ी भी हनुमान जी को प्रेरणा और फिटनेस के प्रतीक के रूप में देखती है, वहीं कुछ लोग भैरव जी की पूजा के माध्यम से नकारात्मक ऊर्जा से मुक्ति की भावना से जुड़ते हैं।

धार्मिक यात्राओं, मेलों और त्यौहारों के माध्यम से यह पूजा परंपरा जीवंत बनी हुई है और क्षेत्रीय एकता और सांस्कृतिक पहचान को भी सुदृढ़ करती है।

वागड़ के प्रमुख मंदिर और भव्य रूपाकृतियाँ

वागड़ क्षेत्र में हनुमान और भैरव की पूजा के लिए कई प्रसिद्ध मंदिर स्थित हैं, जो इस क्षेत्र के धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व को दर्शाते हैं। इन मंदिरों में विशेष रूप से वीर हनुमान और काल भैरव के रूपों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं, जो

भक्तों को इन देवताओं के असाधारण रूपों और शक्ति का अनुभव कराती हैं।

1. वीर हनुमान मंदिर : वागड़ क्षेत्र में कई ऐसे मंदिर हैं जहां वीर हनुमान की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इन मंदिरों में भक्त विशेष रूप से मंगलवार और शनिवार को पूजा अर्चना करते हैं। इन मूर्तियों में हनुमान जी के साहस, शक्ति और भक्ति का प्रतीक रूप होता है।

2. भैरव मंदिर : वागड़ क्षेत्र में भैरव जी के कई मंदिर हैं, जहां उनकी उग्र और काल भैरव रूपाकृतियाँ पूजा जाती हैं। इन मंदिरों में विशेष पूजा, अनुष्ठान और तंत्र साधना की जाती है, जो भैरव जी से शक्ति और सिद्धियों की प्राप्ति के लिए की जाती है।

निष्कर्ष

वागड़ क्षेत्र में हनुमान और भैरव की पूजा केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं है, बल्कि यह जीवन दर्शन, सांस्कृतिक चेतना और सामुदायिक एकता का भी प्रतीक है। हनुमान जी जहाँ श्रद्धा, बल और सेवा का आदर्श हैं, वहीं भैरव जी शक्ति, रहस्य और न्याय के रक्षक माने जाते हैं। इन दोनों देवताओं की उपासना से क्षेत्र की धार्मिक विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि उजागर होती है। इनके विविध रूपों की पूजा स्थानीय लोगों को आध्यात्मिक ऊर्जा, सुरक्षा और आत्मबल प्रदान करती है, जिससे वागड़ की संस्कृति और भी विशिष्ट बनती है।

संदर्भ

1. प्रमोद सागर, हनुमान सिद्धि, अमित पाकेट बुक्स जालंधर
2. सीमा मलिक व नीतू परिहार, वागड़ का लोक साहित्य, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, 2021
3. राय गोविन्दचन्द्र, हनुमान के देवत्व तथा मूर्ति का विकास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
4. वेदिक माध्योलॉजी, अनुवादक रामकुमार राय, चोखम्बा विश भवन, बनारस, 1961
5. वासुदेव शरण अग्रवाल, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, ज्ञानोदय ट्रस्ट अहमदाबाद, 1964
6. वासुदेवशरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, इलाहाबाद, 1952
7. श्री हनुमान् अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर , वि०सं० 2064
8. कासलीवाल, मीनाक्षी ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2007 (द्वितीय संस्करण)।
9. गोस्वामी, प्रेमचंद्र : राजस्थान संस्कृति कला एवं साहित्य, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-2008.



स्त्रीत्व-मानचित्र के आयाम और अनामिका की कविताएं

नयना जैन

शोधार्थी, सी.एम.आर विश्वविद्यालय, बेंगलुरु

डॉ. सुमन कौशिक

शोध निदेशक, सी.एम.आर विश्वविद्यालय, बेंगलुरु

अनामिका की कविताएं स्त्रीत्व का मानचित्र है, जो पाठक को स्त्री की स्थिति, उसकी अस्मिता और स्वतंत्रता के प्रति जागरूक करती है। साहित्य अकादमी पुरस्कृत अनामिका की रचना 'टोकरी में दिगंत थेरी गाथा रु 2014' वर्तमान, अतीत और इतिहास की कथाओं, कल्पनाओं और यथार्थ को साथ-साथ लेकर चलने वाला नयी रचना शैली का काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह में बौद्ध धर्म परंपरा की वाहक थेरी गाथाओं के माध्यम से लेखिका ने स्त्री चेतना को प्रतिबिंबित किया है। थेरी गाथा 'खुदक निकाय' के पंद्रह ग्रंथों में से एक है, जिसमें 73 भिक्षुणियों की 522 गाथा संग्रहित है। यद्यपि यह गाथाएं बौद्ध भिक्षुणियों की विचारवाहक हैं, किंतु अनामिका उन्हें आज के समय-संदर्भ में परिभाषित करती हैं और उनमें नया अर्थ भरती हैं। इस संग्रह में स्त्री शरीर से लेकर स्त्री मन तक का विमर्श मौजूद है और पुरुष वर्चस्व का भी चित्रण किया गया है, जिसके कारण वे स्त्री को अपने से हेय मानते हैं और उन पर अधिकार जमाने की कोशिश करते हैं। इस संग्रह की कविताओं के बारे में अनामिका कहती है— "वर्तमान और अतीत, इतिहास और किंवदंतिया, कल्पना और यथार्थ यहाँ साथ-साथ घुमरीपैरैया-सा नाचते दिख सकते हैं।"

इस संग्रह में कुल 109 कविताएं पुरोवाक की भूमिका के साथ तीन अंकों में विभाजित है। प्रथम अंक- 'थेरियो की बस्ती', द्वितीय अंक- 'ये मुजफ्फरपुर नगरी है, सखियों' और तृतीय अंक — 'चलो दिल्ली, चलो दिल्ली वैशाली एक्सप्रेस : 2009' है।

इस संग्रह की अनेक कविताओं में बुद्ध केंद्र में है। केदारनाथ सिंह के शब्दों में- "अनामिका के नए संग्रह 'टोकरी में दिगंत- थेरी गाथा रु 2014' को पूरा पढ़ जाने के बाद मेरे मन पर जो पहला प्रभाव पड़ा, वो यह कि यह पूरी काव्य-कृति एक लंबी कविता है, जिसमें अनेक छोटे- छोटे दृश्य, प्रसंग और थेरियों के रूपक में लिपटी हुई हमारे समय की सामान्य स्त्रियाँ आती हैं। संग्रह के नाम में 2014 का जो तिथि-संकेत दिया गया है, मुझे लगता है कि पूरे संग्रह का बलाघात थेरी गाथा के बजाय इस समय-संदर्भ पर ही है।"

महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद के कहने पर स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान की। प्रव्रज्या प्राप्त वृद्ध बौद्ध भिक्षुणियाँ थेरी कहलाती थी। इन स्त्रियों ने कविता में अपनी गाथाएँ लिखी। वृद्ध बौद्ध भिक्षु थेर (स्थविर) कहलाते थे और वृद्धा बौद्ध भिक्षुणियाँ (स्थविराएँ) कहलाती थी। इन वृद्धाओं ने सामाजिक बंधनों से अपनी मुक्ति तथा स्त्री-पुरुष समानता के जो गीत गाये वह थेरी गाथा कहलाते हैं, क्योंकि उनमें इन गीतों को गाने वाली स्त्रियों के आध्यात्मिक अनुभवों के साथ-साथ उनके जीवन की संक्षिप्त कहानी कही जाती थी। इन स्त्रियों के द्वारा लिखी गई गाथाएं तत्कालीन समाज में स्त्री की स्थिति को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है।

इस संग्रह की 'आम्रपाली' कविता में अनामिका ने वैशाली की नगरवधू के स्वाभिमान और उसके वैभव का बखान है। ये मात्र एक गणिका की कथा नहीं है, अपितु हर उस स्त्री की कथा है जिसके वैभव का बखान आज भी साहित्य में उसी

ठसक के साथ होता है जैसा आम्रपाली का है। उसके चरित्र को कुछ घटनाओं से समझा जा सकता है और उन घटनाओं से एक स्त्री को। जो कालांतर में भी अपने मूल स्वभाव में नहीं बदली। जब आम्रपाली बुद्ध को भोज-भात का न्योता देकर लौटती है तब वैशाली के सामंतों को ये बात अच्छी नहीं लगती कि वह उनके पहिये से अपने रथ का पहिया मिलाती हुई लौटती है। एक स्त्री की ठसक पुरुष समाज को चुभती हैं। वे कहते हैं—

“जे आम्रपाली क्यों तरुण लिच्छवि कुमारों के धुर से
धुर अपना टकराती है?
“आर्यपुत्रों, क्योंकि भिक्षु संघ के साथ
भगवान बुद्ध के लिए मेरा निमंत्रण किया है स्वीकार!”
“जे आम्रपाली!
सौ हजार ले और इस भात का निमंत्रण हमें दे!”
“आर्यपुत्रों, यदि तुम पूरा वैशाली गणराज्य भी दोगे,
मैं यह महान भात तुम्हें नहीं देने वाली!”

यह स्त्री के महान चरित्र को उद्घाटित करती है। एक स्त्री का समाज के साथ संघर्ष कुछ नया नहीं है, यह लंबे संघर्ष के संकेत हैं जो विनम्र भाव से परंतु दृढ़ता के साथ भारतीय नारी अपने-अपने स्तर पर लड़ रही है—

“सुनती हूँ मैं गौर से आम्रपाली की बातें
सोचती हूँ कि कमंडल या लौकी या बीजकोष—
जो भी बने जीवन, जीवन तो जीवन है!
हरियाली ही बीज का सपना,
रस ही रसायन है।”

‘भाषा थैरी बोली’ नामक कविता में अनामिका ने शब्दों की कलात्मकता से पुरुषवादी समाज का रूप स्पष्ट किया है। इस खंड की यह एक विलक्षण कविता है। भाषाओं के बहाने कवियत्री स्त्री-अस्मिता की बात रखती हैं। भाषा के घर में सिर झुकाकर, झोली फैला कर ही रचनाकार जाता है। भाषा उस का घर हुआ करती है और उस के घर में रचनाकार जब पनाह लेता है तब भाषा के पास झूठ और पाखंड नहीं चलता। वह सत्य प्रिय होती है और बदले में चेतना का उपहार देती है। यह भाषा और स्त्री दोनों का भिक्षुणी भाव है।

इस काव्य संग्रह के दूसरे अंक की ज्यादातर कविताएँ आंचलिक विशेषता को स्पष्ट करती हैं। ‘वापसी’ कविता में स्थान विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य को कवियत्री ने व्यक्त किया है—

“सोते का पानी
हाथ बढ़ाने को उठता है, और ताजा खुदी इस सुरंग के उस पार से
दौड़ी आती है हवा!
कैसी खुशनुमा कनकनी है—
घास की हर नोक पर!”

‘बूढ़े ग्रहस्थ और मशीने’, ‘चौक चक्कर की वो फुर्सत बुआ’, ‘मिठनपुरा-1 रूभीगी बरसाती’, ‘रस्सियां रूआम गोला चौक’ आदि कविताएं मनुष्य जीवन की आंचलिक घटनाओं की अनुभूति को दर्शाती हैं। तीसरे अंक की कविताएं मुजफ्फरपुर छोड़ने से पहले गांव के प्रिय लोगों के द्वारा गाँव छोड़ने वालों को दिए गए संदेश की कथित वाणी है। जिसे स्पष्ट करते हुये ‘पगड़ी’ नामक कविता में अनामिका कहती है—

“आजी कहती भुले से भी
कुछ ऐसा मत करना बेटी

जिससे उछल जाए बाबा की पगड़ी”

गीताश्री इस अंक के विषय में कहती है— “मुज़फ़्फ़रपुर, अनेक कवियों का शहर है। उस छोटे से, जाग्रत शहर की लंबी साहित्यिक परंपरा और विरासत है। छोटा शहर में कवि की त्वचा पर परत बनकर चढ़ा रहता है और उसकी आत्मा में स्थायी रूप से बस जाता है। ये दो जगहें ऐसी होती हैं जहां से उसे कोई बाहर नहीं कर सकता। छोटे शहर की बड़ी कवि अनामिका के इस संग्रह में ज्यादातर कविताओं में छोटा-सा शहर छाया हुआ है। कविता के मानचित्र पर कोई छोटा शहर इतना छाया रहे, कहीं न देखा, पढ़ा। उस शहर की गली, चौक चौराहें, इमारतें, स्कूल, कॉलेज, सखियां, सहेलियां, शिक्षक, आस-पड़ोस, टोला-मुहल्ला सब इतना पोएटिक ढंग से चित्रित है कि पहली बार किसी स्थान को कविता की काया में बदलते देखा।”

इस संग्रह में वर्तमान समाज में होने वाले आतंक का भयावह चित्र, अत्याचार, हत्या, पर्यावरण शोषण, स्त्री शोषण आदि भीषण स्थितियों में मानवीय संवेदना नष्ट होने का तथा अनामिका द्वारा इन सारे अत्याचारों से मुक्ति की आशा का चित्रण किया गया है। ऐसे आतंकपूर्ण समय में महात्मा बुद्ध जैसे शांति दूत की उपस्थिति एवं उपदेश की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए कवयित्री कहती है—

“कितनी तो सुंदर है हर रूप में दुनिया”

अनामिका के इस संग्रह की कविताएं जीवनानुभव के एहसास को अभिव्यक्त कर भविष्य को उन्नत करने की उम्मीद से लिखी गई हैं। जिसमें मानवता की अवधारणा प्रमुख है। इसी के साथ एक दृष्टिकोण यह भी है कि कई बार स्त्री ने आश्रय के लिए भी धार्मिक संरक्षण को अपनाया है, अनामिका के अनुसार- “...पूरे मध्य एशिया और भारत में भी कई बार महिला संत धर्म को, धार्मिक संरक्षण को एक खोह की तरह भी इस्तेमाल करती दीखती हैं। जैसे चिड़िया बाजों की कूर फड़फड़ाहट से परेशान होकर खोह में चली जाती है, बहुत सी महिलाएं संत, धर्म की शरण में गईं, हालांकि इस खोह में भी सांप कुंडली मारे पड़े थे। ताड़ से गिरे खजूर पे अटके। चलो, अटके तो। धम्म से गिरे तो नहीं। हड्डी नहीं चटकी। एक आश्रय तो मिला।”⁴ अनामिका ने जहां इस काव्य संग्रह में प्रगतिशील विचारों द्वारा मानवीय चेतना को आधार प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर व्यावहारिक दृष्टिकोण द्वारा मानव जीवन में परिवर्तन की परिस्थितियों को समयानुसार चित्रित किया है। अनामिका की कविता में मुख्य रूप से आधुनिक भारतीय नारी की आवाज है। इसके साथ ही उनकी कविताओं में जीवन का यथार्थ अनुभव, बालक और वृद्ध समस्या, परिवार व समाज का चित्रण आदि के बदलते समय के दारुण यथार्थ, जीवन प्रसंगों एवं परिस्थितियों का अंकन किया गया है।

यह संग्रह भारतीय परिवेश में पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों में फँसी नारी की दशा का मार्मिक उद्घाटन करता है। इसके साथ ही वह भारतीय और पाश्चात्य संस्कारों के बीच डोलती आधुनिक नारी की स्थिति को भी कहीं-ना-कहीं उजागर करता है। इन्होंने इतिहास, पौराणिक कथाओं से लेकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी उतनी ही सादगी से लिखा है। इस प्रकार अपने जीवनानुभव में उपजी आशंकाओं, चिंताओं और विचारों की ईमानदारी से अभिव्यक्ति अनामिका ने अपने इस काव्य संग्रह में की है। अनामिका की काव्य शैली में एक विशेष मौलिकता है, जो पाठक को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती है। यह पुस्तक साहित्य पाठकों के लिये एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि कैसे साधारण जीवन के संघर्षों को भी रोचक और काव्यात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. टोकरी में दिगंत, अनामिका, पृ. 5
2. टोकरी में दिगंत, अनामिका, पृ. 5
3. समालोचना वेब पत्रिका, गीताश्री।
4. महिला लेखन के सौ वर्ष, संपादक- ममता कालिया, पृ. 79.



शैल रस्तोगी के एकांकियों का सामान्य परिचय

डॉ. किर्तीमालिनी हणूमंतराव पाटील

हिंदी विभाग, प्रतिभा निकेतन महाविद्यालय, नांदेड जी. नांदेड महाराष्ट्र

भूमिका

व्यक्ति और समय की मांग के कारण साहित्य में लघुनाटक एवं एकांकी का अविर्भाव हुआ। साहित्यकारों ने समयानुरूप इस विधा के लिए एकांकी, लघुनाटक या छोटे नाटक नाम प्रयुक्त किये हैं। डॉ. सत्यव्रत सिन्हा ने “हिंदी के कुछ प्रयोगधर्मी एकांकी नाटकों की संघटना और जटिलता को ध्यान में रखकर ऐसे नाटकों को ‘लघुनाटक’ कहा था। वास्तव में एकांकी नाम आज अपनी सार्थकता खो चुका है। अब इस तरह के नाटकों की सारी भंगिमाओं को संपूर्ण सार्थक नाम ‘छोटे नाटक’ भी दिया जा सकता है।’ एकांकी, लघुनाटक या छोटे नाटक इस विधारूप में लेखन करनेवाली महिला तथा उनकी रचनाओं में हीरादेवी चतुर्वेदी, शांति मेहरोत्रा, स्वरूपकुमारी बक्शी, विमला लुथरा, शैल रस्तोगी आदि महिला रचनाकारों ने योगदान दिया है। शैल रस्तोगी अपने रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान निर्माण किया है।

शैल रस्तोगी का जन्म १ सितम्बर १९२७ को मेरठ में हुआ। इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। बनारस हिंदु विश्वविद्यालय से स्वर्गीय डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में शोधकार्य कर विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। तदुपश्चात रघुनाथ गर्ल्स महाविद्यालय मेरठ (उ.प्र.) में ३४ वर्षों तक अध्यापन के उपरान्त ससम्मान अवकाश प्राप्त किया। इस कार्यकाल में २१ सफल शोधार्थियों की शोधनिर्देशिका होने का सुखद अनुभव प्राप्त किया। इन्होंने मुख्यतः गीत एवं हायकू, मुक्त छंद, काव्य, दोहा, लघुकथा, कहानी, एकांकी, आलोचना आदि विधाओं में भी पर्याप्त लेखन किया है। इनकी मौलिक प्रकाशित कृतियों में ‘एक जिन्दगी बनजारा’ इस एकांकी संग्रह को उत्तरप्रदेश के राज्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। ‘बिना रंगों के इन्द्रधनुष’ और ‘सावधान सासुजी’ यह भी उनकी कृतियां हैं। गीत संग्रह में - जंग लगे दर्पण, मन हुए हैं कांच के और धूप खिले आखर तथा चांदनी धरती पागालन। हायकू संग्रह में - प्रतिबिंबित तुम, सन्नाटा खिंचे दिन, दुःख तो पाहुन है, बांसुरी है तुम्हारी और अक्षर हीरे मोती। इस प्रकार डॉ. शैल रस्तोगी का वैविध्यपूर्ण योगदान हिंदी साहित्य को प्राप्त हुआ है।

एक जिन्दगी बनजारा

प्रस्तुत एकांकी संग्रह में नौ एकांकियाँ सम्मिलित हैं। इनमें एक जिन्दगी बनजारा, पर्वत से गिरा एक मन, एक समुन्दर गहरा-सा, अँधेरा...अँधेरा...और अँधेरा, तूफान और शहनाइयाँ, सूली पर चढ़ा और एक मसीहा, अलविदा मेरे दोस्तों!, ओ रे ओ सहयात्री!, और एक नया सूरज आदि हैं। यह सभी एकांकियाँ मूलतः पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं और इनमें यथास्थान वर्तमान राजनीतिक और सामाजिक जीवन की झांकियाँ मिलती हैं। डॉ. सिध्दनाथ कुमार के अनुसार- “शैल रस्तोगी ने अपनी एकांकियों में बढ़ती हुई महंगाई के बोझ से टूटते हुए जनजीवन, नवयुवकों की बेकारी, निराशा, विक्षोभ, आंदोलन

आदि को चित्रित किया गया है। यह सब जीवन की चुनी हुई स्थितियों द्वारा सहज रूप से चित्रित हुआ है, यहीं इनकी विशेषता है। लेखिका ने इन्हें सदा मानवीय धरातल पर बनाये रखने का प्रयत्न किया है और इसमें उसे सफलता भी मिली है। प्रत्येक एकांकी में कोई एक ही मार्मिक एवं नाटकीय स्थिति ली गई है और स्थान एवं अभिव्यक्ति में सक्षम है।”

प्रस्तुत एकांकी में भारत-पाक-युद्ध के पश्चात उजड़े हुए बंगला जन-जीवन का चित्रण किया गया है। युद्ध में पाकिस्तानी गुंडों ने किसी की माँ, किसी की बहन, किसी के भाई, किसी के बेटे की निर्घृण हत्या की है। प्रत्येक घर का एखाद व्यक्ति तो इस चंगुल में फँसा ही है। युद्ध के बाद बंगला प्रदेश उजड़ा-उजड़ा सा लग रहा है। ऐसा हादसा देखकर कोई-कोई तो पागल होकर गीत गाते गलियों में घूमता नजर आ रहा है। एक लड़की की ऐसी ही स्थिति हुई है उसके परिवार का कोई भी बचा नहीं है। वह कुंवारी ही गर्भवती बनी पागलपन में यह गाते फिरती है - “उजड़ा हुआ चमन, ये उजड़ा बागबाँ सोए सभी उदास, पीड़ा जगी-जगी....।”

एकांकी में एक परिवार में एक माँ उसका बेटा, बहू और उनकी दो बेटियाँ घर में रहते थे। युद्ध में पाकिस्तानी गुंडों के द्वारा बेटे शेखर को पकड़कर ले जाया जाता है और वह उसको मारकर चले जाते हैं। लेकिन शेखर किसी तरह भारतीय सैनिकों द्वारा बच जाता है और उसे अस्पताल में ले जाते हैं। कुछ दिन बाद वह ठिक होकर वापिस घर लौटता है तब घर में उसे सब कुछ बदला-बदला सा लगता है। माँ ने उसकी पत्नी कविता की शादी उसके दोस्त कुमार से कर दी है। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय यह किसी के भी समझ में नहीं आता है। तब शेखर को यह सदमा सहा नहीं जाता है और फिर पुनः वह देशसेवा के लिए घर छोड़कर वापिस चला जाता है। इस प्रकार कभी-कभी ऐसी परिस्थितियों से मनुष्य जब गुजरता है तब वह भविष्य का विचार कर ऐसे निर्णय ले लेता है। एकांकी में माँ ने भी ऐसा निर्णय ले लिया है, तब समय के अनुसार वह योग्य ही था। लेकिन उन्हें क्या पता था कि, बीता हुआ कल वर्तमान में आनेवाला है।

अँधेरा... अँधेरा... और अँधेरा

इस एकांकी में रात के घने अँधेरे में नांव से गंगा नदी पार करते वक्त तूफान में नांव पँहसने से एक माँ का बेटा और पति उससे दूर होते हैं। फिर बाद में उसे अपनी अकेली लड़की के साथ जीवन बिताना पड़ता है, तब उनके जीवन में अँधेरा ही अँधेरा आता रहता है। जिसे अपना समझा वह भी धोखा देते हैं। इसलिए दुनिया की असलियत की पहचान वह अपनी बेटी को देती है। जीवन में उसे जानवरों जैसे आदमी की वजह से दर्दनाक जीवन बिताना पड़ता है। इसलिए वह अपनी बेटी मनी को ऐसे लोगों से निडर होकर जीने की प्रेरणा देती हुई कहती है कि, “आदमी ही सबसे बड़ा जानवर हो जाता है, मनी! और फिर इस जानवरों की दुनिया में रहना है, तो डरना भी क्या? इस प्रकार एकांकी में घर में अपना आदमी न होने के कारण दुनिया में उसे किस प्रकार का सामना करना पड़ता है इसको दर्शाया गया है। अपने साथ वह अपनी बेटी को भी निडर होकर जीने की प्रेरणा देती हुई दिखायी देती है।

एक समुन्दर गहरा सा

प्रस्तुत एकांकी में निम्नवर्गीय परिवार अर्थाभाव में किस प्रकार जिंदगी में ठोंकरे खाते हुए जीवन बीता रहा है इसका चित्रण किया गया है। तो दूसरी तरफ उसी परिवार का बेटा शरण घर में अपनी पत्नी, माँ, भाई और बहन को छोड़कर इंग्लैंड में जाकर दूसरा विवाह रचाता है और अपने दायित्व को भूलता दिखायी देता है। घर की परिस्थिति अत्यंत दयनीय होने की वजह से बेटी रचना कपड़े सिलाकर घर चलाती है। माँ बीमार है, दूसरे भाई बहन अभी पढ़ रहे हैं। भाभी भी घर चलाने में हाथ बाँटती है। रचना चेतन नाम के युवक से प्यार करती है, लेकिन घर का दायित्व भी वह निभाना चाहती है। इसलिए उसने अपने दिल को पथर बनाया है और अपनी छोटी बहन नन्दा की शादी चेतन से करवाती है। इतना बड़ा त्याग वह अपने परिवार को डूबने से बचाने के लिए करती है। इस प्रकार एकांकी में एक बेटा अपने परिवार के प्रति दायित्व भूलता है लेकिन एक बेटी के द्वारा वह दायित्व पूरा किये जानेवाला चित्रण किया गया है।

पर्वत से गिरा एक मन

यह एकांकी एक नया ही विषय लेकर सामने आयी है। वह यह कि, एकांकी में पढ़ी-लिखी सुनीता के शादी के बाद सब ख्वाब अधूरे रह जाते हैं। कॉलेज जीवन में वह कविताएँ लिखती थी, अनेक प्रतियोगिताओं में उसने प्रथम क्रमांक भी लाया था। लेकिन शादी के बाद उसको अनेक सीमाओं में बाँध दिया जाता है। उसके ख्वाब अधूरे रहने के कारण वह अवचेतन में जाकर ग्रंथि बनकर उन्हें समय-समय पर प्रताड़ित करते रहते हैं। अब वह एक नॉर्मल स्त्री की तरह हरकतें न कर एक पागल जैसी हरकतें करती है। घर के सभी उसे पागल ही कहते हैं तब तो उसे और अधिक दुरुख होता है। लेकिन उसकी इच्छा-आकांक्षाओं को कोई नहीं समझ पाता। अंत में डॉक्टर की सलाह से उसके ठिक होने की गवाही दी जाती है, लेकिन उसके लिए घर के सभी सदस्यों का व्यवहार उसके प्रति अच्छा हों तो ही उसमें बदलाव हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति आज भी अनेक लड़कियों की शादी के बाद हो जाती है। उसे घर की चारदिवारी सीमाओं को लॉघकर जाना मुश्किल हो जाता है। घर के सदस्य उसकी इच्छा आकांक्षा पर ध्यान नहीं देते हैं, तब वैसे वातावरण में उसका दम घुँट जाता है।

सूली पर चढ़ा और एक मसीहा

इस एकांकी में भी आज के बेटे अपने घर के प्रति भूलते हुए दायित्व को दिखाया गया है। घर के दो बड़े बेटे शादी के बाद शहर में जा बसते हैं। तब वह अपनी विधवा माँ, छोटे भाई-बहन को भूल ही जाते हैं। घर चलाने के लिये उन्हें कभी थोड़ेसे पैसों की मदद भी नहीं करते हैं। घर में दो बहनें हैं जिनकी अभी शादी नहीं हुई है। इसको भी वह नजरअंदाज करते रहते हैं। लेकिन जब एक का बिजनेस फेल हो जाता है और दूसरे को किसी काम के लिए विदेश जाना होता है। तब उसे घर की याद आ जाती है तो वह अपनी बीवी बच्चों को तब तक माँ के घर भेजने की सुझती है। घर में सबसे छोटे भाईयों में से पुनीत ही है जो सबका दायित्व निभाने को तैयार है। तब यह सब रिश्ते-नाते निभाते-निभाते वह वैहसी हालात में जी रहा है उसका किसी को अंदाजा भी नहीं आने देता है। फिर भी पूरा घर चलाने में उसने अपने-आप को पूरी तरह से झोंक दिया है।

अलविदा, मेरे दोस्तों!

प्रस्तुत एकांकी निम्नवर्गीय गरिबी से लाचार जीवन बितानेवाले सड़क पर झोपड़ियों में रहनेवाले लोगों का चित्रण किया गया है। झोपड़ियों में रहनेवाले लोग हमें आज भी रास्ते पर से गुजरते हुए दिखायी देते हैं। जिनके शरीर पर कभी पूरे कपड़े भी नसीब में नहीं होते हैं, ना खाने के लिए भरपेट खाना। ज्ञानसिंह के माध्यम से लेखिका ने इस एकांकी में उसके संपूर्ण जीवन को चित्रित किया है। ज्ञानसिंह पहले कभी बहुत ईमानदारी से काम करता था, लेकिन उसको ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पड़ता था कि, वह गरिबी ही उसे चोर, जेबकतरा बनाने पर मजबूर कर देती है। भले ही लोग उसे गुण्डा, चोर कहते होंगे लेकिन उसपर बीती हुई परिस्थिति उसको ऐसे काम करने पर मजबूर कर देती है यह कोई नहीं समझ पाता है। उसकी बहन को छेड़नेवाला वहीं का ही एक किसनू नाम का लड़का है, ज्ञानसिंह जब उसे अपनी बहन सन्तिया से शादी करने के लिए कहता है, तब वह इसको नकारता है। गुस्से में आकर उसको मार डालता है। तब पुलिस पकड़कर उसे फाँसी की सजा सुनवाते हैं। एकांकी के शुरु में और अंत में स्वगत कथन के द्वारा उसकी स्थिति को दर्शाया गया है। अंत में वह कहता है कि, “मुझे बुरा बना दिया आपने, समाज ने, मेरी गरीबी ने। सच दुनिया का सबसे बड़ा पाप है - गरीब होना। मुझे माफ कर देना, यह मेरी आवाज थी, मेरे अन्दर की आवाज थी, जो आप सुन रहे थे। मैं जा रहा हूँ। ‘अलविदा, मेरे दोस्तों!’”

इस प्रकार अत्यंत गरीबी में जीवन बितानेवाले लोगों का चित्रण प्रस्तुत एकांकी में किया गया है। ऐसे लोगों की तरफ हम सिर्फ घृणा से ही देखते हैं लेकिन इनकी तरफ कोई मदद के हाथ तक नहीं दिखाता।

ओ रे ओ सहयात्री

प्रस्तुत एकांकी का पात्र निर्मल अपनी लेक्चरर पत्नी को छोड़कर एक डॉक्टर स्त्री के साथ संबंध जोड़कर कुछ दिन रहकर पुनरु पत्नी के पास लौट आता है, तब उसकी पत्नी किस हाल में वैहसे दुरुख-दर्द में जीवन यापन करती है इसको स्पष्ट किया गया है। अपने पति से अब वह घृणा भी करती है, लेकिन अंदर से उसके लिए प्यार भी उसके मन में है। समाज में निर्मल जैसे पुरुषों की कमी नहीं है। लेकिन ऐसे पुरुषों को क्षमा सिर्फ हमारी भारतीय स्त्री ही कर सकती है। इतना सब कुछ होकर भी निर्मल की पत्नी सूजाता उसे क्षमा कर देती है। वह खुद कमाती है, पैसों की कमी नहीं है। निर्मल ने उसे धोखा दिया है फिर भी वह अपने पति से ही प्यार करती है। सूजाता की तरह कई स्त्रियाँ भारतीय समाज में हैं। लेकिन निर्मल जैसे पति सूजाता जैसी स्त्री की मनोदशा कब पहचानेंगे? इस पर पहले भी प्रश्नचिन्ह ही था आज भी है और आगे भी बना ही रहेगा।

और एक नया सूरज

यह एकांकी शिक्षा व्यवस्था पर आधारित है। महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में छात्रों की शिक्षा से संबंधित अनेक समस्याएँ हैं। उसका विरोध वह करते हैं। जिसमें शिक्षा का पैटर्न बदला जाय, ५० प्रतिशत रिजर्वेशन बंद किया जाय, परिक्षाएँ समय पर ली जाए। यह सभी मांगें पूरी करवाने के लिए विश्वविद्यालय छात्र संघ का सेक्रेटरी महेंद्र, विश्वविद्यालय छात्र संघ का प्रेसीडेंट रहमान तथा महिला छात्र प्रतिनिधि गरिमा के साथ अनेक छात्र इसमें शामिल हैं। वी.सी. से मिलने के बाद उनकी मांगें पूरी होने पर विचार विमर्श किया जाएगा यह आदेश वी.सी. द्वारा दिया जाता है। दूसरी तरफ आज की शिक्षा व्यवस्था की स्थिति को भी दर्शाया गया है। शिक्षा को लेकर छात्रों का बेरोजगार रहना तथा शिक्षा विभाग के अन्य घटक शिक्षक, प्रोफेसर जो की अपना काम ठिक से न कर किस प्रकार अलसी बनते जा रहे हैं इसको भी चित्रित किया गया है। लेकिन वी.सी. विक्रमसिंह ऐसी स्थिति में बदलाव करना चाहते हैं और एक नये सूरज में आनेवाले कल में समस्याओं का हल ढूँढने में अपना तन मन अर्पण करना चाहते हैं।

संदर्भ

- १) छोटे नाटक -सं. शुखदेव सिंह
- २) हिंदी एकांकी -सिद्धनाथ कुमार
- ३) एक जिन्दगी बनजारा -शैल रस्तोगी
- ४) अँधेरा...अँधेरा... और अँधेरा - शैल रस्तोगी
- ५) अलविदा, मेरे दोस्तों! - शैल रस्तोगी
- ६) हिंदी नाट्यसाहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान-डॉ. दीपा कूचेकर
- ७) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना -श्रीमती विनोद जैन।



THE ENDURING LEGACY: THE ROLE OF SRINIVASA RAMANUJAN'S CONTRIBUTIONS IN THE FIELD OF MATHEMATICS

MANPREET KAUR

Assistant Professor, Department of Mathematics,
Dasmesh Girls College,
Chak Alla Baksh, Mukerian
Mail- mk289560@gmail.com
Mob. No. 8437887814

DAMNI

Assistant Professor in Physics Department
Dasmesh Girls College,
Chak Alla Baksh, Mukerian
Mail-damnidamni027@gmail.com
Mob. No 9464728974

ABSTRACT: Srinivasa Ramanujan, despite his tragically short life, left an indelible mark on the landscape of mathematics. Largely self-taught and working in relative isolation, his intuitive genius produced a vast and diverse body of work that continues to inspire and challenge mathematicians today. This paper explores the profound role of Ramanujan's contributions across various branches of mathematics, including number theory, infinite series, continued fractions, and modular forms. By examining his key findings, their impact on subsequent research, and their enduring relevance in modern mathematics, this paper aims to highlight the extraordinary significance of his unique and visionary insights.

KEYWORDS: Srinivasa Ramanujan, Number Theory, Infinite Series, Continued Fractions, Modular Forms, Partition Function, Mock Theta Functions, Mathematical Intuition, Legacy of Ramanujan.

1. INTRODUCTION:

The name Srinivasa Ramanujan (1887-1920) resonates with a sense of wonder and profound mathematical intuition. His story, a testament to raw talent nurtured in challenging circumstances, is as captivating as the mathematics he produced. Without formal training in advanced mathematics, Ramanujan independently rediscovered numerous existing theorems and, more remarkably, formulated entirely new and groundbreaking ideas.

From a young age, Ramanujan displayed an extraordinary aptitude for mathematics. Despite needing access to formal training or advanced mathematical resources, he independently developed his unique and groundbreaking methods. At 11 years old, Ramanujan had begun the study to college-level mathematics and at the age of 16, he obtained a book titled "A Synopsis of Elementary Results in Pure Mathematics," which opened his mind to a vast world of mathematical ideas and concepts. He devoured the book, studying and internalizing its contents, and soon began to discover his

mathematical theorems and conjectures.

Ramanujan's talent did not go unnoticed. His work came to the attention of British mathematician G.H. Hardy, who recognized the young prodigy's extraordinary abilities and invited him to Cambridge University in England. In 1914, Ramanujan left India to pursue his mathematical career abroad. In his collaboration with G.H. Hardy, his paper delves into the pivotal role of Ramanujan's contributions, examining their nature, significance, and enduring influence on the development of mathematical thought.

2. THE REALM OF NUMBER THEORY:

Number theory, the study of integers and their properties, formed the core of Ramanujan's mathematical explorations. His contributions in this area are both deep and wide-ranging:

- * **Partitions of Integers:** Ramanujan's work on the partition function, $p(n)$ – the number of ways an integer n can be written as a sum of positive integers – was revolutionary. He not only rediscovered existing results but also derived a highly accurate asymptotic formula for $p(n)$ in collaboration with Hardy. This formula, employing the circle method, marked a significant advancement in analytic number theory and opened new avenues for studying the distribution of partitions. His congruence properties of $p(n)$, such as $p(5k+4) \equiv 0 \pmod{5}$, $p(7k+5) \equiv 0 \pmod{7}$, and $p(11k+6) \equiv 0 \pmod{11}$, revealed hidden structures within the seemingly chaotic world of partitions and continue to be a subject of intense study.

- * **Highly Composite Numbers:** Ramanujan meticulously studied highly composite numbers, integers with more divisors than any smaller positive integer. His extensive work on these numbers, documented in a long and insightful paper, provided deep insights into the structure of integers and the distribution of prime factors. He established bounds and properties of these numbers, laying the groundwork for further research in multiplicative number theory.

- * **Sums of Squares:** Ramanujan made significant contributions to the theory of sums of squares, particularly concerning the representation of integers as sums of a specific number of squares. His work built upon classical results and provided new insights into the number of representations.

- * **Ramanujan Primes:** He defined Ramanujan primes, denoted by $\delta_R(x)$, as the smallest integer n such that there are at least k primes less than or equal to $n/2$. He proved the existence of these primes and established bounds for their distribution, contributing to the understanding of the distribution of prime numbers.

3. THE ELEGANCE OF INFINITE SERIES AND PRODUCTS:

Ramanujan possessed an uncanny ability to manipulate infinite series and products, often arriving at astonishing and beautiful identities. His notebooks are filled with remarkable formulas, many of which defied conventional proof techniques at the time.

- * **Ramanujan's Master Theorem:** This powerful theorem provides a technique for evaluating definite integrals and finding the coefficients of power series expansions. It connects the coefficients of a Taylor series of a function with its Mellin transform, offering a unifying framework for a wide range of identities involving infinite series and integrals. Its applications continue to be explored in various areas of mathematics and physics.

* **Strange Series for δ :** Ramanujan discovered several rapidly converging infinite series for δ , some of which were remarkably efficient. These formulas have had a significant impact on the computation of δ to high precision and have inspired further research into efficient algorithms for calculating mathematical constants.

* **Infinite Products:** His work on infinite products, often involving nested radicals and intricate patterns, showcased his exceptional algebraic intuition. Many of these identities, initially met with scepticism, have since been rigorously proven and have found applications in areas like string theory.

4. THE INTRIGUING WORLD OF CONTINUED FRACTIONS:

Ramanujan's fascination with continued fractions led him to uncover numerous elegant and surprising identities. He explored various types of continued fractions, including those with intricate patterns and connections to elliptic functions and modular forms. His work in this area expanded the known theory of continued fractions and provided new tools for representing and approximating numbers.

5. THE PROFOUND INFLUENCE OF MODULAR FORMS AND MOCK THETA FUNCTIONS:

Perhaps some of Ramanujan's most profound and enigmatic contributions lie in the realm of modular forms and his discovery of mock theta functions.

* **Modular Forms:** While Ramanujan's formal understanding of modular forms was limited, his intuition led him to discover and utilize their properties in his work on partitions and other areas. His insights foreshadowed later developments in the theory of modular forms and their deep connections to number theory, algebraic geometry, and even physics.

* **Mock Theta Functions:** In his final letters to Hardy, Ramanujan introduced the concept of "mock theta functions." These are functions that exhibit properties similar to modular forms but are not themselves modular. Their existence baffled mathematicians for decades. Only in recent years has a deeper understanding of mock theta functions emerged, revealing their intricate connections to modular forms, string theory, and black hole entropy. Ramanujan's initial observations have spurred a significant area of contemporary research, highlighting the visionary nature of his work.

6. IMPACT AND LEGACY:

Ramanujan's contributions have had a profound and lasting impact on the field of mathematics:

* **Stimulating Future Research:** His notebooks and published papers continue to be a source of inspiration for mathematicians. Many of his claims, initially unproven, have led to significant research programs aimed at providing rigorous proofs and exploring their deeper implications.

* **Interdisciplinary Connections:** Ramanujan's work, particularly on modular forms and mock theta functions, has found unexpected connections to other fields, including physics, especially string theory and statistical mechanics. His formulas have appeared in the context of black hole entropy calculations, demonstrating the far-reaching influence of his seemingly pure mathematical explorations.

* **Development of New Techniques:** The attempts to prove and generalize Ramanujan's results have led to the development of new mathematical techniques and theories, such as the circle method in analytic number theory.

* Celebrating Mathematical Intuition: Ramanujan's story serves as a powerful reminder of the importance of intuition and creativity in mathematical discovery. His ability to arrive at profound truths through unconventional means continues to inspire mathematicians to explore new avenues of thought.

* Despite his short life, Ramanujan published over 30 research papers, including his famous "Lost Notebook" which contained numerous unpublished results and conjectures. His work garnered international recognition and earned him numerous accolades, including the prestigious Fellowship of the Royal Society in 1918.

7. CONCLUSION:

Today, Ramanujan is widely regarded as one of the greatest mathematicians of all time. His story serves as a testament to the power of passion, perseverance, and intellectual curiosity. His life reminds us that even in the face of adversity and limited resources, the human mind is capable of extraordinary feats. Srinivasa Ramanujan's legacy stands as a shining example of the limitless possibilities of the human intellect and the wonders that can be achieved through the pursuit of knowledge and the exploration of the unknown.

Srinivasa Ramanujan's contributions to mathematics are nothing short of extraordinary. Despite his lack of formal training and the brevity of his career, his intuitive genius produced a body of work that is both beautiful and deeply significant. His insights into number theory, infinite series, continued fractions, modular forms, and mock theta functions have not only enriched our understanding of these areas but have also stimulated decades of further research and uncovered unexpected connections to other scientific disciplines. Ramanujan's legacy endures not just through his remarkable formulas and theorems, but also through the inspiration he provides to mathematicians worldwide, reminding us of the power of human intuition and the boundless beauty of the mathematical landscape. His work continues to challenge, inspire, and shape the direction of mathematical inquiry in the 21st century and beyond.

REFERENCES:

- * A comprehensive list of references, including books, journal articles, and online resources related to Ramanujan's work, would be included here in a full research paper. Examples include:
- * Hardy, G. H. (1940). *Ramanujan: Twelve Lectures on Subjects Suggested by His Life and Work*. Cambridge University Press.
- * Berndt, B. C. (1985-2006). *Ramanujan's Notebooks, Parts I-V*. Springer-Verlag.
- * Andrews, G. E., & Berndt, B. C. (2005). *Ramanujan's Lost Notebook, Part I*. Springer.
- * Kanigel, R. (1991). *The Man Who Knew Infinity: A Life of the Genius Ramanujan*. Charles Scribner's Sons.
- * Mathnasium, Srinivasa Ramanujan: The mathematical genius from India.



डिजिटलिकरण से ग्रामीण शिक्षा पर प्रभाव

डॉ. अंजली कुमारी

ईमेल - anjalisingh.ktr1@gmail.com

शिक्षा न केवल दक्षता बढ़ाने का साधन है अपितु लोकतंत्र में भागीदारी बढ़ाने एवं विस्तृत करने तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की समग्र गुणवत्ता को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की समग्र गुणवत्ता को स्तरोन्नत करने का भी एक कारगर साधन है। भारत की आबादी बहुत बड़ी है। तथा संभावित लोकतंत्र लाभांश को दोहन करने, भयावह क्षेत्रीय, सामाजिक एवं लैंगिक असंतुलनों को दूर करने के लिए सरकारी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने हेतु समवेत प्रयास करने के लिए वचनबद्ध है क्योंकि केवल मात्रात्मक विस्तार से ही तेजी से बदलते घरेलू एवं वैश्विक परिदृश्य के मद्देनजर वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होंगे।

केंद्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों बनाने और उनके क्रियान्वयन पर नजर रखने के कार्य को जारी रखा है। इन नीतियों में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा वह कार्यवाही कार्यक्रम शामिल हैं, जिसे सन् 1992 में अद्यतन किया गया। संसोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसे अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढशिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने बुनियादी शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, माध्यमिक शिक्षा की व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार व जानकारी देने और अंतर अनुशासनिक अनुसंधान करने, राज्य में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं। इसके अलावा शिक्षा में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु एक विकेंद्रीकृत प्रबंधन ढांचे का भी सुझाव दिया गया है। इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लगी न एजेंसियों के लिए विभिन्न नीतिगत मानकों को तैयार करने हेतु एक विस्तृत रणनीति का भी पीओए में प्रावधान किया गया है।

12वीं पंचवर्षीय योजना में सरकार ने कुछ बड़े कदम उठाए हैं या प्रस्तावित किए हैं। कुछ नए प्रयोगिक स्कूल, शिक्षण सेक्टर और उच्चतम एवं तकनीकी शिक्षण सेक्टर जिसमें बच्चों का निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार विधेयक, माध्यमिक स्कूलों एवं मुक्त दूरस्थ शिक्षा में आईसीटी पर प्रारूप नीति तैयार की गई है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा का प्रारूप तैयार किया है। यह रूपरेखा एनसीएफ 2005 की पृष्ठभूमि में तैयार की गई है जिसने शिक्षक शिक्षा पर एक परिवर्तित रूपरेखा को आवश्यक बनाया जो एनसीएफ 2005 में संस्तुत स्कूली पाठ्यक्रम के परिवर्तित दर्शन से संगत हो। सीबीएसई ने स्वयं से संबद्ध स्कूलों के प्रयात्न की प्रक्रिया आरंभ करने का प्रस्ताव है। यश पाल कमेटी और राष्ट्रीय ज्ञान कमीशन ने विश्वस्तरीय 14 नवचार विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव दिया है। 10 नए एनआई खोलने का प्रस्ताव को अनुमोदित कर दिया है। शैक्षिक रूप से पिछड़े जिलों के रूप में अभिचिन्हित 374 जिलों में से ऐसे प्रत्येक जिले में मॉडल डिग्री कॉलेज स्थापित करने की योजना आरंभ की गई है जहां उच्च शिक्षा के लिए सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) राष्ट्रीय जीईआर से कम है। कमजोर वर्गों एवं अल्पसंख्यकों की पर्याप्त आबादी वाले जिलों में स्थित उच्च

शिक्षा संस्थाओं में 150 महिला छात्रावास संस्वीकृत किए गए हैं। अन्य केंद्रीय शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षण सुधार शिक्षा के लिए संसाधनों को बढ़ाने की प्रतिबद्धता के साथ कतारबद्ध है, वर्षों में शिक्षा के प्रसार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। शिक्षा के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में 151 करोड़ रुपये परिव्यय की गई। 12वीं पंचवर्षीय योजना 2007-12 के लिए 2,69,873 करोड़ रुपये हैं। जिनमें से 84,943 करोड़ रुपये के उच्च शिक्षा और 18,4930 करोड़ रुपये स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग के लिए वितरित किए गए। अनुमोदित वार्षिक योजना में 9,600 करोड़ रुपये उच्च शिक्षा विभाग और 26,800 करोड़ रुपये स्कूली शिक्षा विभाग को दिए।

प्राथमिकता मुख्य रूप से साक्षरता का सुलभीकरण रही है। स्वयंसेवी संस्थान की सहायता की योजना के अतिरिक्त साक्षर भारत के अन्य कार्यक्रम को आरंभ किया है। लोक शिक्षा केंद्र उनके क्षेत्र में आने वाले सभी कार्यक्रमों का संयोजन एवं सामंजस्य बनाता है। राज्य स्तर पर मिशन की तैयारी कार्यान्वयन और मॉनीटरिंग के लिए राज्य साक्षरता मिशन प्रधिकरण उत्तरदायी होगा। जिला और उप जिला स्तर पर मिशन का कार्यान्वयन पंचायती राज संस्थाओं के तत्वाधान में किया जाएगा। कार्यात्मक स्तर अर्थात् ग्राम पंचायत में शामिल सभी गांवों में समुदायों सहित ग्राम पंचायतें कार्यान्वयन संस्था होगी।

- निरक्षरों और अंक ज्ञान न रखने वाले पौढ़ों को कार्यात्मक साक्षरता और अंक प्रदान करना।
- नव-साक्षर प्रौढ़ व्यक्तियों को बुनियादी साक्षरता के बाद भी अपना अध्ययन जारी रखने में और औपचारिक शैक्षिक प्रणाली से समानता प्राप्त करने में मदद करना।
- निरक्षरों और नव-साक्षरों को अपने रोजगार और जीवन परिस्थितियों में सुधार हेतु संगत कौशल विकास कार्यक्रम प्रदान करना।
- नव-साक्षर प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षा जारी रखने के लिए अवसर प्रदान करते हुए एक शिक्षित समाज का बड़ावा देना।

मिशन का मुख्य लक्ष्य है कि वर्ष 2013 तक 15 वर्ष और इसके बाद के आयु वर्ग में 70 मिलियन प्रौढ़ों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना। मिशन का सहायक लक्ष्य है बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम के 1.5 मिलियन प्रौढ़ों और व्यावसायिक कार्यक्रम के अंतर्गत इतने ही प्रौढ़ों को कवर करना। मिशन का मुख्य लक्ष्य महिलाओं तक ही सीमित नहीं रहेगा बल्कि निम्न साक्षरता वाले राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक अन्य लाभार्थी समूह और युवा वर्ग इसके केंद्र बिंदु होंगे। प्रत्येक केंद्रित समूह और क्षेत्र के लिए एक विशिष्ट लक्ष्य होगा और प्रत्येक लक्षित समूह के लिए अलग और निति होगी।

देश तथा दुनिया के विभिन्न भागों में सूचना तकनीक का व्यापक पैमाने पर उपयोग हो रहा है। अतः बिहार के विद्यालयों तथा छात्र-छात्राओं के समावेशिक विकास के लिए शिक्षण विधि में सूचना तकनीक का उपयोग अपेक्षित हैं। शिक्षण विधि में साधारणतः सूचना तकनीकों का उपयोग हो रहा है।

- **मीडिया तथा आडियो-विजुअल संचार :** इसके तहत शिक्षण विधि में रेडियों तथा शैक्षणिक टेलीविजन आदि का उपयोग किया जाता है।
- **व्यवसायिक प्रशिक्षण तकनीक :** इसके तहत CBT अर्थात् कंप्यूटर आधारित प्रशिक्षण तथा CAD अर्थात् कंप्यूटर प्रायोजित डिजाइन आदि का उपयोग होता है।
- **इंटरनेट/वेब आधारित शिक्षण विधि :** इसके अंतर्गत दुनिया के सूचना स्रोतों का उपयोग होता है साथ ही YouTube, PDF, Facebook, Blog आदि के जरिए छात्र-छात्राओं के नई सूचनाओं तथा ज्ञान स्रोतों का लाभ प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत E-Library का भी उपयोग किया जा सकता है तथा विशेषज्ञों से ई-मेल तथा अन्य साधनों के जरिए अध्ययन विषय से संबंधित सवालों एवं समस्याओं का हल भी निकाला जा सकता है।

- **प्रोजेक्टर एवं व्हाइट बोर्ड** : इसके अंतर्गत सूचना तकनीक में प्रशिक्षित शिक्षा, लैपटॉप, कंप्यूटर सीडी, प्रोजेक्टर, पेन ड्राईव तथा व्हाइट बोर्ड के जरिए छात्र-छात्राओं को सूचना तकनीक के जरिए वैज्ञानिक एवं प्रमाणिक ज्ञान प्रदान कर सकता है।
- **विडियो कॉन्फ्रेंसिंग** : यह एक सूचना तकनीक का महत्वपूर्ण साधन है। इस तकनीक के आधार पर विशेषज्ञ शिक्षक एक जगह बैठकर विडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए कई विद्यालयों के छात्रों को प्रशिक्षित कर सकते हैं।

निष्कर्ष

प्रतियोगी परीक्षाओं तथा राजगार से संबंधित आवेदनों के लिए ऑन लाईन की व्यवस्था की जा रही है। रेलवे, बैंक, प्रशासन तथा जीवन के लागभग अधिकांश क्षेत्रों में डिजिटल तकनीकों का उपयोग हो रहा है।

संदर्भ

1. अटल, योगेश, 2006, चेंजिंग इंडियन सोसाइटी, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
2. अटल, योगेश, 1992, अन्डरस्टैंडिंग इंडियन सोसाइटी, हर आनन्द पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
3. अटल, योगेश, 1996, एक भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. कैर्लिजर, एफ0एन0, 1995, सोशल चेंज, मैकमिलन, नई दिल्ली
5. गिडेन्स, एंथोनी, 1977, स्टडीज इन सोशल एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी, हचिन्सन, लंदन
6. गिडेन्स, एंथोनी, 2013, सोशियोलॉजी, पोलिटी, कैम्ब्रिज
7. गिडेन्स, एंथोनी, 1990, द कन्सीक्युन्स ऑफ मोर्डनीटी, पोलिटी, कैम्ब्रिज
8. गुडे एण्ड हॉट, 2001, मेथड्स इन सोशल रिसर्च, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली



पश्चिमी राजस्थान में अक्षय ऊर्जा का विस्तार

शिव गिरी

सहायक आचार्य (भूगोल)

बी. एल. कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, शिव (बाड़मेर)

सारांश

ऊर्जा महत्वपूर्ण आधारभूत संरचना है। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र जैसे कृषि, उद्योग, परिवहन, सामाजिक विकास क्षेत्र आदि विकास के लिए ऊर्जा पर निर्भर है। क्षेत्र विशेष का विकास ऊर्जा बिना संभव नहीं है। ऊर्जा के लिए परम्परागत और गैर परम्परागत स्रोत होते हैं। परम्परागत स्रोतों में जल विद्युत, थर्मल विद्युत एवं अणु ऊर्जा सम्मिलित की जाती है। ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों में बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि प्रमुख है।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन और औद्योगिककरण नगरीकरण तथा बढ़ती जनसंख्या से ऊर्जा की मांग में दिनों दिन वृद्धि हो रही है। जिस अनुपात में ऊर्जा के उत्पादन में वृद्धि हो रही उससे तीव्र गति से ऊर्जा की मांग बढ़ रही है एक आंकड़े के राज्य में मार्च, 2017 तक ऊर्जा की उपलब्धता 6,922 करोड़ यूनिट थी, जो कि बढ़कर मार्च, 2024 तक 11,204 करोड़ यूनिट हो गई। वर्ष 2016-17 से वर्ष 2023-24 तक कुल ऊर्जा उपलब्धता में 61.86 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार से कुल शुद्ध ऊर्जा के उपभोग में भी 64.41 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। राज्य में ऊर्जा की उपलब्धता एवं एवम उपभोग के मध्य अंतर बढ़ रहा है और ऊर्जा के परंपरा स्रोत सीमित है इसलिए भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अक्षय ऊर्जा या गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोतों की ओर ध्यान आवश्यक है। नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार के आंकलन के अनुसार राजस्थान में 142 गीगावाट क्षमता सौर ऊर्जा से स्थापित की जा सकती है। लेकिन वर्तमान में उत्पादन इससे कई गुना कम है। इसके समुचित दोहन से ना केवल ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति होगी बल्कि ग्रीन एनर्जी के क्षेत्र में भी हम आगे बढ़ सकते हैं पश्चिमी राजस्थान अब पूरे देश में अक्षय ऊर्जा का हब बन गया है। पहले यहां विंड पॉवर का सबसे ज्यादा उत्पादन होता था और अब सोलर पार्क की स्थापना के साथ ही प्रदूषण मुक्त ऊर्जा का बंपर उत्पादन हो रहा है। यहां उत्पादित बिजली को सीधे ग्रिड में प्रवाहित करने के लिए राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम की ओर से पहली बार ग्रीन पॉवर कॉरिडोर का निर्माण करवाया जा रहा है।

राजस्थान में अक्षय ऊर्जा

राजस्थान अक्षय ऊर्जा निगम लिमिटेड (आरआरईसीएल) राज्य में गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों से ऊर्जा उत्पादन करने हेतु नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार की एक नोडल एजेंसी है एवं ऊर्जा संरक्षण व ऊर्जा दक्षता को राज्य में प्रोत्साहित करने हेतु ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिशिएंसी (बी.ई.ई.) की राज्य नामित एजेंसी है।

राज्य में अक्षय ऊर्जा के विभिन्न स्रोत

सौर ऊर्जा उत्पादन

राजस्थान अधिकतम सौर विकिरण तीव्रता लगभग 6-7 किलोवाट घण्टे /वर्गमीटर / प्रतिदिन और अधिकतम सौर दिवस (एक वर्ष में 325 दिवस से अधिक) एवं कम औसत वर्षा के कारण सौर ऊर्जा में समृद्ध है। राजस्थान में, नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार के आंकलन के अनुसार 142 गीगावाट क्षमता सौर ऊर्जा से स्थापित की जा सकती है।

शुष्क मरुस्थल के लिए जाना जाने वाला राजस्थान अब तेजी से सौर ऊर्जा के सबसे बड़े केन्द्र के रूप में उभर रहा है। राज्य में माह मार्च, 2024 तक रूफटॉप संयंत्रों एवं ऑफग्रिड संयंत्रों के अलावा 19,459 मेगावाट क्षमता के (ग्राउंड माउन्टेड) सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित हो चुके हैं।

राज्य सरकार द्वारा राजस्थान अक्षय ऊर्जा नीति, 2023 दिनांक 6 अक्टूबर, 2023 को एवं हाईड्रोजन नीति 2023 दिनांक 29 सितम्बर, 2023 को जारी की गई है।

सोलर पार्क एवं मेगा सोलर पावर प्रोजेक्ट्स का विकास

भड़ला सोलर पार्क, जोधपुर स्थित भड़ला में 2,245 मेगावाट क्षमता का सोलर पार्क चार चरणों (फेज) में विकसित किया गया है, जिसका विवरण निम्नानुसार है—

1. भड़ला सोलर पार्क फेज प्रथम (65 मेगावाट) भड़ला, जोधपुर में राजस्थान सोलर पार्क डवलपमेंट कम्पनी लिमिटेड (जो कि आरआरईसीएल की सहयोगी कम्पनी है) के द्वारा विकसित किया गया है एवं 65 मेगावाट क्षमता की परियोजनाओं से विद्युत उत्पादन प्रारम्भ हो चुका है।

2. भड़ला सोलर पार्क फेज-द्वितीय (680 मेगावाट), भड़ला, जोधपुर में राजस्थान सोलर पार्क डवलपमेंट कम्पनी लिमिटेड (आरएसडीसीएल) के द्वारा विकसित किया गया है एवं समस्त 680 मेगावाट क्षमता की परियोजनाओं से विद्युत उत्पादन प्रारम्भ हो चुका है।

3. भड़ला सोलर पार्क फेज तृतीय (1,000 मेगावाट), आईएल एण्ड एफएस एनर्जी डवलपमेंट कम्पनी लिमिटेड एवं राज्य सरकार की संयुक्त उपक्रम कम्पनी।

4. भड़ला सोलर पार्क फेज चतुर्थ (500 मेगावाट) मैसर्स अडानी रिन्यूएबल एनर्जी पार्क राजस्थान लिमिटेड (जो कि मैसर्स अडानी व राज्य सरकार के मध्य संयुक्त उपक्रम कम्पनी है) के द्वारा विकसित किया गया है एवं समस्त 500 मेगावाट क्षमता के सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित किये जा चुके हैं।

भड़ला सोलर पार्क-प्रथम फेज राजस्थान अक्षय ऊर्जा निगम लिमिटेड द्वारा स्वयं के स्तर पर विकसित किया गया है तथा द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ फेज को नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार की सोलर पार्क योजना के अन्तर्गत विकसित किया गया है।

रिन्यूबल एनर्जी सर्विस कम्पनी (रेस्को) मोड सोलर रूफ टॉप योजना

ल्स् द्वारा रेस्को मोड के तहत राजकीय भवनों पर रूफटॉप सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापना का क्रियान्वयन किया जा रहा है। मार्च, 2024 तक 1.2 मेगावाट क्षमता के संयंत्र स्थापित किये किये जा चुके हैं।

पीएम कुसुम योजना (कम्पोनेन्ट-ए)

केन्द्र सरकार की पीएम कुसुम योजना के कम्पोनेन्ट ए का क्रियान्वयन ल्स् द्वारा किया जा रहा है जिसके तहत 33/11 किलोवाट सब-स्टेशनों की 5 किमी की परिधि में स्थित किसानों की बंजर / अनुपयोगी भूमि पर 0.5 मेगावाट से 2 मेगावाट क्षमता के विकेन्द्रीकृत सौर ऊर्जा संयंत्र की स्थापना के लिए कुल 722 मेगावाट क्षमता के लिए 623 सफल आवेदकों को

आवंटन पत्र (एलओए) जारी किया गया है।

623 सौर ऊर्जा उत्पादकों (एसपीजी) में से कुल 600 मेगावाट क्षमता के लिए 490 पीपीए पर हस्ताक्षर किये गये हैं। मार्च, 2024 तक 144 मेगावाट क्षमता के संयंत्र स्थापित किये जा चुके हैं।

पवन ऊर्जा

भारत सरकार के नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के तहत नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ विण्ड एनर्जी (एनआईडब्ल्यूई) द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार राज्य में पवन ऊर्जा की 150 मीटर की ऊंचाई (धरातल स्तर से) पर अनुमानित क्षमता लगभग 284 गीगावाट है। राज्य में मार्च, 2024 तक कुल 5,209 मेगावाट क्षमता के पवन ऊर्जा संयंत्र स्थापित किए जा चुके हैं। राजस्थान में पवन ऊर्जा की क्षमता 284 गीगावाट है। राजस्थान में पवन ऊर्जा उत्पादन के मामले में देश में दूसरा स्थान है।

राजस्थान में पवन ऊर्जा उत्पादन के लिए जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, और बीकानेर जैसे जिले प्रमुख हैं।

जैसलमेर में पड़ी सर्वाधिक परती भूमि का उपयोग सौर और पवन ऊर्जा के लिए किया जा इससे ना केवल राजस्थान ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बन रहा है बल्कि यहां स्थानीय लोगों के रोजगार के अवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं। जिससे यहां के लोगों के जीवन स्तर में भी सुधार देखा गया है।

राजस्थान में पवन ऊर्जा उत्पादन के लिए ज्यादातर पवन ऊर्जा संयंत्र निजी क्षेत्र ने लगाए हैं। राजस्थान में पवन ऊर्जा उत्पादन के लिए कई योजनाएं और नीतियां लागू की जा रही हैं।

राजस्थान में पवन ऊर्जा के लिए कई फायदे हैं, जैसे कि पूरे साल अनुकूलतम पवन गति, अप्रयुक्त ज़मीन का होना, और विद्युत ग्रिड बुनियादी ढांचे का बेहतर होना।

राजस्थान में पवन ऊर्जा के लिए कुछ चुनौतियां भी हैं, जैसे कि ग्रिड की स्थिरता, पवन परियोजनाओं की चालकता, और प्रारंभिक निवेश में जोखिम।

15 जून, 2023 को केंद्र सरकार ने राजस्थान को पवन ऊर्जा के क्षेत्र में अन्य राज्यों की तुलना में किए गए अनुकरणीय कार्य के लिए प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया था।

बायोमास ऊर्जा (जैविक द्रव्य ऊर्जा)

अक्षय ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों में बायोमास ऊर्जा स्वच्छ ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत है। राजस्थान राज्य में बायोमास ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्रोत सरसों की तूड़ी व विलायती बबूल है। राज्य में मार्च, 2024 तक 128.45 मेगावाट क्षमता के 14 बायोमास संयंत्र स्थापित किये जा चुके हैं जिसमें से 28 मेगावाट क्षमता के 2 संयंत्र वर्ष 2012 से बन्द हैं। वर्तमान में कुल 105.40 मेगावाट क्षमता के 8 बायोमास संयंत्रों की स्थापना का कार्य प्रगति पर है। राजस्थान सरकार ने 29 सितम्बर, 2023 को बायोमास एवं वेस्ट टू एनर्जी नीति 2023 जारी की है।

राजस्थान में अक्षय ऊर्जा के लिए किए जा रहे सरकारी प्रयास

1. राजस्थान अक्षय ऊर्जा नीति, 2023

इस नीति का लक्ष्य 2030 तक संयुक्त पवन-सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता 15 गीगावाट तक पहुंचाना है। वृद्धि के रूप में, यह राज्य वितरण कंपनियों (कैब्लड) को बिक्री के लिए और राज्य के भीतर उपयोग के लिए पेश की जाने वाली पवन ऊर्जा परियोजनाओं में योगदान देता है। नीति कैब्लड को राजस्थान विद्युत विनियामक आयोग (टम्ब) द्वारा निर्धारित नवीकरणीय खरीद दायित्व त्त्व के आधार पर नवीकरणीय ऊर्जा से खरीद करने का आदेश देती है।

2. राजस्थान पवन एवं हाइब्रिड ऊर्जा नीति, 2019

इस नीति का उद्देश्य ऊर्जा सुरक्षा और समानता बढ़ाना, कार्बन उत्सर्जन और प्रदूषण को कम करना और उपभोक्ता हितों की रक्षा करना है। पवन ऊर्जा उपकरणों के निर्माताओं को स्टाम्प ड्यूटी से 100% छूट दी गई है। भूमि को 50% रियायती दर पर आवंटित किया जाएगा, जिसमें दस साल तक बिजली शुल्क से पूरी छूट होगी।

3. राजस्थान एकीकृत स्वच्छ ऊर्जा नीति 2024

अक्षय ऊर्जा क्षमता को 125 गीगावॉट तक बढ़ाने का लक्ष्य।

प्रमुख प्रावधान :

अक्षय ऊर्जा, बायोमास एवं वेस्ट एनर्जी, ग्रीन हाइड्रोजन के प्रावधानों एवं ऊर्जा भण्डारण के नवीन प्रावधानों का समावेश वर्ष 2030 तक अक्षय ऊर्जा क्षमता को 125 गीगावॉट तक बढ़ाने का लक्ष्य, फ्लोटिंग सौर परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जाएगा

सोलर रूफ टॉप प्लांट के साथ छोटी विंड लगाने का प्रावधान। मल्टी स्टोरी बिल्डिंग हेतु वर्चुअल नेट मीटरिंग की सुविधा एवं उपभोक्ताओं को ग्रुप नेट मीटरिंग की सुविधा के प्रावधान।

सभी अक्षय ऊर्जा परियोजनाओं, पार्कों को राजकीय भूमि आवंटन, वर्चुअल पीपीए आधारित परियोजनाओं, कार्बन ट्रेडिंग, ऊर्जा दक्षता तथा नेट जीरो बिल्डिंग को बढ़ावा देने के प्रावधान।

4. रूफटॉप सौर सयंत्र स्थापित करने हेतु अनुदान का प्रावधान।

5. आवेदकों को रियायती दरों पर बैंक ब्याज का प्रावधान।

6. आवेदन की प्रक्रिया के सरलीकरण हेतु पंजीकरण, आवेदन स्वीकृति तथा अनुदान की शत प्रतिशत ऑनलाईन व्यवस्था। शत प्रतिशत ऑनलाईन व्यवस्था।

7. योजना का प्रचार प्रसार सोशल तथा प्रिंट मीडिया के माध्यम से तथा दूरस्थ स्थानों के लिए (डोर टू डोर) अभियान।

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ. उमेश बिहारी माथुर, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, जलवायु परिवर्तन (एक संक्षिप्त विवेचन), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर
हरि मोहन सक्सेना राजस्थान का भूगोल 2018 राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर

पर्यावरण और जल संरक्षण अप्रैल 2021, भूगोल और आप

आर्थिक समीक्षा 2023-24 आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, सांख्यिकी विभाग, राजस्थान, जयपुर

संस्करण जयपुर 22/05/2022 दैनिक भास्कर

संस्करण जयपुर अंक 16/07/2024 राजस्थान पत्रिका



AI-Driven Detection of Pathogens and Pests in Crop Plants – Challenges and Management Strategies

Supinderjit Kaur¹, Ravinder Kaur² and Akarshan Uppal²

¹ Dasmesh Girls College Chak Alla Baksh Mukerian, Punjab, 144211

ryansaab2244@gmail.com

² Khalsa College of Engineering & Technology, Amritsar, Punjab, 143001

er.ravinder312@gmail.com

² Khalsa College of Engineering & Technology, Amritsar, Punjab, 143001

akarshanuppal@gmail.com

Abstract

The increasing incidence of pathogens and pests poses a significant threat to global agriculture and food security. Traditional detection methods are often slow, labor-intensive, and inefficient for large-scale application. Artificial Intelligence (AI) has emerged as a powerful tool in crop protection, enabling rapid, accurate, and scalable identification of plant diseases and pest infestations. Technologies such as machine learning, deep learning, and computer vision have demonstrated high potential in analyzing plant images, environmental data, and sensor outputs for real-time diagnostics. However, challenges including limited datasets, model generalization, infrastructure constraints, and ethical concerns hinder widespread adoption. This manuscript explores the current landscape of AI-driven detection techniques, examines key barriers, and proposes integrated strategies for effective implementation. Emphasis is placed on data enhancement, transfer learning, capacity building, and public-private collaborations. By integrating AI with traditional approaches like Integrated Pest Management (IPM), agriculture can become more resilient, sustainable, and responsive to biotic stress threats.

Keywords: - Artificial Intelligence in Agriculture, Plant Disease Detection, Pest Monitoring Systems, Machine Learning Applications in Crop Protection, Deep Learning for Plant Health, Integrated Pest Management (IPM).

1. Introduction

Pathogens and pests are among the many biotic stresses that constantly threaten agriculture, the foundation of global food security, resulting in substantial financial losses and decreased crop yields [1]. Traditional approaches to disease and pest detection, such as manual scouting and laboratory analysis, are not only labor-intensive and time-consuming but often fail to detect early symptoms critical for timely intervention. As the global demand for food rises amidst changing climatic conditions

and evolving pest dynamics, there is an urgent need for more efficient, accurate, and scalable detection systems.

Artificial Intelligence (AI) is increasingly being recognized as a game-changer in the agricultural sector. Encompassing technologies like machine learning (ML), deep learning (DL), and computer vision, AI offers sophisticated tools for the real-time identification of plant diseases and pests. These tools utilize large datasets, sensor networks, and high-resolution imagery to analyze patterns and anomalies that might escape the human eye. For instance, convolutional neural networks (CNNs) have demonstrated high efficacy in diagnosing diseases directly from leaf images, while drone-enabled imaging and IoT (Internet of Things) devices facilitate remote monitoring of vast agricultural fields [3]. Despite its promise, AI-driven plant health diagnostics face several challenges. The success of these models depends heavily on the quality and diversity of training datasets, which are often limited, especially in developing regions. Furthermore, the ability of AI systems to generalize across different environmental conditions, crop varieties, and pest species remains a key hurdle. Infrastructural limitations, particularly in rural areas lacking internet access or technical know-how, further hinder the widespread adoption of AI technologies [5].

The purpose of this work is to present a thorough review of AI applications in crop pathogen and pest detection, talk about current issues, and suggest integrated management techniques.. It highlights case studies of AI implementation, explores potential solutions such as transfer learning and data augmentation, and advocates for interdisciplinary collaboration among researchers, policymakers, and farmers. Ultimately, the goal is to foster sustainable, technology-driven agricultural practices that can effectively combat crop health threats and ensure food security in the face of future challenges.

2. AI Technologies in Crop Pathogen and Pest Detection

Artificial Intelligence (AI) technologies are transforming crop protection by enabling early, accurate detection of pathogens and pests. Techniques such as machine learning, deep learning, and computer vision analyze images, sensor data, and environmental inputs to identify disease symptoms and pest infestations in real time [5]. Drones, smart phones, and IoT devices enhance field surveillance, improving decision-making for farmers and agronomists. These AI-driven solutions reduce reliance on manual scouting, minimize crop losses, and support sustainable agriculture. As data quality and model generalization improve, AI is poised to become an indispensable tool in modern, precision-based plant health management systems.

2.1 Machine Learning and Deep Learning

Machine learning and deep learning have revolutionized crop pathogen and pest detection by enabling accurate, real-time identification through image analysis and sensor data. These AI techniques allow early diagnosis by learning complex patterns in visual symptoms and environmental signals [4]. Deep learning models, especially convolutional neural networks (CNNs), excel at processing plant images to distinguish between healthy and diseased crops. When integrated with mobile devices, drones, and IoT sensors, these technologies support scalable and automated monitoring systems. As agriculture moves toward smart farming, machine and deep learning offer powerful tools to enhance crop protection, reduce yield losses, and ensure sustainable food production.

2.2 Computer Vision

Computer vision plays a transformative role in modern agriculture by enabling rapid, accurate detection of pathogens and pests in crop plants. Utilizing advanced image processing and deep learning algorithms, computer vision systems can identify visual symptoms such as leaf discoloration, spots, or insect damage from photos or video feeds. These technologies empower farmers with real-time diagnostics using drones, smart phones, or stationary cameras, minimizing the need for manual inspections. Early detection through computer vision supports timely interventions, reducing crop loss and pesticide overuse. As part of smart farming, it enhances decision-making, promotes sustainable practices, and boosts agricultural productivity [7].

3. Challenges in AI-Driven Detection

Despite the promising applications, several challenges hinder the widespread adoption of AI in crop pathogen and pest detection [2].

3.1 Data Quality and Availability

Data quality and availability are critical challenges in AI-driven detection of plant pathogens and pests. Inconsistent image resolutions, lack of diverse datasets, and insufficient labeled samples hinder model accuracy and generalizability. Standardized data gathering, open-access repositories, and cooperative efforts for international dataset sharing and curation are necessary to overcome these problems.

3.2 Environmental Variability

Variations in environmental conditions, such as lighting, weather, and soil moisture, can affect the appearance of plants and complicate the detection process. AI models must be robust enough to account for these variations to maintain accuracy.

3.3 Real-Time Processing

The need for real-time detection necessitates the development of AI models capable of processing data swiftly. This requirement poses challenges in terms of computational resources and model optimization.

4. Management Strategies Utilizing AI

To address the challenges and enhance the effectiveness of AI in crop pathogen and pest management, several strategies have been implemented [6].

4.1 Integration with IoT and Edge Computing

The integration of AI with Internet of Things (IoT) devices and edge computing enables the collection and analysis of data at the source, facilitating real-time monitoring and decision-making. This approach reduces latency and enhances the responsiveness of pest and disease management systems.

4.2 UAV-Based Monitoring

Unmanned Aerial Vehicles (UAVs), equipped with AI-powered imaging systems, provide a means for large-scale monitoring of crops. These systems can detect early signs of pest infestations and diseases, allowing for timely intervention.

4.3 Mobile Applications

Mobile applications embedded with AI algorithms offer farmers accessible tools for on-site detection and management of crop health issues. These applications utilize smartphone cameras and sensors to capture data and provide instant analysis.

5. Case Studies and Applications

5.1 Plant Village Nuru App: Developed by Penn State University in collaboration with the UN FAO, Plant Village Nuru is an AI-based mobile application designed to detect plant diseases in crops like cassava, maize, and potato [3]. The app uses deep learning to identify diseases from images of plant leaves captured using smartphones. It operates offline, which is particularly valuable in remote areas with limited internet access. Field tests in African countries like Kenya and Nigeria have shown the tool's ability to empower farmers with early detection and prompt response strategies.

5.2 Pest Net and Deep Learning Models: Pest Net is a collaborative project that collects and shares images of pests across different agricultural zones, enhancing global pest surveillance. By leveraging CNNs, Pest Net can classify pest species from field images with an accuracy exceeding 90% [12]. Its integration with mobile platforms allows real-time alerts for pest outbreaks, particularly helpful for extension officers and researchers in Southeast Asia.

5.3 India's e-SAP System: The Electronic Solutions against Agricultural Pests (e-SAP) system developed in India integrates AI and IoT to monitor pest populations and recommend treatments. Deployed in Karnataka, the system uses sensors, smartphones, and GPS to record real-time pest activity and environmental data [1]. AI algorithms process this data to identify emerging pest threats and provide region-specific advisories, contributing to precision agriculture.

5.4 AI-Enabled UAVs in China: In China, Unmanned Aerial Vehicles (UAVs) equipped with AI-driven computer vision systems are used to scan large crop fields for signs of pest infestation and disease. These UAVs collect high-resolution images, which are analyzed on-board using DL models trained on massive datasets [9]. The technology helps reduce pesticide usage by targeting specific areas, supporting sustainable farming practices.

5.5 Disease Mapping through Satellite Imagery in Brazil: In Brazil, researchers use AI to analyze satellite imagery to detect large-scale patterns of crop disease, especially in soybean and sugarcane fields [10]. AI algorithms identify deviations in spectral signatures, which correlate with disease presence. These findings help local governments and agricultural stakeholders implement targeted intervention strategies to mitigate yield loss.

5.6 Taranis Smart Scout: Taranis is an AI-powered platform that uses high-resolution aerial imagery combined with computer vision to detect early signs of disease, pest infestations, and nutrient deficiencies [11]. Operating in the US, Argentina, and Australia, SmartScout can cover thousands of acres in minutes, providing detailed insights at the leaf level. The platform uses machine learning models to provide actionable insights that are synchronized with crop management software.

5.7 PEAT's Plantix: Plantix is a diagnostic app developed by the German startup PEAT. It combines image recognition with a vast database of crop diseases and pest symptoms. Farmers upload photos of affected crops, and the app instantly identifies the issue and suggests treatment [2]. It also serves as a knowledge-sharing community where users can ask questions and receive expert advice.

Plantix has been widely adopted in India and Latin America, especially among smallholder farmers.

5.8 Global Open-Source Projects: Open-source platforms like AI4D Agriculture and the PlantDoc dataset initiative support research and development of AI tools by providing access to annotated image datasets [4]. These platforms are key for training robust, generalized AI models and promoting transparency in agricultural AI development.

These case studies reflect the diverse applications and scalability of AI in agricultural systems, demonstrating the technology's capacity to address both localized and large-scale challenges in pest and pathogen detection.

6. Future Directions

The future of AI in crop pathogen and pest detection lies in the development of more advanced models capable of handling diverse and complex agricultural environments. Emphasis on data sharing, model transparency and collaboration between researchers, farmers, and technology developers will be crucial in overcoming existing challenges and realizing the full potential of AI in agriculture.

7. Conclusion

The integration of Artificial Intelligence (AI) in the detection and management of pathogens and pests in crop plants represents a transformative shift in modern agriculture. By enabling rapid, accurate, and scalable identification of diseases and pests, AI technologies have the potential to significantly reduce crop losses, enhance food security, and improve agricultural sustainability. Techniques such as machine learning, deep learning, computer vision, and remote sensing are being increasingly adopted across different farming systems. However, despite these advancements, several challenges persist, including the lack of diverse, high-quality datasets, limited infrastructure in rural areas, and issues related to data privacy and model generalization. To maximize the benefits of AI, it is essential to develop inclusive and context-specific solutions that involve stakeholders at all levels—from farmers to policymakers. Strategic actions such as enhancing data sharing, leveraging transfer learning, investing in rural digital infrastructure, and integrating AI tools with established Integrated Pest Management (IPM) practices are crucial. With continued innovation, capacity building, and cross-sector collaboration, AI can serve as a cornerstone in the development of resilient agricultural systems capable of withstanding the growing threats of pests and pathogens in a changing climate. The future of crop protection is undoubtedly data-driven, and AI will play a pivotal role in shaping it.

References

1. Vennila, S. (2022). Use of Information and Communication Technology in Integrated Pest Management. *Adaptation Strategies for Pest Management in Climate Change Scenarios*, 55.
2. Samal, I., Bhoi, T. K., Pradhan, A. K., & Mahanta, D. K. (2023). Plantix app: A success story of artificial intelligence in plant protection. *Van Sangyan*, 10, 24-44.
3. Rajagopal, M. K., & Murugan, B. S. (2023). Artificial Intelligence based drone for early disease detection and precision pesticide management in cashew farming. *arXiv*. Retrieved from <https://arxiv.org/abs/2303.08556>.

4. Sarada, M. (2023). Comparative Analysis of AI Techniques for Plant Disease Detection and Classification on PlantDoc Dataset. In *Artificial Intelligence Tools and Technologies for Smart Farming and Agriculture Practices* (pp. 233-261). IGI Global.
5. Abdullah, H. M., Mohana, N. T., Khan, B. M., Ahmed, S. M., Hossain, M., Islam, K. S., & Ahamed, T. (2023). Present and future scopes and challenges of plant pest and disease (P&D) monitoring: Remote sensing, image processing, and artificial intelligence perspectives. *Remote Sensing Applications: Society and Environment*, 32, 100996.
6. Basak, S. K. (2023). *Leaf Disease Detection (Potato Leaf) Using Machine Learning* (Doctoral dissertation, University of Engineering & Technology).
7. Kumar, S., & Singh, R. (2024). AI-Enabled Crop Management Framework for Pest Detection Using Visual Sensor Data. *MDPI*. Retrieved from <https://www.mdpi.com/2223-7747/13/5/653>
8. Zhang, Y., & Li, J. (2024). Intelligent agriculture: deep learning in UAV-based remote sensing imagery for crop diseases and pests detection. *Frontiers in Plant Science*. Retrieved from <https://www.frontiersin.org/articles/10.3389/fpls.2024.1435016/full>.
9. Amulothu, D. V. R. T., Rodge, R. R., Hasan, W., & Gupta, S. (2024). Machine Learning for Pest and Disease Detection in Crops. In *Agriculture 4.0* (pp. 111-132). CRC Press.
10. Li, C., & Wang, M. (2024). Pest and disease management in agricultural production with artificial intelligence: Innovative applications and development trends. *Advances in Resources Research*, 4(3), 381-401.
11. Zhu, H., Lin, C., Liu, G., Wang, D., Qin, S., Li, A., & He, Y. (2024). Intelligent agriculture: Deep learning in UAV-based remote sensing imagery for crop diseases and pests detection. *Frontiers in Plant Science*, 15, 1435016.
12. Vinayaka, & Prasad, P. R. C. (2024). AI-enhanced remote sensing applications in Indian sugarcane research: A Comprehensive Review. *Sugar Tech*, 26(3), 609-628.
13. Kariyanna, B., & Sowjanya, M. (2024). Unravelling the use of artificial intelligence in management of insect pests. *Smart Agricultural Technology*, 100517.
14. Patel, R., & Desai, S. (2025). AI in Agriculture: Detecting Plant Diseases and Their Challenges. *Analytics Insight*. Retrieved from <https://www.analyticsinsight.net/artificial-intelligence/ai-in-agriculture-detecting-plant-diseases-and-their-challenges>.
15. Soni, P., & Soni, S. (2025). Leveraging deep learning for plant disease and pest detection: a comprehensive review and future directions. *Frontiers in Plant Science*. Retrieved from <https://www.frontiersin.org/articles/10.3389/fpls.2025.1538163/full>.
16. Hidayatullah, A. F., & Shafik, W. (2025). Revolutionizing Agriculture with Automated Plant Disease Detection: Techniques, Applications, Challenges, Future Directions, and Sustainability Impacts. In *Artificial Intelligence and Data Science for Sustainability: Applications and Methods* (pp. 267-296). IGI Global Scientific Publishing.
17. Wang, S., Xu, D., Liang, H., Bai, Y., Li, X., Zhou, J., & Wei, W. (2025). Advances in Deep Learning Applications for Plant Disease and Pest Detection: A Review. *Remote Sensing*, 17(4), 698.



हृषीकेश सुलभ की कहानियों में नारी जीवन : एक अनुशीलन

इला कुमारी

(शोधार्थी) हिन्दी विभाग,

जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा, बिहार

ईमेल-ilakumari-hrw@gmail.com

मोबाईल नं. 6201229849

हृषीकेश सुलभ की कहानियों में सामाजिक न्याय और स्त्री-पुरुष विषमता को लेकर काफी कुछ कहा गया है। लैंगिक न्याय के लिए संघर्ष करती कहानियों को काफी व्यापक फलक पर उठाया गया है और इसके माध्यम से समस्या की जटिलता, गंभीरता और व्यापकता की ओर समाज और नीति-निर्माताओं का ध्यान आकृष्ट किया गया है। पाठकवर्ग तो इन कहानियों के साथ है ही। नारी की समस्याओं को विषय बनाकर लिखी गई प्रमुख कहानियाँ हैं— अग्नि जो लागि नीर में, भुजाएँ, दुगुन में बजना तबला, और द्रुत विलम्बित।

‘अग्नि जो लागि नीर में’ कहानी की माधुरी देवी अपनी बेटी सुवंती को जन्म देने के कारण प्रताड़ित की जाती है, पति के द्वारा परित्यक्त कर दी जाती है। सुवंती का पिता दूसरी शादी कर लेता है। हमारा समाज नारी के जन्म का ही निषेध करता है, जन्म लेने के बाद जन्मदात्री तक को इसकी सजा देता है और जीवन भर उससे बदला लेने की कोशिश करता है। सच तो यह है कि पुरुष संतान पैदा करने के लिए पुरुष ही जिम्मेदार होता है स्त्री नहीं। नारी को स्त्री संतान जनने की ‘सजा’ पुरुष प्रधान समाज का अन्याय है जो काफी पुराना रोग बन चुका है। इस सामाजिक स्थिति और विकृत मानसिकता का खुलासा करते हुए के.वनजा का कथन द्रष्टव्य है “स्त्री को भ्रूणावस्था से लेकर इस धरती में जीने के लिए लड़ना पड़ता है। लिंग निर्धारण कर बच्ची लड़की है तो उस समय में चिंतित होने वाली माँ है हमारे बीच में। लड़की के जन्म का निषेध करता है हमारा यह समाज। संसार के अस्तित्व के लिए स्त्रियों की भूमिका को नकारकर स्त्री को भ्रूणावस्था में ही नोचकर, मसलकर और पीसकर नष्ट करने वाले समाज में माँ की चिन्ता स्वाभाविक है।”¹

सुवंती की माँ माधुरी देवी की पीड़ादायक अनुभूति का वर्णन करते हुए कहानीकार ने लिखा है, “जिन स्मृतियों पर वह सालों पहले मिट्टी डाल चुकी थी, वे सपनों में कौंधती। ... बेटी जनमने के बाद सास-श्वसुर की गालियाँ और पति के घृणा भरे व्यंग्य-बाण।... कुछ ही महीने बाद पति के दूसरे विवाह की तैयारी और उन्हें घर से निकालने के लिए ससुराल में रची गई दुरभि संधियाँ,... बात-बेबात मारपीट और बेटी को नून चटाकर मार डालने के प्रयास।... बड़ी मुश्किलों से वह अपनी और बेटी की जान बचाकर भागी थी।”²

माधुरी देवी की अनुभूति से समानता रखनेवाली स्त्रियों की भारतीय समाज में कमी नहीं है। स्त्री के मामले में समाज का अपराधीकरण हो गया है। इसका संबंध पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता से है इसलिए समस्या का समाधान दुरन्त प्रतीत होता है।

आलोच्य कहानी का एक पक्ष यह भी है कि अपनी माँ माधुरी देवी के विपरीत सुवंती उत्तर-आधुनिकता से परिचालित

उपभोक्तावादी संस्कृति से परिचालित उपभोक्तावादी संस्कृति का ग्रास बनने के लिए तैयार है। यह बाजार और मीडिया की संयुक्त शक्ति का उदाहरण है। इस उथल-पुथल के बीच सुबंती के निर्णय और व्यवहार का मूल्यांकन करना सहज नहीं है। इसका निर्णय माधुरी देवी के लिए किसी त्रासदी से कम नहीं है। इस स्थिति के लिए कोई व्यक्ति विशेष जिम्मेदार न होकर पूरा परिवेश जिम्मेदार है। सुबंती 'मिस पटना' चुनी जाने के बाद विशिष्ट बन जाती है। जबकि अपनी माँ के लिए अवशिष्ट और निकृष्ट।

इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मी गौतम का कथन है, “उत्तर औद्योगिक समाज की उपभोक्तावादी संस्कृति में मीडिया की भूमिका निर्णायक हो गयी है। मीडिया की पहुँच का ही नतीजा है कि मध्यवर्गीय चेतना को बाजार ताकतें लुभाती रहती हैं।”³

‘भुजाएँ’ पुरुष वर्ग की दोहरी नैतिकता से संबंधित सशक्त कहानी है। इसका प्रमुख पुरुष पात्र अष्टभुजा लाल है और प्रमुख स्त्री पात्र श्रीमती कुसुम कुमारी है। दोनों पति-पत्नि हैं। कहानी की मूल समस्या कुसुम कुमारी के पूर्व प्रेमी से संपर्क है जिसे अष्टभुजा लाल अनैतिक संबंध मानता है और इसकी सजा देने के लिए एक दिन उसकी छाती पर सवार होकर उत्पीड़न का शिकार बनाता है। यह घटना पत्नी के पूर्व प्रेमी से संबंध होने के रहस्योद्घाटन के बाद घटित होती है। स्थिति की विडंबना यह है कि अष्टभुजा लाल खुद अपने पिता का औरस पुत्र नहीं है। वह अपने पिता झूलन लाल की संतान न होकर बचनू लाल का है जो इसके घर आते-जाते रहता था। यह बात अष्टभुजा लाल की माँ मनोदेई ने स्वयं अपनी डायरी में लिखकर रख दी थी। इस डायरी को कुसुम कुमारी पढ़ चुकी थी। वह अष्टभुजा लाल की जन्म-कथा का रहस्य जान चुकी थी। कुसुम कुमारी द्वारा अष्टभुजा लाल के जन्म की सच्ची कहानी सुनकर कुसुम कुमारी को जकड़ी हुई अष्टभुजा लाल की भुजाएँ लुप्त हो गई और वह पलंग पर लोथ की तरह दिखाई पड़ रहा था। नारी पुरुष के शारीरिक बल को लेकर भारत में एक प्रकार की मानसिकता बन गई है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है। बावजूद इसके यह भी एक सच्चाई कि सबल मानसिकता के द्वारा स्त्री पुरुष का मुकाबला सक्षमतापूर्वक कर सकती है। इस संदर्भ में सावित्री दुलारेलाल का कथन द्रष्टव्य है, “पुरुषों में पाश्विक बल अधिक है। यदि हम दृढ़ता से मानव स्वातंत्र्य की धारा बहाती रहें तो उसकी गहराई में पाश्विक बल रूपी पहाड़ भी विलीन हो जायेंगे।”⁴

‘दुगुन में बजता तबला’ यौन शुचिता से संबंधित कहानी है, जिसकी नायिका नैना विवाह से पहले ही गर्भवती हो जाती है। उसका पति केके इसके लिए उसे प्रताड़ित करता है और बड़ी बेरहमी से पीटता है।

कहानी के मूल में जिस समस्या को उठाया गया है वह सरसरी तौर पर नैतिकता से जुड़ी लगती है, लेकिन इस समस्या का वास्तविक संबंध दोहरी नैतिकता से है। इसके पीछे की सच्चाई एकतरफा और वैषम्यजन तथ्य पर आधारित है। इस संदर्भ में बर्ट्रंड रसल का कथन नये रहस्य का उद्घाटन करता है, “पितृप्रधान समाज में विवाह संस्था की नैतिक मान्यताओं का विवेचन करते हुए मानते हैं कि पितृत्व का अस्तित्व और महत्व ही पुरुषों के अंदर नारी में सतीत्व की माँग का कारण बन गया है। विवाह के समय लड़की कुंवारी हो, इस माँग के पीछे यह कारण है।”⁵

‘कलंक मुक्ति’ जैसी कहानी का संबंध एक ऐसी स्त्री से संबंधित है जो अपनी प्रबल संतानेच्छा के कारण अनेक पुरुषों के संपर्क में आती है लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती है। वह कामवाली स्त्री है। अंततः एक संभ्रान्त घर में काम करते हुए उसका संपर्क उस घर के युवक बाबू के साथ होता है। बाबू के शारीरिक संपर्क के कारण गर्भधारण कर वह काफी खुश है, लेकिन बाबू अपनी खानदानी प्रतिष्ठा के धूमिल होने के भय से चिंता में पड़ जाता है। उस स्त्री के गर्भपात न कराने की स्थिति से वह विचलित है लेकिन स्त्री की ओर से आश्वासन मिलने पर वह कलंकित होने के भय से मुक्त हो जाता है।

‘कलंक मुक्ति’ कहानी पुरुष के दोहरे चरित्र को दर्शाती है। एक ओर वह भोग-लालसा की पूर्ति भी चाहता है और दूसरी ओर अपनी वास्तविकता भी समाज के सामने आने से डरता है। इस कहानी की एक विशेषता है कि यहाँ स्त्री स्वेच्छा से संतान की इच्छा से पुरुष से संपर्क करती है। अन्य कहानियों से इस अर्थ में भिन्न है कि स्त्री की भी अपनी इच्छा हो सकती है जिसका समुचित समाधान ढूँढा जाना चाहिए। पति की नपुंसकता का दुर्वह भार उसके सिर से उतारा जाना चाहिए।

इस कहानी का एक कोण यह भी है कि पुरुष को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के सामने स्त्रीत्व को नगण्य नहीं समझना

चाहिए। महान लेखक शरदचंद्र ने स्त्रीत्व को सतीत्व से श्रेष्ठ माना है। इस मान्यता से स्त्री के प्रति होने वाले अनेक प्रकार के अन्याय के होने की संभावना हृषीकेश सुलभ में स्त्री-पुरुष संबंधी नये मूल्यों के अन्वेषण का भी आग्रह मिलता है जो नये समय की माँग है। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मी गौतम का कथन है, “श्लील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक, शुभ-अशुभ से ऊपर उठकर इस सच्चाई को स्थान दिया है कि यह मूढ़ता नहीं बल्कि तथ्य स्वीकृति के साहसिक मूल्यों की स्थापना है जो नये मूल्यों का निरूपण व निर्धारण का आधार बनते हैं। यह कारण है कि आज नयी कथा चेतना नारी-पुरुष के आपसी संबंधों के संक्रमण और संकट को ही चित्रित नहीं करती या उन्हें अलग-अलग स्थितियों में नहीं पड़ती -बल्कि उन्हें एक-दूसरे से अलग होने की स्थिति में भी जाँच लेना चाहती है।”⁶

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कहानीकार हृषीकेश सुलभ ने नारी जीवन की अनेक समस्याओं को पूरी सहानुभूति और न्यायपूर्ण दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। उनकी नारी-विमर्श से संबंधित कहानियाँ इकहरी न होकर बहुमुखी और संश्लिष्ट हैं।

संदर्भ सूची

1. फेमिनिज्म : के.वनजा अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2023 पृ.सं. 153
2. हलंत : हृषीकेश सुलभ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2015 पृ.सं. 22
3. उत्तर आधुनिकता और समकालीन कथा साहित्य : डॉ. लक्ष्मी गौतम लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2022 पृ.सं. 159
4. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, संपादक : डॉ. संजय गर्ग सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2014 पृ.सं. 125
5. बर्ट्रंड रसल : जीवन एवं चिंतन संपादक : डॉ. नीलिमा सिंह हिन्दी पॉकेट बुक्स नई दिल्ली संस्करण 2008 पृ.सं. 57
6. उत्तर आधुनिकता और समकालीन कथा साहित्य : डॉ. लक्ष्मी गौतम लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज संस्करण 2022 पृ.सं. 150



भारत में नारीवादी आंदोलन का विकास

स्नेहा कुमारी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर मधेपुरा

शोध सारांश- नारीवादी आंदोलन का आरंभ 19वीं से 20वीं सदी में भारत में हुआ था। जब यहां महिलाओं के अधिकार और लैंगिक समानता की मांग को पूरे जोड़ो से उठाया और महिलाओं के लिए सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को स्थापित किया गया। 19वीं और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में जब विकसित देशों में नारीवादी आंदोलन का आगाज हुआ तब भारत एक औपनिवेशिक देश था। भारत के लिए यह समय स्वतंत्रता आंदोलन का था, क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश और औपनिवेशिक राष्ट्र था, 15 अगस्त 1947 में भारत की आजादी के बाद 1950 में भारत के संविधान में महिलाओं की शिक्षा और उनके अधिकारों को संविधान में जोड़ा गया। बाल विवाह और विधवा विवाह के निषेध से संबंधित कानून बनाए गए साथ ही महिलाओं के खिलाफ बढ़ते हिंसा से निपटने के लिए भी कानून बनाया गया। भारत एक अर्द्ध-पूंजीवादी और अर्द्ध सामंतवादी देश होने के नाते आज भी महिलाओं को वह समानता नहीं मिल पाई है, जिसका उल्लेख संविधान में उनके अधिकारों के लिए किया गया है। जिस तरह से पितृसत्ता ने स्त्रियों के लिए अलग मापदंड तय किया है। आज के समय में भ्रूण हत्या, बलात्कार और घरेलू हिंसा इतनी बढ़ गई है कि यह समाज की विकृति का रूप ले रही है। ये तभी कम होगा जब महिलाओं के साथ पुरुषों का सहयोग भी स्त्री विमर्श पर मुखर होकर उभरेगा।

परिचय

भारत में महिलाओं के आंदोलन के लिए 19वीं सदी काफी महत्वपूर्ण रही है, इस समय सामाजिक सुधारों के प्रयासों में महिला विषयों पर ध्यान केंद्रित किया गया जैसे की सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, बहु विवाह और बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों का सामना किया गया, इसे सामाजिक प्रगति में रुकावट मानते हुए बहुत से व्यक्ति और संस्थान इन्हें खत्म करने के लिए काम कर रहे हैं। राजा राममोहन राय उस समय में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे सती प्रथा जो समाज द्वारा स्वीकृति प्राप्त थी इसको मिटाना आसान नहीं था लेकिन उन लोगों के प्रयासों की वजह से सामाजिक बुराइयों को दूर करने में सफलता मिली, अगर विधवा महिलाएं सती नहीं होती तो समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ने लगती इसलिए ऐसी स्थिति में उनके पुनर्विवाह के लिए भी लोगों को समझाना पड़ा उन्हें हेय दृष्टि से देखना बंद करना होगा। इन सारी बातों को देखते हुए लगा कि महिलाओं को शिक्षित करना बहुत जरूरी है। इस वजह से महिलाओं की शिक्षा के लिए विद्यालय, महाविद्यालय छात्रावास खोले गए साथ ही विधवाओं के लिए आश्रम आदि की स्थापना की गई सामाजिक सुधार के नाम पर महिलाओं की बेहतर स्थिति के लिए प्रयास किया जा रहा है।

ब्रह्म समाज- ब्रह्म समाज 19वीं शताब्दी में भारत के प्रभावशाली सामाजिक- धार्मिक आंदोलन में से एक था जिसने आधुनिक भारत की नींव में महत्वपूर्ण योगदान दिया इसे राजा राममोहन राय द्वारा तत्कालीन प्रचलित कु प्रथाओं के खिलाफ 1828 में स्थापित किया गया यह बंगाल के पुनर्जागरण का समय है। हालांकि यह एक व्यापक कार्य था लेकिन ब्रह्म समाज

में महिलाओं के खिलाफ हो रहे उत्पीड़न को रोकने के लिए प्रयास किए। समाज में महिलाओं के प्रति कई प्रकार के पूर्वाग्रह थे और इन पूर्वाग्रह का आधार धर्म था। इसलिए बदलाव के लिए सामाजिक कट्टरता का सामना करना भी आवश्यक था बाल विवाह और बहु पत्नी विवाह के खिलाफ लोगों में जागरूकता फैलाना उसे समय की आवश्यकता थी जिसे ब्रह्म समाज ने किया, इसी क्रम में अंतरजातीय विवाह को बढ़ावा दिया गया और इसे लागू किया गया, जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक का असंतोष उत्पन्न हुआ। फल स्वरूप 1872 ईस्वी में सिविल मैरिज एक्ट पास हुआ जिसमें महिलाओं की विवाह की न्यूनतम आयु को बढ़ा दिया गया।

आर्य समाज- स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1875 में वेदों की ओर लौटो का नारा देकर आर्य समाज की स्थापना की। यह एक पूर्ण रूप से धार्मिक पुनर्जागरण आंदोलन था धार्मिक आंदोलन के रूप में आर्य समाज ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए, लेकिन महिलाओं के प्रति भी इसका दृष्टिकोण प्रगतिशील रहा।

महिलाओं के लिए शिक्षा की आवश्यकता को उन्होंने स्वीकार किया और उस समय महिलाओं के समान अधिकार के वकालत की। जिस समय महिलाएं अपने मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थीं उस समय समानता की बात करना एक बड़े परिवर्तन की ओर इशारा करता है। बाल विवाह के उन्मूलन के लिए भी उन्होंने प्रयास किए जिनमें कई महिला शिक्षा से संबंधित संस्थानों की स्थापना की।

मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में सुधार- जिस प्रकार के सामाजिक सुधार हिंदू धर्म में हो रहे थे ठीक उसी तरह उस समय इस्लाम में ऐसा नहीं हो रहा था। शिक्षा की कमी और अन्य धार्मिक समुदाय में प्रथा की स्थिति में सुधार के लिए काफी देर हो गई, फिर भी विभिन्न स्थानों पर मुस्लिम महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए आंदोलन के रूप में कई क्षेत्रों से नेतृत्व मिला भोपाल की बेगम सैयद अहमद खान का नाम भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। भोपाल की बेगम ने 2016 में अखिल भारतीय मुस्लिम महिला सम्मेलन की स्थापना की इसके माध्यम से मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं में सुधार की बात लगातार की जा रही थी 1917 ई. के सम्मेलन में जब बहुविवाह के उन्मूलन का प्रस्ताव रखा गया तो, कट्टरवादी मुस्लिम समुदाय के लोगों का गुस्सा भी सामने आया।

अन्य प्रयास- पंडिता रमाबाई बाल विधवा व विधवाओं की दयनीय स्थिति के प्रति लगातार आवाज़ उठाई उन्होंने 1881 में पुणे में महिला समाज की स्थापना की और महिलाओं की शिक्षा के लिए भी निरंतर प्रयास करती रही। अन्य जाति के वकील से विवाह करने के कारण उन्हें लगातार कट्टर पंथियों का सामना करना पड़ा। 1889 में विधवाओं के लिए शारदा सदन की स्थापना के बाद उन्होंने कृपा सदन नामक एक महिला आश्रम की स्थापना की। इसके साथ ही उन्होंने मुक्ति मिशन शुरू किया, जिसमें समाज द्वारा त्याग की गई महिलाओं और बच्चों को आश्रय दिया जाता है।

गांधी युग में महिलाओं की स्थिति में सुधार- गांधी के समय में महिला शिक्षित होना शुरू हो चुकी थी और उन्हें समाज और राजनीति के बारे में ज्ञान होने लगा था। ऐसे में यह कैसे संभव था कि वे राजनीति या नेतृत्व में अपनी उपस्थिति दर्ज न करती, गांधी के प्रभाव में कई महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभाई। महिला आंदोलन पर भी गांधी की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। महात्मा गांधी ने महिलाओं के समान अधिकारों पर जोर दिया और उन्हें पुरुषों के समकक्ष देखा। उन्होंने महिलाओं को उनके विशेष गुणों जैसे कि सहनशीलता और दुःख सहने की अद्वितीय क्षमता के कारण अहिंसक आंदोलन के लिए सबसे उपयुक्त माना। नेहरू भी महिलाओं के उत्थान के लिए एक प्रगतिशील विचारक के रूप में जाने जाते थे। उन्होंने केवल शिक्षा पर ही ध्यान नहीं दिया, बल्कि आर्थिक स्वतंत्रता के लिए भी आवाज़ उठाई, जिसे उन्होंने महिलाओं के उत्थान के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना, इसका परिणाम यह रहा कि स्वदेशी आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और शराब बेचने की दुकानों के खिलाफ धरनों में महिलाएं सबसे आगे रही।

स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की स्थिति में सुधार- भारत की आजादी के बाद ही महिलाओं को विवाह उत्तराधिकार और सुरक्षा के विस्तृत अधिकार प्राप्त हुए। इसका एक नकारात्मक परिणाम यह हुआ कि महिला संगठनों ने कुछ कमजोर महिलाओं के लिए जो कार्यक्रम बनाए वे उस समय इतने प्रभावित नहीं हो पाए कि वह दूर-दराज के गांव तक पहुंच सके।

वह काफी हद तक सड़कों तक ही सीमित रह गया ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए कस्तूरबा मेमोरियल ट्रस्ट और भारतीय ग्रामीण महिला संस्था के प्रयासों के बावजूद, आजादी के बाद लंबे समय तक महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए कोई ठोस उपाय देखने को नहीं मिला। वह काफी हद तक शहरों तक की सीमित रह गया ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए कस्तूरबा मेमोरियल ट्रस्ट और भारतीय ग्रामीण महिला संस्था के प्रयासों के बावजूद आजादी के बाद लंबे समय तक महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिए कोई ठोस उपाय देखने को नहीं मिला।

नवीन महिलाओं समूह द्वारा उठाए गए मुद्दे

महिलाओं के विरुद्ध की जाने वाली हिंसा समाप्त करने के लिए चलाए जाने वाला अभियान- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मथुरा के खिलाफ दिए गए फैसले के खिलाफ आयोजित अभियान से आंदोलन को गति मिली। मथुरा एक आदिवासी किशोरी थी। जिसका 1972 की एक रात महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले के पुलिस थाने में पुलिसकर्मियों ने सामूहिक बलात्कार किया था। सत्र न्यायालय, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में सहानुभूतिपूर्ण वकील वसुधा धगमवार द्वारा 8 साल तक कानूनी लड़ाई लड़ी जिसमें मथुरा ने अपनी प्रतिष्ठा सम्मान और आत्मसम्मान खो दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया कि पुलिस वालों ने मथुरा के साथ बलात्कार नहीं किया, इस पर वकील वसुधा धगमवार और उनके तीन सहयोगियों ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को चुनौती देते हुए खुला पत्र लिखा, जो तर्कसंगत दृष्टिकोण से विश्वसनीय शैली में लिखा गया, और यह पत्र अत्यंत मार्मिक था, अखबारों और पत्रिकाओं में इस पत्र को व्यापक रूप से प्रसारित किया गया इस मुद्दे से जुड़े दो मुख्य बिंदु थे एक तो यह की मृत्यु बलात्कार मामले को फिर से खोला जाए और दूसरा यह की बलात्कार से संबंधित संयुक्त राष्ट्र के कानून में संशोधन किया जाए, जिसमें न केवल बलात्कार को संकीर्णता से प्रभावित किया गया था, बल्कि सबूत पेश करने की जिम्मेदारी भी महिलाओं पर डाली गई थी। इन मांगों के लिए संघर्ष करने के लिए कई समूह बनाए गए, जिन्होंने हस्ताक्षर एकत्र करने के लिए याचिकाएं भेजी।

आरंभ में उन्होंने विशेष महिला मुद्दों पर ध्यान दिया, जैसे की पत्नी से दुर्व्यवहार, दहेज से जुड़ी हत्याएं, बलात्कार और छेड़छाड़ उन्होंने कामकाजी स्थलों पर महिला उत्पीड़न के खिलाफ नाटक और साहित्य का सृजन किया। राजतंत्र के लिए दुर्भावना के कारण आक्रमण गतिविधियों, सामाजिक बहिष्कारों, और उत्प्रेरकों का घेराव किया गया। दहेज के लिए शादी करने वाले घरों पर छापे जैसे उपायों का सहारा लिया गया। कार्यकर्ताओं ने आधुनिक परिवारों, विभिन्न धार्मिक समुदाय और जातीय संगठनों के आपसी शक्ति को समझा।

वैधानिक सुधार- पिछले 30 वर्षों में महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा के कानून अस्तित्व में आए हैं। भारत, परिवार न्यायालय अधिनियम 1984 को पारित करने वाला पहला देश था। घरेलू हिंसा में पीड़ित महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए महिला आंदोलन द्वारा डाले गए दबाव के परिणाम स्वरूप घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 लागू हुए। इस अधिनियम ने घरेलू हिंसा की परिभाषा को और व्यापक बना दिया है। अब इसके दायरे में महिलाओं और वरिष्ठ नागरिकों के खिलाफ हिंसा। घर के सदस्य द्वारा किया गया योनाचार और बलात्कार, तथा महिलाओं और लड़कियों को जबरन वेश्यावृत्ति में धकेलने वाले रिश्तेदार भी शामिल है। इस अधिनियम की विशेषताओं में निवास के अधिकार की मान्यता, प्रोटेक्शन ऑफिसर की नियुक्ति का प्रावधान सेवा, प्रदाताओं की मान्यता, प्रोटेक्शन ऑफिसर और न्यायाधीशों का प्रशिक्षण, जागरूकता निर्माण, कानून परामर्श और अन्य सहायता सेवाओं के लिए बजट का निर्धारण शामिल है। कानूनी सुधार महिला आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिकता रही है। महिला संगठनों ने बलात्कार कानून 1980 और दहेज निषेध अधिनियम 1961 में सुधार के लिए अभियान चलाए। घरेलू हिंसा से महिलाओं को बचाने के लिए 30 वर्षों के सतत आंदोलन के परिणाम स्वरूप 2005 का अधिनियम पारित हुआ। इसी तरह जन्म से पहले कन्या भ्रूण की हत्या के खिलाफ हुए संघर्ष ने पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (PCPNDT) अधिनियम 1994 को जन्म दिया, जिसके बाद में पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व अंत में चयन प्रतिबंध अधिनियम 2002 में संशोधित किया गया। 1997 के विशाखा निर्देशिका का स्थान

2013 में लिया गया।

मादक द्रव (ताड़ी/ शराब) के विरुद्ध आंदोलन

सातवें दशक के मध्य से देश के विभिन्न क्षेत्रों जैसे आंध्र प्रदेश, मणिपुर और महाराष्ट्र की आदिवासी महिलाएं शराब की बिक्री के खिलाफ संघर्ष कर रही हैं। इसका कारण यह है कि पुरुषों में नशाखोरी के कारण परिवार बर्बाद होते हैं और महिलाओं और बच्चों के खिलाफ घरेलू हिंसा होती है। आंध्र प्रदेश में 1992-93 के दौरान ताड़ीबंदी आंदोलन बहुत मजबूत था, जो उन राज्यों में विभिन्न स्तरों पर फैल गया।

आंध्र प्रदेश में 4000 से ज्यादा महिलाएं एकत्र होकर देसी शराब की नीलामी न होने देने के लिए महिला आंदोलन का ऐतिहासिक अध्याय लिख रही हैं। महाराष्ट्र में सुशासन के स्थानीय संस्थाओं और शहरी तथा ग्रामीण स्वशासन के निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों ने उन गांवों को शराब मुक्त घोषित करने के लिए राज सरकार के बाध्य किया, जहां की 50% से अधिक महिलाएं शराब की बिक्री और वितरण के खिलाफ ग्राम सभा की आम बैठक में हाथ उठाकर वोट दिया।

सांसद और विधान मंडलों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण के लिए चलाया जाने वाला अभियान

1990 के दशक के अंत से, भारतीय नारीवादी महिलाएं विधानसभा और संसद के दोनों सदनों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण के लिए संघर्ष कर रही हैं। महिला आरक्षण का प्रावधान है, कि एक दशक से अधिक समय से लंबित है माना जाता है कि पितृसत्तात्मक ताकते इसके पारित होने में बाधा डाल रही हैं जबकि इसके समर्थक जेंडर न्याय के सिद्धांत को अपने समर्थक का आधार मानते हैं, जो इसके विरोध में खड़े हैं। हालांकि इस विधेयक के समर्थक जेंडर न्याय के सिद्धांत का हवाला देते हैं उनके विरोधियों को पितृसत्तात्मक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनमें महिलाएं भी शामिल हैं। ये विरोधी उन जातियों से हैं जिन्हें यह चिंता है कि 33% सीटों की स्थाई आरक्षण का प्रस्ताव (जिस पर विवाद है) निम्न जाति के पुरुषों के स्थान को जाति की महिलाओं द्वारा भर सकता है। यदि एक तिहाई सीटों को तुरंत महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया जाए, तो यह उन महिलाओं के लिए होगा जिसके पास पहले से ही चुनाव लड़ने के लिए सांस्कृतिक और राजनीतिक संसाधन हैं। जो महिलाएं चुनाव लड़ने के लिए पहले से सांस्कृतिक और राजनीतिक पूंजी रखती हैं, वे निश्चित रूप से भारत जैसे सामाजिक और असमानता वाले देश में अभिजात वर्ग से हो सकते हैं। इस प्रकार, विधेयक के मौजूदा रूप के खिलाफ यह तर्क किया जा रहा है कि महिलाओं के आरक्षण में अन्य कमजोर समूहों को भी शामिल करना आवश्यक है। इस संदर्भ में, कोर्ट में कोटे की बात हो रही है, जिसके अनुसार इस 33 प्रतिशत आरक्षण में पिछड़ी जातियों और मुस्लिम महिलाओं के लिए स्थान होना चाहिए।

निष्कर्ष

भारत में महिलाओं के आंदोलन के लिए 19वीं सदी काफी महत्वपूर्ण रही है। इस समय सामाजिक सुधारों के प्रयासों में महिला विषयों पर विशेष ध्यान दिया। समाज में प्रचलित कुप्रथा को हटाने के लिए ब्रह्म समाज, और आर्य समाज की स्थापना की गई। पंडिता रमाबाई महात्मा गांधी के नेतृत्व में बहुत सारी महिलाओं को शिक्षित किया जाने लगा बहुत सारे आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी हुई। भारत में आजादी के बाद भी महिलाओं को विवाह उत्तराधिकार सुरक्षा प्राप्त हुई। नवीन महिला समूहों द्वारा बहुत सारे मुद्दे उठाए गये। महिलाओं के विरुद्ध की जाने वाली हिंसा को समाप्त करने के लिए बहुत सारे अभियान चलाया गया इसलिए कहा जा सकता है, कि महिला आंदोलन से भारत ही नहीं पूरे विश्व की महिलाओं को अपने अधिकार प्राप्त हुए हैं। महिलाओं ने अपने हर तरह के अधिकारों को जाना है, इस तरह से महिला आंदोलन महिलाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

संदर्भ सूची

- * Kaising, indra (2005)men's laws, women's lives. Delhi:kali for women.
- * Krishnaswamy, Reveati(1993)subversive spirituality :woman as saint - poet in medieval india, women's, volume 16, issue 2, March - April 1993, pages 139-147.
- * Menon, Ritu (2011)Making a Difference : Memoirs form the women's movement in india. Delhi:women unlimited.
- * Patel vibhuti (1985)women's Liberation in india. London:New Left Review, No 153 August 1985,pp. 75-86.
- * <https://www.drishtiias.com>



हिंदी दलित आत्मकथाएं और पितृसत्ता : एक अध्ययन

नीतू सरोज

शोध छात्रा, NFSC-JRF, ICSSR-JRF,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. आलोक प्रसाद

प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सार- जब हम हिंदी में लिखी गयी दलित पुरुषों की आत्मकथाओं में स्त्री के स्वरूप को देखते हैं, तो हमें यह देखने को मिलता है कि दलित पुरुषों की आत्मकथाओं में स्त्री जीवन के दुःख दर्द एवं पितृसत्ता के चुनौती के बीच स्त्रियां अपने को किस तरह रख पाती हैं, उसका चित्रण इस शोध पत्र में किया गया है। साथ ही हिंदी में प्रकाशित हुयी दलित महिला आत्मकथाओं में भी पितृसत्ता को किस रूप में दर्शाया गया है, उसे भी देखने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार हिंदी में दलितों द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में स्त्रियों को किस तरह पितृसत्तात्मक मानसिकता का शिकार होना पड़ा है, उसका वर्णन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

मुख्य शब्द- पितृसत्ता, दलित, आत्मकथाएं, पुरुष, दलित महिला।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को मात्र भोग की वस्तु समझा जाता है। वर्षों से समाज में स्त्री पर अनेकों अत्याचार हुए हैं। घर व घर के बाहर सब जगह स्त्री का शोषण होता आ रहा है। चाहे वह स्त्री सवर्ण हो या दलित दोनों का शोषण समाज द्वारा हुआ है। समाज में पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों को दोगुना दर्जा दिया गया है। स्त्री किसी भी वर्ग की हो पुरुषों द्वारा समाज में उसका शोषण होता ही है। स्त्री विमर्श की सशक्तता से अभिव्यक्ति करने वाली प्रसिद्ध लेखिका 'सिमोन द बोउवार' ने अपनी पुस्तक द सेकंड सेक्स में स्पष्ट किया है कि, "समाज में स्त्री को स्त्री बनाया जाता है, बचपन से उसे समाज में पारिवारिक परिवेश के अंतर्गत स्त्री की तरह जीना सिखाया जाता है।"¹

पितृसत्ता के अंतर्गत महिलाओं की तुलना में पुरुषों की केंद्रीय भूमिका अधिक होती है। तथा समाज में पुरुषों को अधिक अधिकार प्रदान करती है। और महिलाओं को निर्णय लेने का अधिकार बहुत कम होता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत समाज में महिला अपने पिता, पति या भाई के संरक्षण में अपना जीवन व्यतीत करती है तथा स्त्री हर प्रकार से किसी न किसी पुरुष के अधीन रहती है। पितृसत्ता को समाज में स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता के निर्धारक के रूप में देखा जा सकता है।

हिंदी की अनेक दलित आत्मकथाएं वर्तमान में हमारे सामने प्रस्तुत हो चुकी हैं। इस शोध पत्र में हम जिन दलित आत्मकथाओं की बात करने वाले हैं, उन आत्मकथाओं का कालखंड 1990 के बाद का है, किंतु इन आत्मकथाओं में पितृसत्ता की जकड़ किस तरह हमारे समाज में व्याप्त है, इसका चित्रण बखूबी से इन आत्मकथाओं में देखने को मिलता है।

हिंदी में लिखी गई मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा अपने-अपने पिंजरे में लेखक ने पितृसत्ता की जकड़ किस तरह स्त्रियों को जकड़ कर रखती है और किस तरह अपनी सत्ता कायम करती है इसका चित्रण अपनी आत्मकथा में किया है। लेखक अपनी आत्मकथा के प्रारंभ में पितृसत्ता को कुछ इस तरह दिखाया है "हमारी जात की औरतों को उनके द्वारा बार-बार

जलील होना पड़ता था, कभी-कभी वह ऐसा भी सोचते थे कि हम उनके रहमो करम पर जिंदा है।”² यहां लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि किस तरह सवर्ण समाज के लोग दलित औरतों को गंदी नजर से देखते व सोचते हैं। आगे ‘मोहनदास’ लिखते हैं कि, “मेरठ के कसाइयों के बारे में यह मशहूर था कि जिस तरह से वे जानवरों को नंगा कर काटते पीटते थे वैसे ही अपनी घरवालिओं को भी नंगा कर मारते पीटते थे। छुरे चाकू से भले ही उनकी खात न काट-पीट डालें, पर तेल-लगी लाठियों से उनके नंगे बदन पर वार जरूर करते थे। जानवर और औरतों में इनके लिए कोई फर्क न था। एक को काटते थे दूसरे को पीटते थे।”³ मोहनदास बताते हैं कि दलित स्त्रियों को किस तरह दोहरा शोषण झेलना पड़ता है, “दलित समाज में महिलाओं को सरेआम नंगा किया जाता था, बोले भी कौन इधर से कोई बोलेगा उधर से गोलियां चलेगी। पुलिस और न्याय व्यवस्था में सवर्ण ही अधिक संख्या में होते थे, इसलिए निर्णय नहीं मिलता था।”⁴ औरतों के खानपान के बारे में वे बताते हैं कि औरतें हमेशा मर्दों के बाद ही खाने के लिए बैठती थी। कभी-कभी खाना कम पड़ जाता था, फिर उन्हें आधे पेट ही पंगत से उठना पड़ता था।⁵

पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों के अंदर खासकर सवर्ण स्त्रियों के अंदर यह सोच स्थापित कर दी है कि सवर्ण स्त्रियां भी दलित स्त्रियों से घृणा करती हैं। यह उनकी गलती नहीं है, अपितु पितृसत्ता उन पर हावी है, जिसके कारण दलित स्त्रियों से वे भेदभाव करती हैं। इसका एक झलक मोहनदास कुछ इन शब्दों में व्यक्त करते हैं। “सवर्ण जाति की औरतें गुजरते हुए अक्सर नाक-मुहें सिकोड़तीं। वे नाक पर कभी-कभी रूमाल भी रख लेतीं। रूमाल न होने पर साड़िया या धोती के टुकड़े का बखूबी प्रयोग करती। बुरके वालियों को न रूमाल की जरूरत पड़ती और न ही साड़ियां, धोती की। उनका समूचा जिस्म ही ढका होता था। बदबू का कोई भी झोंका उनकी नाक को शायद ही छू पाता हो।”⁶ यह बात सही है कि दलित स्त्री को एक दलित होने का दूसरा स्त्री होने का दंश झेलना पड़ता है। वह अपने परिवार में पितृसत्ता का शिकार होती है और साथ ही सवर्ण समाज के लोगों से भी इनको शिकार होना पड़ता है।

इसी तरह ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन में भी कुछ प्रसंग पितृसत्ता को दर्शाते हैं। इस आत्मकथा में एक दो प्रसंग ही ऐसे हैं जो स्त्री पर होने वाले शोषण को उजागर करते हैं। जब ओमप्रकाश वाल्मीकि की माँ अपने परिवार के पालन पोषण एवं पेट भरने के लिये खाना अथवा जूठन उठाने सुखदेव तगा के यहाँ जाती है। उस समय सुखदेव किस तरह ऊँची आवाज में बोलता है, इसका जिक्र कुछ इन शब्दों में किया है। “चौधरी जी ईब तो सब खाणा खा के चले गए म्हारे जाकतों कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो भी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते” सुखदेव सिंह त्यागी ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा, “टोकरा भर तो जूठन ले जा री है- ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।”⁷ इस तरह के शब्दों का प्रयोग उच्च जाति के लोग दलित स्त्रियों के प्रति अपनाते थे। लेकिन इस घटना का विरोध लेखक की माँ करती है। और उसके बाद कभी जूठन उठाने नहीं गयी।

इसी तरह ‘कौशल्या बैसंत्री’ ने दोहरा अभिशाप में लिखा है कि- मां हमेशा बाल धोते वक्त बड़बड़ाती रहती थी- “देवा मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था कि मेरे नसीब में लड़कियां ही लिखी हैं?”⁸ इसके पीछे समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता है, वो यह है कि लड़कियां तो पराया धन होती हैं, जो समय आने पर अपने ससुराल चली जाएंगी। इस तरह की मानसिकता सिर्फ कौशल्या के घर की नहीं थी अपितु यह पूरे दलित समाज की थी।

इसी तरह ‘कौशल्या बैसंत्री’ अपने पति के बारे में बताती हैं कि- “मेरी और देवेंद्र कुमार की नहीं बनी। देवेंद्र कुमार सिर्फ अपने ही घर में रहने वाला आदमी है। गर्म मिजाज और जिद्दी। अपने मुंह से कहता है कि मैं बहुत शैतान आदमी हूं। उसने मेरी इच्छा और भावना की कभी कद्र नहीं की।”⁹ इससे एक बात तो स्पष्ट है कि दलित महिलाओं को न सिर्फ बाहरी समाज से पित्रसत्ता का सामना करना पड़ता है बल्कि उन्हें घर के भीतर मौजूद पित्रसत्तात्मक व्यवस्था से भी होकर गुजरना पड़ता है, और यह हाल लगभग पूरे दलित समाज में देखने को मिलता है।

माता प्रसाद की आत्मकथा झोपड़ी से राजभवन में स्त्रियों के प्रति किस तरह पितृसत्तात्मक सोच वाले व्यक्ति उनका

शोषण करते हैं, उन्हें दबाकर रखते हैं इसका चित्रण उन्होंने बखूबी किया है। वे लिखते हैं कि, “दलित जाति की फुलवा नामक एक लड़की जो ठाकुर के यहाँ अपनी माँ और भाई के साथ रह रही थी, उसको अकेला पाकर उसी गाँव के एक सत्येन्द्र सिंह पुत्र इन्द्रनाथ सिंह ने पकड़ लिया। वो अरहर के खेत में उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास करने लगा। उसकी शादी हुई थी, गौना नहीं गया था। वह चिल्लाने लगी। उसकी आवाज सुनकर उसका भाई राजाराम आया और उसकी लाठियों से से पिटाई शुरू कर दी।”¹⁰ इससे यह देखने को मिलता है कि दलित समाज की स्त्रियाँ घर के बाहर भी सुरक्षित नहीं हैं, पित्रसत्तात्मक सोच वाला यह समाज हर वक्त उन पर निगाह लगाये बैठा रहता है और मौका मिलते ही उन पर टूट पड़ता है।

जैसे-जैसे हम आत्मकथा को पढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे इन आत्मकथाओं में पितृसत्ता की जकड़ में कसी स्त्रियों का चित्रण दिखता जाता है। रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा नागफनी में इसका एक प्रसंग इस प्रकार है, इंद्रजीत नामक ठाकुर जो दलित स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाता था, जब उसकी गंदी हरकतों का पता चला तो दलित समाज के पुरुषों ने उसकी पिटाई कर दी। वह कुछ दिन तक तो चुप रहा लेकिन बाद में फिर वही हरकतें चालू कर दिया। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं, “कि अब वह दलित लड़कियों और औरतों को छोड़कर तेलियों की युवा औरतों और लड़कियों की ओर बुरी नजर से देखने लगा था। इस घटना के बाद उसने और कई लड़कों को अपनी टोली में शामिल कर लिया था। वह अब जबरन दलितों के घर में घुस कर रात्रि के समय उनकी औरतों के साथ बलात्कार करता था।”¹¹ इस तरह के एक नहीं अपितु अनेक प्रसंग हमें दलित आत्मकथाओं में देखने को मिलते हैं।

गांव के मुखिया किस तरह गरीब एवं निम्न जाति की लड़कियों को बुरी नजर से देखते हैं, उसका चित्रण माता प्रसाद ने अपनी आत्मकथा झोपड़ी से राजभवन में कुछ इस प्रकार किया है। “यही के मुखिया गांव की गरीब जाति की युवा लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिए दिल्ली या दूसरे शहरों में भेजने में मदद करते हैं। इसके बदले उन्हें कुछ रुपए मिलते हैं। जिंदगी की तड़क भड़क में लड़कियां उधर खिंची चली जाती हैं।”¹² यहाँ लेखन ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस तरह दलित समाज कि लड़कियां पित्रसत्तात्मक मानसिकता का शिकार होती हैं।

सूरजपाल चौहान की आत्मकथा संतप्त एवं तिरस्कृत जो कि दो भागों में है इस आत्मकथा में पितृसत्ता को उजागर करते हुए बहुत कम प्रसंग दिखलाई पड़ते हैं। सिर्फ एक जगह ही इसका जिक्र किया गया है वह भी सवर्ण पुरुषों के बारे में बताया गया है कि वह कैसे दलित स्त्री पर शिकंजा रखता है। यह बात सोचने पर विवश करती है कि क्या दलित पुरुष उस समय अपनी स्त्रियों पर अत्याचार नहीं करते थे? क्या वे समाज में दलित स्त्रियों पर कोई शोषण नहीं करते थे। सवर्ण समाज द्वारा किए जा रहे अत्याचार का एक प्रसंग उनकी आत्मकथा में कुछ इस प्रकार है। एक दिन इनकी मां बीमार हो जाने के कारण सवर्णों के घर साफ सफाई का कार्य करने नहीं जा पाती है। इसलिए ठाकुर प्रताप नामक व्यक्ति उनके मोहल्ले में आकर जोर-जोर से उनकी मां को चिल्लाता है और गालियां भी देता है, “साली भंगिनियां चार दिन से काम पर नहीं आई, हमारे घर के सामने कूड़े को ढेर लगी पड़ी है।”¹³

प्रो. तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया व मणिकर्णिका बहुत ही मार्मिक आत्मकथा के रूप में हमारे सामने आती है इस आत्मकथा में लेखक ने अपने माध्यम से दलित समाज के हर स्थिति को उजागर किया है तथा स्त्री जीवन के प्रत्येक पहलू पर भी उन्होंने अपनी बात रखी है। जब बात पितृसत्ता की आती है तो लेखक ने यह दर्शाया है कि पुरुष चाहे दलित हो या सवर्ण आखिर वह पुरुष होता है। एक प्रसंग के माध्यम से पितृसत्ता को इस तरह व्यक्त करते हुए कहते हैं कि, “बगल के परसूपुर नामक गाँव में एक विधवा युवती अपने मामा के घर आई थी। वह ब्राह्मणी भी थी। हमारे गाँव के कुछ युवा ब्राह्मणों को एक खुरापात सूझी कि उस विधवा ब्राह्मणी का अपहरण करके मिरंदगी से जबरन विवाह करवा दे। इसके लिए 20 ब्राह्मण युवक दिन के दस बजे ही लाठी-भाले लेकर परसूपुर जाकर उस औरत को जबरन उठाकर गाँव में ले आये।”¹⁴ आगे लेखक अपने पिता द्वारा अपनी माँ पर किये गये शोषण को बताते हैं कि “मेरी माँ बस्ती के किसी भी व्यक्ति से बात करती, पिताजी तुरन्त उसके चरित्र पर उंगली उठाना शुरू कर देते थे। वे माँ को बहुत भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगते थे। उनकी गालियों से

पता चलता है कि मेरे नाना का नाम सरजू था। वे हमेशा गाली में, सरजूवा की बेटी, का इस्तेमाल करते थे। माँ के चरित्र की शिकायत वे उसी गुस्सेल नग्न चाचा से भी करते थे।”¹⁵ यहाँ लेखक ने न सिर्फ दलित समाज में व्याप्त पित्रसत्तात्मक व्यवस्था का चित्रण किया है, अपितु गैर दलित समाज में व्याप्त पित्रसत्तात्मक व्यवस्था का भी वर्णन किया है और सबसे बड़ी बात ये कि उन्होंने अपने माता-पिता के माध्यम से दलित समाज में मौजूद पित्रसत्तात्मक व्यवस्था का बखूबी वर्णन किया है।

डॉ. श्योराज सिंह बेचैन की आत्मकथा मेरा बचपन मेरे कंधों पर बेहद सटीक एवं दलित समाज की दशा और दिशा को दर्शाने वाली आत्मकथा है। इस आत्मकथा में जहाँ एक ओर दलित वर्ग की परिस्थितियों और समस्याओं को दर्शाया गया है, तो वहीं दूसरी ओर दलित समाज की स्त्रियों की दशा का चित्रण भी बखूबी किया गया है। इस आत्मकथा में पितृसत्ता किस तरह स्त्रियों पर हावी है, उसका वर्णन बहुत अच्छे से किया गया है। इसमें लेखक ने अपने दूसरे पिता भिखारी दास के बारे में बताते हैं कि वह व्यक्ति किस तरह उनकी माँ पर जुर्म करता था। सारे कार्य करने को बावजूद भी वह उसे गालियाँ देता व उनकी पिटाई करता, किंतु इनकी माँ कुछ नहीं बोलती भिखारी से पहले एक पति और था उनकी माँ का, जिसका नाम रामलाल था जब उनकी माँ उसके साथ जाने से मना करती तो पितृसत्तात्मक मानसिकता वाले लोग उन्हें कहते “विधवा क्या हुई दो-दो खसमों के संग रहने के मजे ले रही है चमरिया जो ठहरी।”¹⁶ यहाँ एक सवाल यह उठता है कि यदि किसी स्त्री ने अपने बच्चों के पालन पोषण के लिए दूसरी शादी कर ली तो क्या जुर्म किया। एक स्त्री ऐसा करती है तो उसे इस तरह बोला जाता है, लेकिन कोई पुरुष करता है तो उसे क्यों नहीं?

इसी प्रकार ‘सुशीला टाकभौरे’ ने अपनी आत्मकथा शिकंजे का दर्द में लिखा है कि- “पिताजी, माँ और नानी हमें प्रदेश की चिड़िया मानकर प्यार करते... उन्हें हमेशा संशय रहता था, एक दिन यह चिड़िया प्रदेश चली जाएगी। पता नहीं इसका आगे का जीवन कैसा होगा? ससुराल में सुख मिलेगा या दुख? उनकी यह भावना देखकर मुझे महसूस होता था, वे हमें प्यार नहीं करते, हमारे लिए दया और सहानुभूति रखते हैं। हमें पराई चीज समझते हैं अपना नहीं समझते।”¹⁷ इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार में किस प्रकार लड़के व लड़कियों के बीच भेदभाव होता था। जहाँ लड़कियों को बचपन से ही यह आभाष कराया जाता है कि वे पराया धन है। यह एक प्रकार से पितृसत्तात्मक मानसिकता का द्योतक है।

भारतीय समाज में पति को पत्नी से कुछ भी करवाने का जैसे जन्मसिद्ध अधिकार मिल जाता है। इस पुरुष प्रधान समाज की आलोचना करती हुई ‘सुशीला टाकभौरे’ ने लिखा है कि- “स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी-कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर आगे बढ़ा देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथ से इशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर जूते उतारती मोजे उतारती। यह बात मुझे अजीब लगती थी। पति होने के अधिकारों के तहत वे वैसा करते थे।”¹⁸ यदि लेखिका के पति किसी बात पर नाराज होते तो कहते, “मेरे पैरों पर अपना सिर रखकर माफी मांग तब मैं तेरी बात मानूंगा।”¹⁹ यहाँ भी हमें घर के अन्दर मौजूद पितृसत्तात्मक व्यवस्था दिखाई पड़ती है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी दलित आत्मकथाओं में न सिर्फ दलित समाज बल्कि गैर दलित समाज में मौजूद पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्णन बखूबी किया गया है। यहाँ हमें दलित समाज के साथ-साथ गैर दलित समाज में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था देखने को मिलती है और सबसे बड़ी बात ये कि दलित आत्मकथारों ने अपने घर में मौजूद पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्णन भी बड़ी ही बेबाकी से किया है। यह उन विद्वानों के सवालों का करारा जवाब है, जो यह मानते हैं कि दलित समाज की महिलाओं को पित्रसत्ता का सामना नहीं करना पड़ता है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि जब हम हिंदी दलित आत्मकथाओं का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि दलित समाज की महिलाओं को भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सामना करना पड़ता है।

सन्दर्भ स्रोत

1. देशपांडे, डॉ. वैशाली, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन कानपुर, 2015, पृ. 274.
2. नैमिशराय, मोहनदास, अपने-अपने पिंजरे, भाग-1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 18.
3. वही, पृ. 21.
4. वही, पृ. 53.
5. वही, पृ. 109.
6. वही, पृ. 35.
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 21.
8. बैसंत्री, कौशल्या, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृ. 11.
9. वही, पृ. 104.
10. प्रसाद, माता, झोपड़ी से राजभवन, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 172.
11. सोनकर, रूपनारायण, नागफनी, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशर्स, शाहदरा, दिल्ली, 2011, पृ. 71.
12. प्रसाद, माता, झोपड़ी से राजभवन, पृ. 116.
13. चौहान, सूरजपाल, संतप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 35.
14. राम, डॉ. तुलसी, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 80.
15. वही, पृ. 125.
16. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 51.
17. टाकभौरे, सुशीला, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 143.
18. वही, पृ. 143.
19. वही, पृ. 144.



अरुणाचली समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्ष (अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

ताबा याना

शोधार्थी, हिन्दी विभाग मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजोल

मोबाइल नं.7085863647

ईमेल-aanejaai36@gmail.com

प्रो. संजय कुमार

(शोध निर्देशक)

हिन्दी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय,

आइजोल, मिज़ोरम-796004

“भारत के सुदूर उत्तर-पूर्व में अवस्थित अरुणाचल प्रदेश को उगते हुए सूर्य की भूमि कहा जाता है। इसके पश्चिम में भुटान और तिब्बत, उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में चीन, पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व में म्यांमार तथा दक्षिण में असम की ब्रह्मपुत्र घाटी स्थित है। पहले यह उत्तर-पूर्व सीमांत एजेंसी अर्थात् नेफा के नाम से विख्यात था। 21 जनवरी 1972 को इसे केंद्रशासित प्रदेश बनाया गया। इसके बाद 20 फरवरी 1987 को इसे पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। इसका क्षेत्रफल 83, 743 वर्ग किमी है।”¹

अरुणाचल प्रदेश की जन-जातियाँ हैं -न्यिशी, आदी, गालो, आपातानी, तागीन, मोन्पा, शेस्तुकपेन, तंगसा, नोकते, वांगचो, खाम्ती, सिंहफो, मिसमी, आका, खांबा, लिसू, मेम्बा, बुगुन, पुरोइक, मीजी आदि।

अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित हिन्दी उपन्यास कम ही दिखाई देते हैं; लेकिन फिर भी कुछ उपन्यास प्रकाशित हैं। जिनमें मात्सुर जामोह(2015), उस रात की सुबह (2018), सियांग के उस पर (2018), जंगली फूल(2019), मिनाम(2020), मेरी आवाज सुनो(2021) आदि। 21 वीं सदी में अरुणाचल प्रदेश पर हिन्दी उपन्यास लेखन का कार्य आरंभ हुआ ही है। आशा है कि भविष्य में यह कार्य और अधिक प्रगति।

उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसका केनवास विस्तृत होता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 में उ उपन्यास शब्द उप और न्यास के योग से बना माना है। जिसका अर्थ होता है मनुष्य का निकट वस्तु या कृति। “उपन्यास शब्द उप=समीप तथा न्यास=थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति, जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है।”²

वही गोपाल राय उपन्यास के सम्बन्ध में लिखते हैं कि “उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्यकथा है, जो पाठक को एक काल्पनिक, पर यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है।”³

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अरुणाचली समाज, संस्कृति के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। उपन्यासकारों ने सामाजिक पक्षों को बताते हुए इसको कई बिन्दुओं में विभाजित किया है। जिनमें सहानुभूति, सद्भावना, अथिति सत्कार भाव, स्त्री शोषण, शिक्षा का समस्या, पिछड़ापन और प्रेम संबंध को दिखाया है।

अरुणाचल केंद्रित हिंदी उपन्यासों के सामाजिक अध्ययन में हम पाते हैं कि अरुणाचल के लोगों में एक दूसरे के

प्रति सहानुभूति का भाव कूट-कूटकर भरा है, यहाँ के समाज में एक जनजाति दूसरी जनजाति की सदैव मदद करती है। इन जन जातियों में भाईचारे का भाव देखने को मिलता है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में दो अलग-अलग जनजाति के लोगों को एक दूसरे से मिलकर और एक दूसरे की मदद करते हुए दिखाया है -“एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों के साथ भावों का आदान-प्रदान करने लगे हैं, ...दो अजनबी जनजातियों के लोगों के बीच इसी तरह सद् भाव पैदा हो-”⁴

अरुणाचली लोग एक दूसरे की सहायता से अपना जीवन गुजार करते हैं। ऐसा ही मिनाम उपन्यास में भी दिखाए देता है। जहाँ गाँव की महिलाएं खेतों में एक दूसरे की खूब मदद करती हैं साथ ही हँसी-मजाक भी करती हैं। उपन्यासकर लिखते हैं कि “गाँव की महिलाओं में एक बहुत ही अच्छी बात यह देखि गई कि वे एक-दूसरे की काफी मदद करती हैं। ‘रिंगे एनाम’ के तहत वे सब मिलकर आज एक के खेत में तो कल दूसरे के खेत में काम करती हैं। इस प्रकार वे हँसी-मजाक भी करती रहती हैं और खेती का कार्य आराम से हो जाता है।”⁵

अरुणाचली समाज के अतिथि सत्कार का उल्लेख करते हुए मिनाम उपन्यास में उपन्यासकर कहता है कि गालो जनजाति मेहमान नवाजी में सबसे से आगे है। “गालो जनजाति के लोग अपनी मिलनसार व्यक्तित्व, साफ-सफाई, स्वाष्टि स्थानीय व्यंजन, मेहमान नवाजी आदि के लिए जाने जाते हैं। ‘अतिथि देवो भवः’ वाक्य को सार्थक करने वाले, उनका अतिथि सत्कार काफी सराहनीय है।”⁶

ऐसा ही ‘सियांग के उस पार’ उपन्यास में भी दिखाया गया है जहाँ गाँव वाले विक्रम और निसमी का स्वागत करते हुए दिखाई देते हैं। जहाँ निसमी और विक्रम रात को ठहरते वहाँ के गाँव वाले दोनों को भोजन और अपोंग पिलाते हैं। इस पर उपन्यासकार लिखता है कि “चर्चा के साथ-साथ उन्होंने उनके लिए भोजन कि भी तैयारी शुरू कर दी और पानी और अपोंग भी पेश किया। लंबे सफर की थकावट के पश्चात विक्रम को अपोंग अच्छी लगी।”⁷

अरुणाचली समाज में स्त्री शोषण के शारीरिक और मानसिक शोषण का उल्लेख उपन्यासों में किया गया है। मिनाम उपन्यास में स्त्री की शोषण को दिखाया है। जहाँ उपन्यासकार यामी पात्र के माध्यम से बताता है कि अरुणाचल प्रदेश में स्त्रियाँ भोग का वस्तु, घर सम्भालने वाली, बच्चा पैदा करनेवाली, खेती करने वाली तथा जंगल से लकड़ी लाने के लिए ही हैं-“यहाँ रहते कुछ दिन ही हुए पर यामी ने देखा कि यहाँ स्त्रियाँ बस भोग की वस्तु हैं। वे घर सम्भालने वाली। बच्चे पैदा करने वाली, खेतों में काम करने वाली, जंगल से लकड़ियाँ इकट्ठे करने वाली के अलावा और कुछ नहीं थी।”⁸

इन उपन्यासों में अरुणाचली समाज के सांस्कृतिक पक्षों को भी उजागर किया गया है। जिनमें अरुणाचल प्रदेश का धर्म, व्यंजन, त्योहार, वेश-भूषा, लोक नृत्य आदि हैं।

यहाँ का दोन्यि पोलो धर्म, अरुणाचल वासी दोनी पोलो(सूर्य और चन्द्र) धर्म को मानते हैं तथा प्रकृति के उपासक को है। मिनाम उपन्यास में दोनी पोलो धर्म के लिए कहा गया है कि “वे सूर्य व चंद्रमा के उपासक हैं। जिसे वे दोजी अर्थात् सूर्य और पोलो अर्थात् चंद्रमा। दोजी आने अर्थात् माता, पोलो आबो अर्थात् पिता। प्रकृति के सम्पर्क में रहने के कारण कई इलाज तो जड़ी-बुटियों से करते हैं, काटने से जब खून बहता है तो, ई रोगो, जाम्लि जैसी पत्तियों को पीसकर लगाया जाता जिससे खून निकालना बंद हो जाता है, घाव जल्द भर जाता है।”⁹

न्यिशो जनजाति भी सूर्य को माता और चन्द्रमा को पिता के रूप में मानते हैं। वही तानी समुदाय का उल्लेख करते हुए उपन्यासकर ‘जंगली फूल’ में लिखता है कि “माता सूर्य को साक्षी मानकर दोरिंग चिजिंग ने अपनी चार पुजारिन सखियों के साथ मन्त्रोच्चारण किया। सारी दिशाओं और सारे चार-अक्षर से उनके लिए आशीर्वाद माँगे गए।”¹⁰

‘सियांग के उस पार’ उपन्यास में भी दोनी पोलो धर्म को देवी देवता, सूर्य-चंद्रमा के उपासक दिखाए गए हैं इस सम्बन्ध में लेखक लिखते हैं कि “इस जनजाति का धर्म ‘दोनी-पोलो’ अर्थात् सूर्य और चंद्र पर केन्द्रित है, ये मानते हैं की ‘दोनी-पोलो’ संसार की आँख है और वे हर भले और बुरे को देखती हैं।”¹¹

अरुणाचल प्रदेश में दोन्यि पोलो धर्म के अलावा भी अन्य धर्म मानने वाले लोग भी हैं। जिसमें जड़ाम्बवाद धर्म, हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म आदि हैं।

अरुणाचल प्रदेश के समाज में स्वादिष्ट भोजन का उल्लेख किया है। 'भौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में मक्का से बना मदिरा को लाऊपानी नाम बताते हुए कहता है "नहीं बाबू। चावल का नहीं, मकई का लाऊपानी है।" ...जनजातीय लोगों के घरों में जाने पर वे लोग इसी तरह मदिरा ही पेश करते हैं, इसके साथ भूनी हुई मछली या गोश्त भी देते हैं।"¹²

मिनाम उपन्यास में भी जनजातीय खानपान को लेकर बताया है कि अरुणाचली लोग अपनी घरों में माँस मछलियों को सुखा कर साक-सब्जी में डालकर पक्का कर खाते हैं साथ ही बाँस को भी सुखा कर सब्जी में डालकर उबालकर खाया जाता है। इसके अतिरिक्त पुजा में बलि देने वाले पशु को भी पका कर खाते हैं- "पुजा में दी जानेवाली पशुओं की बलि से माँस भी खाया जाता है। माँस व मछलियों को चूल्हे के ऊपर सुखाया जाता है और उसे सब्जी में थोड़ा-थोड़ा डाला जाता है। बाँस इनके जीवन का अभिन्न अंग है।"¹³

अरुणाचल के त्योहारों का उल्लेख करते हुए 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में उपन्यासकर लोसर और टोरगा उत्सव के बारे में बताता है कि टोरगा उत्सव में पाकू नृत्य और मुखौटा नृत्य को किया जाता है। लोसर पर्व में गाँव वाले एक साथ मिलकर एक-दूसरे का सम्मान करते हैं, एक-दूसरे से प्रेम बाँटते हैं, समूह में मिलकर खापसे, आराक, याक का घी, थुकपा आदि खाते हैं। लोसर उत्सव 15 से 30 दिनों तक चलने वाला आनंद का उत्सव है- "15-30 दिनों तक चलने वाला आनन्दोत्सव। गाँव-गाँव, घर-घर में आयोजित होने वाला लोसर महोत्सव। लोसर के समय खाने के लिए लोग साल भर तक सँजोकर रखा गया लजीज खाद्य पदार्थ बाहर निकालेंगे, याक के घी के साथ विभिन्न स्वादिष्ट खापसे तैयार करेंगे इससे सदस्य एक का सूखा गोश्त, विभिन्न शस्य देकर पकाया गया स्वादिष्ट थुकपा खायेंगे, घी में अंडा देकर गरम की गई आराक पीयेंगे, दिन भर तरह-तरह की चीजें खाते रहेंगे।"¹⁴

'उस रात की सुबह' उपन्यास में भी न्योकुम त्योहार का जिक्र मिलता है- "वह न्योकुम त्योहार में पोमो गाले और उस पर तासेंग तादोक अर्थात् परम्परिक आभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी सखियों के साथ न्योकुम लापांग यानि कि त्योहार-स्थल कि ओर निकल पड़ती थीं तो बस मनचलों के दिलों पर मानो सैकड़ों बिजलियाँ गिराती थी।"¹⁵

मिनाम उपन्यास में भी अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों के पर्व का उल्लेख करते हुए गालो जनजाति का एकमात्र त्योहार मोपिन को बताया है। उपन्यासकर आगे बताता है कि यह त्योहार मानव कल्याण और खेती की अच्छी फसल के लिए मनाया जाता है। इस पर उपन्यासकर लिखती है कि "मोपिन" गालो जनजाति का एकमात्र त्योहार है। जहाँ यह मानव कल्याण, अच्छी फसल तथा शुख- समृद्धि एवं एकता के लिए प्रत्येक वर्ष अप्रैल और मई महीने में मनाया जाता है। पूरे क्षेत्र में भावी रूप में मनाया जाता है। मोपिन आने या आजी पिंकू-पिन्ते गालो समुदाय के लिए अन्न कि देवी मानी जाती है। प्राचीन कल में मोपिन आने ने हमारे पूर्वज आबो तानी को खेती करना सिखाया था।... मोपिन लोगों को एक-दूसरे के बेहद करीब लाती है, यही एकता का प्रतीक बन जाता है। इस त्योहार में 'इति', 'ताके (अदरक) और 'पोका' का विशेष महत्व है।"¹⁶

आर्थिक पक्ष रू- अरुणाचल प्रदेश व्यवसाय के रूप में खेती, पशुपालन आदि का उल्लेख किया गया है। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार लिखते हैं कि अरुणाचल प्रदेश के जनजाति दो तरह की खेती करते हैं। अपने जीवन यापन के लिए पहली झूम खेती तथा दूसरी पानी खेती। इन्ही दो प्रकार के खेतों से निकले हुए अनाज, धान, मारबा, मक्काई, संगतरा, केला, अनारश, कीवी, अमरूद, लीची, कोरदोई आदि से इनका जीवन गुजारता है। झूम खेती में जंगल की कटाई करते हैं फिर बुनाई कर बीजों को लगाते हैं। जिसमें धान, मककाई, मारबा, साक-सब्जी, पल-मोल को भी उगाते हैं। 'उस रात की सुबह' उपन्यास में यापी की बुआ को खेती करने में महारत हासिल थी है इसलिए उसकी तारीफ़ गाँव-गाँव में गुजती है- "खेती बड़ी के काम में एकदम प्रवीण, वह खेती की बुआई हो या कटाई का मौसम उनकी ही कारण गाँव के खेतों में एकदम रौनक छाई रहती, या यों कहिए की याका के ही कारण खेतों में धान की बुआई और कटाई के मौसम में एकदम उत्सव का सा माहौल होता था।"¹⁷

'मातमुर जामोह' उपन्यास में भी खेती का उल्लेख किया गया है- "वर्षों से नहीं उजड़े उन जंगलों के विशाल वृक्षों को गिराने, खण्डों में बाँटकर सूख जाने पर आग लगाकर फिर उसे साफ करने, उसे खेती के योग्य तैयार करने में कितनी सावधानी

बरतनी होंगी। उन फसलों को किसान-मजदूरों ने अपना खून-पसीना एक कर सींचा था।”¹⁸

अरुणाचली समाज में पशु पालन भी एक मुख्य व्यवसाय है। इसका उदाहरण सोनाम उपन्यास में मिलता है। ब्रोकपा समाज में पशु पालन का व्यवसाय चलता है। अपने जीवन यापन के लिए लबजाँग का परिवार सदियों से पशु पालन व्यवसाय को अपनाते हुए है- “उस तीव्र प्रकाश में पशु-पालक समाज (जिसे ब्रोकपा नाम से जाना जाता है) के एक हट्टे-कट्टे, यौवन-मद से मदमाते, स्फूर्तिवान् युवक की देह दमक उठी।...साथ में छह याक बैल, यानी चाँवरी गायों को भी हाँकता लिये आ रहा है।”¹⁹

पशुपालन अरुणाचली जनजातिय समाज का कई पीढ़ियों से चला आ रहा खानदानी व्यवसाय है- “जीविका-निर्वाह के साधन रूप में इस नवयुवक लबजाँग का खानदानी व्यवसाय है पशु-पालन। ब्रोकपा यानी पशु पालक लबजाँग के अपने घर के सदस्यों की बात करें तो बस दो ही हैं...”²⁰

अतः हम निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अरुणाचली समाज आज भी प्रकृति के सबसे निकट है। स्वार्थ के इस दौर में यह समाज आपसी सद्भाव एवं भाईचारे की नींव पर टिका हुआ है। इस समाज में अभी भी मानवता शेष है। परन्तु महिला या स्त्री की स्थिति आज भी यहाँ दयनीय बनी हुई है। उपन्यासों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह समाज अपने पूर्वजों के व्यवसाय से लेकर खान-पान एवं रीतिरिवाजों को आज भी अपनाएँ हुए है। आधुनिकता के इस दौर में भी इस समाज की जड़ें प्राचीन संस्कारों से पोषित हो रही हैं।

ग्रंथ सूची

- 1 डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2008, मूल्य-550, पृ-1
- 2 डॉ. धीरेंद्र वर्मा सं. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, पुनर्मुद्रण, वाराणसी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 2021, पृ-158
- 3 गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण -2019, पृ-24
- 4 येसे दरजे थोंगछी, ‘मौन होंठ मुखर हृदय’, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्र. संस्करण -2017, पुनर्मुद्रण -2023, पृ-63
- 5 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-36
- 6 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-9
- 7 दयाराम वर्मा सियांग के उस पार, नॉसन प्रैस, चेन्नई, प्रथम संस्करण -2018, पृ-222
- 8 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-34
- 9 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-33
- 10 जोराम याताम, जंगली फूल, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019, पृ-31
- 11 दयाराम वर्मा, ‘सियांग के उस पार’, नॉसन प्रैस, चेन्नई, प्रथम संस्करण 2018, पृ-108
- 12 येसे दरजे थोंगछी, ‘मौन होंठ मुखर हृदय’, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्र. संस्करण -2017, पुनर्मुद्रण -2023, पृ-18
- 13 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-33
- 14 येसे दरजे थोंगछी, ‘शव काटने वाला आदमी’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2015, पृ-108
- 15 तुम्बम रीबा जोमो ‘लिली’, उस रात की सुबह, पृथ्वी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2018, पृ-30
- 16 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-24
- 17 मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020, पृ-85
- 18 जुमसी सिराम ‘नीनो’, मातमुर जामोह, प्रकाशक श्री, केम्बोम बागरा, ईटानगर, प्रथम संस्करण -2015, पृ- 1
- 19 येसे दरजे थोंगछी, सोनाम, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण -2009, पृ-135
- 20 येसे दरजे थोंगछी, सोनाम, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण -2009, पृ-8



भारत में नगरीय स्वशासन की प्रमुख चुनौतियां : एक राजनीतिक दृष्टिकोण

डॉ. रमेश राम

सहा.प्रा. (अतिथि व्याख्याता) राजनीति विज्ञान
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय परिसर, चम्पावत
Email : aptech.ramesh1984@gmail.com

Mobile no.7465967280

एक विषय के रूप में राजनीतिशास्त्र के उद्भव, विकास एवं परिवर्तन की पृष्ठभूमि में सामाजिक, राजनैतिक समस्या की अवधारणा ने एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। राजनैतिक शास्त्र का विकास, राजनैतिक, सामाजिक परिवेश में समस्यामूलक परिवेश एवं परिस्थितियों का अध्ययन करने तथा उनका निराकरण के प्रयासों के रूप में हुआ है। राजनैतिक समस्याओं के अध्ययन में राजनैतिक विचारकों का ध्यान इसलिए आकर्षित हुआ कि मानव समाज ने हमेशा राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं का सामना किया है। वह कभी भी इन समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं रहा है और न ही इन समस्याओं से मुक्त रहने की संभावना निकट भविष्य में नजर आती है। समाज हमेशा परिवर्तनशील एवं गत्यात्मक रहा है अतः परिवर्तन समय की मांग है जो समाज जितना परिवर्तनशील एवं गत्यात्मक होगा उसमें उतनी ही समस्याएं भी विद्यमान होंगी। वर्तमान समय में राजनैतिक परिवर्तन अति तीव्र गति से हो रहे हैं। इस समय भारतीय समाज में सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के साथ-साथ जनसंख्या की समस्या, नगरीकरण, बेरोजगारी, आतंकवाद भ्रष्टाचार जैसी समस्याएं विद्यमान हैं और इन समस्याओं के निराकरण के लिए सरकार द्वारा निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

नगर सभ्यता और संस्कृति के परिवर्तनशील केंद्र होते हैं। यह समय के साथ-साथ बनते-बिगड़ते व परिवर्तनशील होते रहते हैं। थमस्ली के अनुसार:-“नगरों को स्थापित करने का उद्देश्य ईश्वर को श्रद्धा स्थलों के रूप में सजाना है।”¹ नगर अपना विकास करते समय ऐसी शक्तियों को तैयार करता है, जो उसके निर्माण में सहायक होती है।² गैलीयन का कहना है जहां तक नगरीय स्वशासन का अभिप्राय है। उन सब लोगों से है, जो उसे बसाते हैं। यह मकानों का विस्तृत संग्रह है, जिसमें लोग रहते हैं, दुकानें जिसमें काम करते हैं, सड़कें जिन पर वे आते-जाते हैं, वे स्थान जिन पर वे व्यापार आदि करते हैं।³ इसीलिए नगरों को सभ्यता और संस्कृति का परिवर्तनशील केंद्र कहा जाता है। यहीं पर स्थानीय नगरीय स्वशासन की उत्पत्ति एवं विकास होता है। धीरे-धीरे सभ्यता विकसित होने लगती है इस हेतु अनेक परिवर्तन समाज में आने लगते हैं। फलस्वरूप विकास के साथ-साथ नगरीय स्थानीय स्वशासन के समक्ष अनेक समस्याएं एवं चुनौतियां परिलक्षित होने लगती हैं।

भारत में नगरीय स्थानीय शासन की संस्थाएं स्मरणातीत काल से चली आ रही है। प्राचीन काल से भारतीय गांव प्रशासन की धुरी रहे हैं। “मौर्य काल में भी गांव की व्यवस्था ऊपर से की जाती थी, जबकि गुप्त काल में नीचे से ही की जाती थी। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय भी शहरी एवं ग्रामीण स्वशासन व्यवस्था प्रचलित थी। गांवों ने बहुत सत्ता प्राप्त कर ली थी।”⁴ भारत की नगरीय स्थानीय स्वशासन सरकारों के संबंध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि “प्राचीन काल में

यहां स्थानीय सरकारों के स्वतंत्र अस्तित्व का उदय और विकास, विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप हुआ है, जबकि आधुनिक काल में स्थानीय शासन स्वयं राज्यों के सचेतन प्रयास का प्रतिफल है।⁶ अतः यह प्रमाणित सत्य है कि भारत में नगरीय स्थानीय स्वायत्तता की जड़ें अत्यंत गहरी रही हैं। वर्तमान में भी नगरीय शासन की व्यवस्था में अनेक परिवर्तनों के साथ-साथ अनेकों समस्याएं भी उजागर होती रही हैं, क्योंकि प्रत्येक नगर एवं महानगरों की जनसंख्या में निरंतर हो रही वृद्धि से नगरीय स्थानीय स्वशासन के समक्ष अनेक समस्याएं परिलक्षित हो रही हैं क्योंकि हमारी जनसंख्या 1 अरब पार कर गई है यानि विश्व के प्रत्येक 6 व्यक्तियों में से 1 भारतीय। जनसंख्या के लिहाज से भारत पूर्व सोवियत संघ और अमेरिका की सम्मिलित जनसंख्या का दो गुना, इंग्लैंड और फ्रांस की जनसंख्या का आठ गुना, जर्मनी का बारह गुना, जापान का आठ गुना तथा ऑस्ट्रेलिया का पचपन गुना है।⁶

एलरिक और फ्रेमलिन नामक दो वैज्ञानिकों ने जनसंख्या पर काफी रोचक काम किया है। 'द पापुलेशन बम' नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि अगर विश्व की जनसंख्या इसी रफ्तार से बढ़ती रही तो 900 वर्षों बाद धरती पर कम-से-कम 600 लाख अरब लोग होंगे। उनका आंकलन है कि उस समय समूची धरती, जिसमें जमीन और जल दोनों शामिल हैं, पर प्रतिवर्ग गज 100 लोग होंगे। उनका आंकलन है कि मशीन आदि की जगह छोड़कर उस स्थिति में एक व्यक्ति के हिस्से मात्र तीन से चार वर्ग गज फर्श आएगा।⁷ भारत में नगरीय स्वशासन की संस्थाओं को विभिन्न चुनौतियों या समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। डॉ.वी. एम. सिन्हा ने भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं की प्रमुख समस्याओं का जिक्र करते हुआ निम्नलिखित समस्याओं की चर्चा की है:-⁸

पहली समस्या यह है कि इन संस्थाओं को जनसाधारण से जो सम्मान मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पाता। जनसाधारण ने इनके प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण अपना लिया है। इसका कारण इनकी अक्षमता, अकार्यकुशलता एवं ईमानदारी की कमी है।

इसकी दूसरी समस्या यह है कि जनसाधारण का काफी बड़ा भाग अशिक्षित है। अपने अधिकार एवं कर्तव्यों के विषय में जागरूक नहीं है। पढ़ा-लिखा वर्ग शायद बाहर से आया हुआ होने के कारण अथवा अपनी ही समस्याओं में उलझे रहने के कारण नगर प्रशासन की समस्याओं की ओर से उदासीन रहता है। फलतः वहाँ ऐसा कोई प्रभावशाली वर्ग नहीं होता जो नगर प्रशासन में सुधार के लिए सक्रिय होकर प्रयत्न करे।

इसकी तीसरी समस्या यह है कि शहरों में जनता की उदासीनता एवं फलतः पेशेवर राजनीतिज्ञों की मनमानियों का एक कारण यह है कि इन शहरों में बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो बाहर से आए हैं, जिनका स्थानीय जनता एवं शहर से कोई प्रेम नहीं है। शहर को अच्छा बनाने की भावना इनके मस्तिष्क में आई ही नहीं है।

इसकी चौथी समस्या यह है कि इन संस्थाओं का प्रशासनिक दलगत राजनीति का शिकार हो गया है। व्यक्तिगत, दलगत एवं राजनीतिक कारणों से विकास कार्यक्रमों की अवहेलना की जाती है। दिन-प्रतिदिन के प्रशासन पर जैसे-करों की वसूली, लाइसेंस जारी करना, संस्था के उपनियमों को लागू करना आदि पर राजनीति हावी रहती है।

इसकी पांचवी समस्या यह है कि निर्वाचित पदाधिकारी अपना अधिकांश समय अपने व्यक्तिगत एवं दलगत लाभ के लिए दाव-पेचों एवं अखाड़ेबाजी में व्यतीत करते हैं। इसे नगर प्रशासन का हित एवं जनता का हित गौण हो जाता है।

इसकी छठी समस्या यह है कि इन संस्थाओं ने अपनी वित्तीय स्थिति सुधारने की दिशा में कोई विशेष कदम नहीं उठाया है। नए कर लगाने या चालू करों में बढ़ोतरी करने में कोई उत्साह नहीं दिखाया गया है। निर्वाचित सदस्यों को यह डर बना रहता है कि इससे उनकी लोकप्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। फलतः इन संस्थाओं का सतत प्रयास यह रहता है कि राज्य सरकारों से अनुदान या ऋण के रूप में अधिक से अधिक सहायता प्राप्त कर ली जाए। इसकी सातवीं समस्या यह है कि जनसाधारण की उदासीनता एवं पेशेवर राजनीतिज्ञों की मनमानियों के कारण अच्छे ईमानदार व्यक्ति इन संस्थाओं की ओर आकर्षित नहीं होते। परिणामस्वरूप इन संस्थाओं की बागडोर क्षेत्र के अच्छे ईमानदार व्यक्तियों के हाथों में न होकर पेशेवर राजनीतिज्ञों के हाथों में होती है।

इसकी आठवीं समस्या यह है कि करों के विषय में स्थानीय जनता का दृष्टिकोण गलत है। यदि नगर प्रशासन में सुधार लाना है, नई सेवाएं उपलब्ध करवानी हैं तो इनका व्यय-भार नगर निवासियों को ही उठाना होगा। नगर निवासी नई सेवाओं की एवं चालू सेवाओं में सुधार की मांग करती है पर इसके व्यय के लिए करारोपण या करों की दर में वृद्धि का विरोध करते हैं। इसकी दसवीं समस्या यह है कि बड़े शहरों में आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों का बहुत दबाव रहता है। ये लोग नगरपालिका की आय में कोई योगदान नहीं करते पर नगरपालिका की सेवाओं तथा यातायात, बाजार, अस्पताल एवं शिक्षण संस्थाओं आदि का लाभ अवश्य उठाते हैं।

इसकी ग्यारवीं समस्या यह है कि सार्वजनिक संपत्ति, सेवाओं एवं सुविधाओं को हम बुरी तरह उपयोग में लाने के आदि हो गए हैं। उदाहरणार्थ सड़क पर कूड़ा-कचरा फेंक देना, जहाँ-तहाँ थूक देना, नल के उपयोग के बाद बंद न करना, सड़क के किनारे बच्चों को मलमूत्र त्यागने के लिए बैठाना आदि का उल्लेख किया जा सकता है इससे एक ओर तो गन्दगी फैलती है एवं दूसरी ओर इन सेवाओं पर इन संस्थाओं का व्यय भार बढ़ता है।

इसकी बारहवीं समस्या यह है कि राज्य सरकारों द्वारा नियंत्रण के अधिकारों का उपयोग कई बार राजनीतिक आधारों पर किया जाता है। विरोधी दलों द्वारा प्रशासित संस्थाओं को अतिक्रमित या भंग कर दिया जाता है। विरोधी दल के चेयरमैन को पद से हटा दिया जाता है या उसे अधिकारविहीन बना दिया जाता है। अनेक बार न्यायालयों ने इस प्रकार के आदेशों को अवैध ठहराया है।

इसकी तेरहवीं समस्या यह है कि कर्मचारियों में ईमानदारी एवं कर्तव्य पालन की भावना की प्रायः कमी पाई जाती है। अधिकतर कर्मचारी किसी तरह राजनीतिज्ञों के संपर्क में आकर अपना उल्लू सीधा करने के प्रयास में लगे रहते हैं। उन्हें कार्यालय में आकर ईमानदारी से काम करने का न तो अवसर मिलता है एवं न इसमें उनकी रुचि ही होती है। इन संस्थाओं के कर्मचारियों का वेतनमान बहुत कम होता है अतः रिश्वत, दस्तूरी आदि का बड़ा जोर रहता है।

इसकी चौदहवीं समस्या यह है कि इन संस्थाओं में प्रशासकीय कुशलता का स्तर अत्यंत निम्न कोटि का रहा है। इन संस्थाओं में अच्छे कर्मचारियों का अभाव है। वैसे ही प्रत्याशी इन संस्थाओं की ओर आकर्षित होते हैं, जो केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के अच्छे प्रतिष्ठानों द्वारा छोट दिए गए हैं। इसकी सोलहवीं समस्या यह है कि राज्य सरकारें कई बार अपने नियंत्रण के अधिकारों का समय रहते उचित उपयोग नहीं करती है। यदि समय पर उचित मार्गदर्शन हो जाए तो कई अवसरों पर संस्था को अधिक्रमित या भंग करने की स्थिति उत्पन्न ही न हो।

नगरीय स्थानीय संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण

राज्य सरकार कानून को लागू कर नियंत्रण करती है। अधिनियम के अंतर्गत राज्य सरकार को अधिकार प्राप्त होता है कि अधिनियम लागू करने के संबंध में आदेश सभी नगरपालिकाओं या कुछ विशेष नगरपालिकाओं के लिए जारी किए जा सकते हैं। नियम एवं आदेश राजपत्र में प्रकाशित किए जाते हैं एवं प्रकाशन तिथि के उपरांत एक निश्चित अवधि के बाद लागू कर दिए जाते हैं। राज्य सरकार स्थानीय निकायों द्वारा बनाए गए उपनियम आदि तभी लागू समझे जाते हैं जब राज्य सरकार द्वारा उनका अनुमोदन कर दिया जाए। किसी उपनियम में कोई परिवर्तन राज्य सरकार की सहमति से ही किया जा सकता है। राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम एवं उपनियम प्रायः राज्य के स्थानीय स्वायत्त शासन विभाग द्वारा प्रसारित किए जाते हैं।⁹

नगर निकायों पर राज्य सरकार द्वारा लगाए गए नियंत्रण व्यवस्था की समस्या

नियंत्रण व्यवस्था से संबंधित निम्नलिखित समस्याएं कही जा सकती है।¹⁰

1. स्थानीय शासन संस्थाओं को बार-बार भंग करने, अतिक्रमण करने, सदस्यों एवं चेयरमैन को निष्कासित करने से न केवल सार्वजनिक धन एवं शक्ति का अपव्यय होता है, बल्कि स्थानीय संस्थाओं से जनता का विश्वास उठने लगता है।

2. नियंत्रण की वर्तमान व्यवस्था में रचनात्मकता की कमी है। प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों की भाँति यहाँ भी नौकरशाही का बोल-बाला है।

3. प्रायः यह देखा गया है कि राज्य सरकार एवं स्थानीय शासन संस्थाओं के बीच खींचातानी चलती रहती है। अधिकारी अधीनस्थ संबंध का स्वरूप वर्तमान बदली हुई परिस्थितियों में ठीक नहीं है। दोनों ही सत्ताओं को पारस्परिक सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए ताकि जनता का अधिकतम हित हो सके।

4. कई बार स्थानीय शासन संस्थाओं का अतिक्रमण वर्षों तक चलता रहता है जिसे उचित नहीं कहा जा सकता। यह आवश्यक है कि अधिनियम के अंतर्गत अतिक्रमण की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जाए।

5. ऐसी शिकायतें प्रायः सुनने में आती हैं कि नियंत्रण शक्तियों का प्रयोग दलगत राजनीति के व्यक्तिगत लाभ या बदले की भावना से किया जाता है। एक ही आधार की परिस्थितियों में कुछ नगरपालिकाएं भंग कर दी जाती हैं जबकि अन्य को कुछ नहीं कहा जाता।

8. कई बार नियंत्रण की कठोरता से स्थानीय पहल को ठेस पहुँचती है। कुछ राज्यों में वित्तीय सहायता एवं ऋण प्राप्ति के नियम काफी कठोर हैं।

यदि निष्कर्ष के रूप में देखा जाय तो उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि नगरीय शासन की सफलता के लिए जन भागीदारी का होना भी आवश्यक है। इसमें सुधार के लिए परिवेशित एवं नियंत्रण का कार्य ऐसे अधिकारियों को सौंपा जाए जो स्थानीय समस्याओं को समझते हो तथा स्थानीय निकायों की परेशानियों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने में सक्षम हो।

संदर्भ ग्रंथ

1. The mission of the founder was to put the gods in the shrines.
2. City is a growth like that of a crystal reproducing the forces inherent in the atom that makes it.
3. डॉ. सुरेश चंद्र बंसल, नगरीय भूगोल, पृ.52
4. एस. आर. माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, पृ.21
5. इन्द्रजीत कौर, लोक प्रशासन साहित्य भवन: आगरा, पृ.808
6. सिंह एन. एम. आधुनिक समाजशास्त्रीय निबंध; पृ.29
7. वही; पृ.30
8. सिंह कुमार कमलेश डॉ. भारतीय प्रशासन; पृ. 409,410,411,412
9. वही; पृ.416-417
10. वही; पृ. 420-421



हिंदी कहानी का उद्भव विकास : नई कहानी के संदर्भ में

डॉ. कंचन आर्या

सहायक प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता) हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डी.एस.बी.परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

मो. 7617698036

Email-kanchan.kanchan8619@gmail.com

हिंदी कहानी का उद्भव और विकास भारत की प्राचीन कथाओं -जातक कथा, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि से न होकर अंग्रेजी साहित्य की 'शार्ट स्टोरी' से माना जाना चाहिए। पश्चिम में कहानी एक लोकप्रिय साहित्य विधा के रूप में स्थापित हो चुकी थी। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में पश्चिम का कहानी साहित्य धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगा था। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में बंगला और मराठी में कहानी लेखन का आरंभ हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने इन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर कहानी लेखन का श्री गणेश किया। देखते ही देखते यह साहित्य विधा अत्यंत लोकप्रिय हो गई और कहानीकारों का एक विशाल वर्ग सामने आने लगा। यदि देखा जाए तो हिंदी के कहानी साहित्य में वास्तविक मोड़ तब आया जब प्रेमचंद की रचनाएँ हिंदी की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। शीघ्र ही कहानी लोकप्रिय और साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित हो गई।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी में हम खड़ी बोली के गद्य का उन्मेष देखते हैं और हिंदी गद्य के विकास के साथ ही हिंदी कहानी को उत्पत्ति के सूत्रों को खोजा जा सकता है। सन् 1800 में अपने अफसरों को स्थानीय भाषाएं सिखाने के लिए अंग्रेजों ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की और कुछ शिक्षकों को हिंदी कहानी लिखने का कार्य सौंपा जिनमें प्रमुख हैं-लल्लूलाल कृत बैताल पचीसी और प्रेमसागर, सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान'। इसी समय मुंशी ईशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी जिसे डॉ. लक्ष्मीसागर वाशर्णय जैसे विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। इसी दौरान सदासुखलाल ने 'सुखसागर' की रचना की। किंतु इन रचनाओं के कथासूत्र संस्कृत से जुड़े हैं और इन रचनाओं में भाषा और शिल्प का प्रदर्शन मात्र है। इनमें से किसी रचना को मौलिक कहानी नहीं कहा जा सकता। ईशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' प्रयोगात्मक रूप से लिखी गई थी किंतु कलात्मक दृष्टि से इसका रचना विधान आधुनिक कहानी जैसा नहीं था। हिंदी कहानी का आविर्भाव हम भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं में पाते हैं।

इस प्रकार आधुनिकता के आगमन के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। कहानी भी उनमें से एक है। कहानी का अर्थ आज जिस रूप में प्रयोग होता है वह पश्चिम में विकसित 'शार्ट स्टोरी' विधा का हिंदी पर्याय है किंतु यह गौर करने की बात है कि हिंदी में कहानी का प्रारंभिक विकास 'शार्ट स्टोरी' के तर्ज पर नहीं हुआ, बल्कि इसने पारंपरिक भारतीय कथा परंपरा पर यथार्थ के दबाव से रूपाकार लेना शुरू किया। यही कारण है कि बीसवीं सदी के पहले दशक की हिंदी कहानियों पर प्राचीन भारतीय कथा परंपरा का स्पष्ट प्रभाव है। यहां तक कि यह प्रभाव बहुधा प्रेमचंद में भी दृष्टिगोचर होता है। कालांतर में प्रेमचंद ने आदर्श के अनुपात को कम करते हुए यथार्थ को अपनी कहानियों में अधिकाधिक स्थान दिया।

प्रेमचंद से लेकर बीसवीं सदी के अंतिम दशक में शुरू हुए विमर्शों तक और फिर भूमंडलीकरण के बाद उत्पन्न नई परिस्थितियों तक हिंदी कहानी विकास के कई चरणों से गुजरी है।

कहानी को कथा, आख्यान, गल्प और दास्तान भी कहा जाता है। प्राचीन काल से ही कथा अपने आप में बहुत प्रसिद्ध थी, जो आज भी अपनी प्रासंगिकता को लिए हुए है। यही परंपरा किस्सा और कथा से समृद्ध रहा और यही आगे चलकर शिक्षा के प्रमुख माध्यम भी बने, पंचतंत्र की कहानियां इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, जातक आदि जैसी कथाओं में अनगिनत किस्से भरे पड़े हैं। बाद में इसी कथा परंपरा से कादम्बरी, दशकुमार चरित, सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी आदि कहानियां फूटीं। कथाओं के इसी सागर से 'कहानी' का जन्म हुआ। यह निर्विवाद है कि कहानी का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ हुआ है। कहानी मनुष्य की कल्पना की उपज है। दैनिक जीवन में मानव सभ्यता के विकास में जहां पशुपालन आदि के द्वारा जीवन में जो अनुभव मिलते रहे उन्हीं अनुभवों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करने की कला ने ही मनुष्य की सृजनशीलता और कल्पनाशीलता ने कहानी को जन्म दिया।

अतः कहानी कला की इसी विकसित परंपरा में एक नया नाम और जुड़ा, जिसे 'नई कहानी' की संज्ञा से विभूषित किया गया। जिसकी नींव 1954 में पड़ी। लेकिन इसकी वास्तविक उपस्थिति का अहसास लोगों को 1960 के आसपास हुआ। वास्तव में नई कहानी स्वतंत्रता के बाद के भारत में उपजी नई परिस्थितियों की देन थी। नए सामाजिक यथार्थ को नए प्रकार की कहानी की आवश्यकता थी। अनेक आंदोलनों की तरह ही नई कहानी का भी कोई स्पष्ट नाम नहीं था। नई कहानी को परिभाषित करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा है :-“नई कहानी व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करती है और व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अंतर्द्वन्द्व तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप को प्राप्त करना चाहती है। वास्तव में अपने समय के संदर्भ ही नई कहानियों को कथ्य और संवेदना का धरातल प्रदान करते हैं और यहीं पर कहानी पर आते जा रहे परिवर्तन का स्पष्ट आभास होता है।”²

स्वातंत्र्योत्तर कहानी को 'नई कहानी' के नाम से पुकारा गया तो निश्चय ही उसमें कुछ नयापन रहा होगा और यह नयापन ही उसे पूर्ववर्ती कहानी से अलग कर रहा होगा। 'नई कहानी' शब्द का प्रयोग जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, अश्व, यशपाल के बाद आने वाली पीढ़ी की कहानी के लिए किया गया है तथा इस पीढ़ी का लेखन के क्षेत्र में उदय स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ। 'नई कहानी' नामकरण के जन्म का इतिहास खोजते हैं तो हम पाते हैं कि दुष्यंत कुमार ने सबसे पहले 'नई कहानी' परंपरा और शीर्षक (कल्पना में प्रकाशित) अपने निबंध में नई पीढ़ी की कहानियों में कुछ नयापन और मौलिकता देखकर उन पर विचार किया था। उन्हें मार्कण्डेय, अमरकांत, राजेन्द्र यादव, विद्यासागर नौटियाल कमल जोशी, धर्मवीर भारती की कहानियों में नयेपन और प्रगति के कुछ चिह्न नजर आए थे, लेकिन दुष्यंत कुमार अपने लेख में नामकरण की सार्थकता के विषय में किसी प्रकार का तर्क संगत विवेचन नहीं करते।

'नई कहानी' के नामकरण की आवश्यकता का प्रश्न सर्वप्रथम डॉ. नामवर सिंह ने अपने लेख 'आज की हिंदी कहानी' में उठाया और पूरे बल के साथ इस नाम का समर्थन किया। इस नाम की कहानी के साथ जोड़ने का श्रेय डॉ. नामवर सिंह को ही जाता है। उन्होंने 'नई कविता' के संदर्भ में 'नई कहानी' के नामकरण का प्रश्न उठाते हुए कहा :-“मेरे मन में यह सवाल उठता है कि 'नई कविता' की तरह 'नई कहानी' नाम की कोई चीज है क्या? इसके आगे वे कहते हैं कि 'नई कहानी' नाम से कोई आंदोलन अभी तक नहीं चला है। इससे क्या समझा जाए? यह कि कहानी में कुछ नयापन आया ही नहीं कि कहानी में जो नयापन आया है, वह कविता की अपेक्षा बहुत कम है।”³

किंतु नई कहानी के विषय में नामवर सिंह के विचार समय-समय पर विकसित होते रहे हैं। वे कभी सांकेतिकता को या कभी सूक्ष्म वातावरण को या संगीतात्मकता को या कथा विन्यास को या वास्तव में विविध आयामों को या नवीन दृष्टि को-‘नई कहानी’ का आधार मानकर उसका मूल्यांकन करते रहे हैं। उन्होंने एक विभिन्न बात यह भी कही कि कहानी की चर्चा में “अनायास ही नई कहानी” शब्द चल पड़ा है और सुविधानुसार इसका प्रयोग कहानीकारों ने भी किया है और आलोचकों ने भी, किंतु उनका अनायास वाला कथन इसलिए सत्य प्रतीत नहीं होता कि नामकरण की आवश्यकता सबसे पहले उन्होंने

ही महसूस की और उन्होंने ही यह नाम दिया।

नई कहानी अपने समय की विद्रुपताओं और विसंगतियों पर केंद्रीत होती है। यह हमें जटिल जीवन के यथार्थ की व्यापक स्वीकृति से मिलाती है। नई कहानी छिछली भावुकता से परे थी खासकर जैनेंद्र की कहानियों की तुलना में। ये कहानियां व्यक्ति को संपूर्णता में प्राप्त करने का दावा करती थी, किंतु मुख्यतः ये कहानियां मध्यमवर्गीय कहानियां ही थीं। नई कहानी को वास्तव में हिंदी कहानी में आधुनिकता के विकासक्रम में देखा जाना चाहिए। इन कहानियों में आधुनिकता का बोध बहुत स्पष्ट रूप से झलकता है।

नई कहानी आजादी के बाद की प्रमुख कहानी आंदोलन है, जो आजाद भारत की आकांक्षाओं और सपनों के साथ आगे बढ़ा और नई अभिव्यक्तियों को स्थान दिया, जिसमें नारी प्रमुख है। नई कहानी के दौरान बदलते स्त्री-पुरुष संबंध शहरी परिवेश, मध्यमवर्गीय परिवार का ताना-बाना, पुराने और नए के बीच का संघर्ष कहानियों में कई-कई प्रकार से उभरा। नई कहानी ने नई बारीकियां, औजार, मानदंड और मापदंड अपनाए, जिसके आधार पर पुरानी कहानियों के बरक्स नई कहानी को रखा गया खास तौर पर 1950 के बाद लिखी गई कहानियां। नई कहानी में व्यक्ति की केंद्रीयता बड़ी, यथार्थ के प्रति आग्रह बढ़ा, वर्तमान की विसंगतियों और विद्रुपताओं का घनघोर चित्रण, बदलते स्त्री-पुरुष संबंध और स्त्री की स्वतंत्र अभिव्यक्ति, प्रेम की जटिलताएं, हताशा और मोहभंग, कामकाजी महिलाओं की समस्या, शहरी संस्कृति और बदलते मानव मूल्य, पूंजीवादी संस्कृति के प्रकोप, पूंजीवाद और प्रजातंत्र के गठजोड़ से उपजा भ्रष्टाचार जैसे विषय कहानी के जरिए उभरे जो निश्चित रूप से समकालीन परिवेश और प्रवृत्ति के दबाव से सामने आए। कहानी बदली, कहने का ढंग बदला, निजता बड़ी, सांकेतिकता को तरजीह दी गई, बारीकियां बड़ी, वर्णन बहुलता घटी, बिम्ब प्रधान हुए कहानी में कविता जैसी सघनता पैदा हुई। भोगा हुआ यथार्थ और अनुभूति की प्रमाणिकता नई कहानी की कसौटी बनी। “नई कहानी के दौरान लिखी जा रही कहानियों की दो मुख्य धाराएं थी:- एक धारा में शामिल हैं-निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर और दूसरी धारा में शामिल हैं-फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, भीष्म साहनी, मार्कण्डेय, अमरकांत और शेखर जोशी, हरिशंकर परसाई, शानी”¹⁴ पर इन दो धाराओं में नई कहानी को कैद नहीं किया जा सकता है। इस दौर में महिला कथाकारों की सक्रियता खास तौर पर ध्यान खींचती है। जिन्होंने स्त्री-पुरुष संबंध, समाज को देखने का बदलता नजरिया और बदलते रिश्ते-नातों के आधार पर कहानी लिख कर कहानी संसार को एक नई सौगात दी। कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा और मन्नू भंडारी, चंद्रकिरण सौनरेक्सा जैसी हिंदी कथाकारों ने हिंदी कहानी को वह दृष्टि दी जो अब तक मौजूद नहीं थी। 1950 के अंतर हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक नए कहानी के आंदोलन का प्रवर्तन हुआ जिसे नई कहानी के आंदोलन की संज्ञा दी गई। इन आंदोलनों के उपनायकों ने घोषित किया कि नई कहानी का लक्ष्य नए भाव-बोध या आधुनिकता बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ के अनुभव का चित्रण करना है। उन्होंने कहानी पर किसी भी प्रकार के बाह्य तत्व विचार, सिद्धांत या उपदेश के आरोपण को अस्वीकार किया, क्योंकि उनके विचार से कलाकार या कहानीकार जीवन और समाज के किसी भी आदर्श या परंपरागत व्यवस्था से बधा हुआ नहीं है, वह अपने आप के प्रति ही आबद्ध या प्रतिबद्ध है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में:-“मानवता, राष्ट्रीयता, सत्य धर्म, नैतिकता, प्राचीन गौरव आदि सब छलावें हैं। जिसके प्रति किसी भी कलाकार का आस्थावान होना अनुचित है।”¹⁶

नया कहानीकार न अतीत के आदर्शों से जुड़ा है और न ही भविष्य के सपनों से। वह वर्तमान में और वर्तमान में भी केवल अपने भोगे हुए यथार्थ को अपनी दृष्टि का केंद्र बनाता है। इस प्रकार नई कहानी में व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, अनुभूतिवाद एवं आधुनिकतावाद की प्रतिष्ठा हुई। जिसके फलस्वरूप वह जीवन, समाज और राष्ट्र के व्यापक परिवेश से कटकर कहानीकारों के वैयक्तिक जीवन की निजी सीमाओं से आबद्ध हो गई। इसीलिए नई कहानी में व्यक्तिनिष्ठ अहम, काम-चेतना, यौनाचार, नारी-पुरुष संबंधों का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है। नई कहानीकार का क्षेत्र मुख्यतः आधुनिक उच्च मध्यम वर्ग है, जिसमें परंपरागत आस्था एवं नैतिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन का भी ह्रास दृष्टिगोचर होता है। नई कहानी में दाम्पत्य जीवन की प्रायः सभी स्थितियों एवं पारिवारिक जीवन की विसंगतियों का चित्रण अनुभूतिपूर्ण शैली में हुआ है। जहां तक शिल्प और शैली की बात है। कहानीकार इसमें पूर्णतः सहजता पर बल देता है। अतः वह कहानी रचना

के लिए पहले से किसी कथानक या घटनाक्रम को नियोजित करना अनुचित समझता है इसलिए वह बिना किसी पूर्व योजना के किसी भी प्रसंग को एकाएक लेकर उसे संवेदना के आधार पर प्रस्तुत कर देता है। वस्तुतः नई कहानी में कथावस्तु एवं घटना का स्थान संवेदना और अनुभूति ने ले लिया है। इसीलिए इस पर आक्षेप किया जाता है कि इसमें कहानीपन या कथातत्व का हास हो गया। जो एक सीमा तक सही है।⁷

कहानीकार अपने युग से प्रभावित होता है। बीसवीं शदी के मध्य में कहानीकार दौहरी यातना से गुजर रहा था। एक ओर युद्ध की विभीषिका का आतंक और दूसरी ओर युगों से पराधीन देश को मिली आजादी और विभाजन। इस प्रकार कालांतर में देश धीरे-धीरे सहज होने लगा और आजादी के बाद नया माहौल बना इस बदलते हुए माहौल और वातावरण को नए कहानीकारों ने अपनी कहानी का विषय बनाया। पहले के कहानीकार जगबीति सुनाता था अब कहानीकार आपबीति पर ज्यादा बल देने लगा। दृष्टिकोण बदला तो कहानी का रंग-रंग भी बदला। कहानी से घटनाएं गायब होने लगीं। आरंभ और अंत तक का कोई सिलसिला नहीं रहा। इस दौर में लिखी गई कहानियों ने कहानी का दायरा विस्तृत किया। अब कहानियां संश्लिष्ट हो गईं स्केच, निबंध, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, स्मृति, डायरी, लोक कथाओं आदि के रूप में लिखी जाने लगीं।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में कहानी एकाएक महत्वपूर्ण हो उठी और कहानियों की अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। 1954 ई. में कहानी पत्रिका का पुनर प्रकाशन आरंभ हुआ। नई कहानी के नाम से एक कहानी आंदोलन की शुरुवात हो गई। नई भावबोध की कहानियां होने के कारण इन्हें नई कहानी का नाम दिया गया। यह एक साथ मूल्य भंग और मूल्य निर्माण की कहानियां हैं। मार्कण्डेय, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, अमरकांत, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, उशा प्रियंवदा, राजकमल चौधरी, हरिशंकर परसाई, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, राजकुमार, रमेश बख्शी, कृष्ण बलदेव, कृष्णा सोबती आदि इस युग और प्रवृत्ति के प्रमुख कहानीकार हैं।⁸ इन कहानीकारों को नए कहानीकार कहा जाता है। उन्होंने अलग-अलग ढंग से आधुनिक जीवन के संकट को चित्रित किया है और इन सबकी प्रतिक्रिया अलग-अलग है।

डॉ. मानवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानी 'परदे' को पहली नई कहानी और निर्मल वर्मा को पहला कहानीकार कहा है। नई कहानी के बिम्ब विधान के प्रति लेखकों का आकर्षण भी उनकी अंतर्वस्तु की जटिलता की एक अनिवार्य मांग के रूप में देखा जाना चाहिए। अपने पात्रों के भावों और मनोदशाओं को वर्णनों और व्यवहारों द्वारा उतने प्रभावी ढंग से प्रभावित नहीं किया जा सकता था। इस भावात्मक जटिलता को बिम्बों द्वारा व्यक्त करने की सजकता इस दौर के प्रायतः सभी कहानीकारों में दिखाई देती है। शेखर जोशी का 'कोसी का घटवार' में निर्जन-विरानों में गुसाई की चक्री से निकलती भग-भग की आवाज बाहर बहती कोसी की सूखी धारा और किसान के लिए खप्पर में अनाज डालकर बाहर निकालने पर आटे की उड़ती सफेदी में लिपटा हुआ पूरा शरीर आदि बिम्ब उनके मन में बसी गहरी उदासी, अकेलपन में रीतते जाने की पीड़ा को जितनी सघन रूप में व्यक्त करते हैं उन्हें देखते हुए नई कहानी में बिम्ब विधान की भूमिका को आसानी से समझा जा सकता है। निर्मल वर्मा और राजकुमार की अधिकांश कहानियां बिम्ब विधान के कारण ही कविता जैसी भाव सघनता उत्पन्न कर पाने में सक्षम हैं। नई कहानी में बिम्ब के महत्व पर टिप्पणी करते हुए परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं:- "आधुनिक कहानी के अंतर्गत उपलब्ध बिम्ब बहुत पारदर्शी, भाषा के अर्थपूर्ण उपयोग को देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म इन्द्रिय अभिव्यक्ति के लिए जैसी अर्थपूर्ण क्षमता आज की कहानी में उपलब्ध हैं पहले इस रूप में कभी नहीं थी। बिम्ब विभाजन का सार्थक उपयोग करने वाले आज के कहानीकार वस्तुओं के पीछे छिपे हुए गहरे यथार्थ के नए खोज के प्रति पहले के कहानीकारों की तुलना में अधिक व्याकुल एवं चेष्टावान दिखाई देते हैं।"⁹

नई कहानी के प्रमुख लेखकों में मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव, रमेश बख्शी, मन्नू भंडारी, उशा प्रियंवदा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मोहन राकेश के इन्सान के खंडहर, नए बादल, जानवर और जानवर, एक और जिंदगी, आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें शहरी जीवन की कृत्रिमता, बाह्य आडम्बर नारी-पुरुष संबंधी दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन के विघटन आदि का चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है। निर्मल वर्मा के कहानी संग्रहों में, परिदे, एक दिन

का मेहमान, जलती झाड़ी, पिछले गर्मियों में, कच्चे और काला पानी आदि उल्लेखनीय हैं, जिनमें प्रायः पाश्चात्य संस्कृति एवं विदेशी जीवन का चित्रण करते हुए यौन प्रवृत्तियों को प्रमुखता दी गई है। राजेन्द्र यादव की कहानी संग्रहों में देवताओं की मूर्तियां, अपने पार, टूटना और अन्य कहानियां, छोटे-छोटे ताजमहल आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने भी मुख्यतः शहरी जीवन की असंगतियों एवं आर्थिक विशमताओं का चित्रण यथार्थ रूप में किया है।¹⁰

कमलेश्वर के कहानी संग्रह कस्बे का राजा, हमपेशा, खोई हुई दिशाएं, मांस का दरिया आदि शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं, जिनमें शहरी जीवन की विभिन्न अनुभूतियों का अंकन प्रभावोत्पादक ढंग में हुआ है। भीष्म साहनी की कहानी संग्रह में पहला पाठ, भटकती राख, वाइचू, शोभायात्रा, निशाचर आदि शीर्षकों से प्रकाशित हुई हैं, जिनमें आधुनिक जीवन की विसंगतियों का चित्रण करते हुए परंपरागत मूल्यों के विघटन को अंकित किया गया है। कृष्ण बलदेव वेद के कहानी संग्रहों में मेरा दुश्मन, मेरी कहानियां, बीच का दरवाजा, उसके बयान आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें भी शहरी जीवन का बोध सशक्त रूप में व्यक्त हुआ है। नई कहानी को आगे बढ़ाने में श्रीकांत वर्मा के कहानी संग्रह झाड़ी, सम्वाद आदि का भी योगदान है। धर्मवीर भारती के कहानी संग्रह में चांद और टूटे हुए लोग, स्पर्श और पृथ्वी तथा दूधनाथ सिंह के कहानी संग्रह सपाट चेहरे वाली आदि भी उल्लेखनीय हैं।¹¹

नई कहानी आंदोलन से जुड़ी हुई महिला लेखिकाओं में मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मन्नू भंडारी के कहानी संग्रहों में रेत की दीवार, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, त्रिशंकु आदि महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन की विभिन्न स्थितियों का अंकन मार्मिक रूप में किया है। उषा प्रियंवदा के कहानी संग्रह फिर बसंत आया, एक कोई दूसरा, जिंदगी और गुलाब के फूल आदि शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं, जिनमें शहरी जीवन की कृत्रिमता और घुटन आदि का चित्रण सजीव रूप में हुआ है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'नई कहानी' कुछ नया करने के उद्देश्य से आगे बढ़ी क्योंकि इसके नायक अपनी बात अपने अंदाज में कहना चाहते थे। 'नई कहानी' समानांतर कहानी हो या अकहानी किसी को एक लीक पर नहीं हांका जा सकता। पुराने का अस्वीकार और नया कुछ करने की तमन्ना, हर युग की दास्ता रही है। यही नई कहानी की भी कहानी है। 'नई कहानी' के दौर के कहानीकार इस समय अच्छी कहानियां लिख रहे थे। जिनमें मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, भीष्म साहनी, अमरकांत, मार्कंडेय, शेखर जोशी, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा आदि भी कहानियां लिख रहे थे और इस दशक में भी इनकी कई महत्वपूर्ण रचनाएं सामने आईं।

संदर्भ

1. हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास, डॉ. नन्द बहादुर सिंह, पृ.01
2. कहानी का स्वरूप और विकास, एम.एच.डी. 09, इग्नू, पृ.41
3. हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास, डॉ. नन्द बहादुर सिंह
4. वही, पृ.28
5. वही, पृ.वही
6. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय खंड, गणपतिचंद्र गुप्त, पृ.460
7. वही, पृ.वही
8. हिंदी साहित्य का इतिहास बी.एच.डी.सी 131 इग्नू, पृ.22
9. हिंदी कहानी का विकास, मधुरेश, पृ.67
10. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय खंड, गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.461
11. वही, पृ. वही



भारत बांग्लादेश सम्बन्ध : दशा एवं दिशा

हरकेश मीणा

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
श्रीमती नर्बदा देवी बिहानी
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नोहर
जिला - हनुमानगढ़, राजस्थान।

शोध सारांश

भारत और बांग्लादेश के सम्बन्ध दक्षिण एशिया की राजनीति, अर्थव्यवस्था और सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दोनों देशों के सम्बन्धों नींव 1971 में बांग्लादेश के अस्तित्व में आने के साथ शुरू हुई। क्योंकि बांग्लादेश को स्वतन्त्र राष्ट्र का दर्जा दिलाने में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका थी। तब से दोनों देशों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और रणनीतिक सहयोग निरन्तर विकसित हुआ है। यह शोध पत्र भारत बांग्लादेश सम्बन्धों की वर्तमान स्थिति और भविष्य की सम्भावनाओं का विश्लेषण करता है। अध्ययन में व्यापार सीमा सुरक्षा, जल बटवारा, क्षेत्रीय सहयोग और कनेक्टिविटी जैसे प्रमुख आयामों का परीक्षण किया गया है। विशेष रूप से तीस्ता नदी जल विवाद, अवैध प्रवासन और सीमा प्रबन्ध जैसी चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

बांग्लादेश की भूमि सीमा तीन ओर से भारत की सीमा से घिरी है और चौथी ओर बंगाल की खाड़ी स्थित है। भारत और बांग्लादेश 4096.7 किमी. सीमा रेखा साझा करते हैं जो भारत द्वारा किसी भी अन्य पड़ोसी देश के साथ साझा सीमा रेखा से लंबी है। भारत विश्व का पहला देश था जिसने बांग्लादेश को एक पृथक एवं स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की थी और दिसंबर 1971 में इसकी स्वतंत्रता के तुरंत बाद दक्षिण एशियाई पड़ोसी के रूप में बांग्लादेश के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किये थे। भारत की 'नेबरहुड फर्स्ट' नीति में बांग्लादेश एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बांग्लादेश के साथ भारत के सभ्यतागत, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक संबंध हैं। एक साझा इतिहास एवं विरासत, भाषाई एवं सांस्कृतिक संबंध, संगीत, साहित्य और कला के लिये एकसमान उत्साह आदि दोनों देशों को परस्पर संबद्ध करता है। हालाँकि नदी जल विवाद (तीस्ता नदी के जल की साझेदारी), अवैध अप्रवासियों की सहायता और मादक द्रव्यों के व्यापार जैसे कई प्रमुख मुद्दे दोनों देशों के संबंध में अड़चन बने हुए हैं जिन्हें हल किये जाने की आवश्यकता है।

भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध

आर्थिक संबंध- बांग्लादेश के साथ भारत की भौगोलिक निकटता ने इसे उसके सबसे बड़े व्यापारिक भागीदारों में से एक के रूप में उभरने का अवसर दिया है। दूसरी ओर, बांग्लादेश भारत का छठा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। भारत

ने दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र के तहत वर्ष 2011 से ही बांग्लादेश को तंबाकू और शराब को छोड़कर शेष सभी टैरिफ लाइनों पर ड्यूटी फ्री कोटा फ्री पहुँच प्रदान कर रखी है। दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार वर्ष 2020-21 में 10.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वर्ष 2021-22 में 18.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया। भारत और बांग्लादेश सरकारों द्वारा 6 सीमा हाटों (मेघालय में 4 और त्रिपुरा में 2) की मंजूरी दी गई है।

नदी जल का बँटवारा- भारत और बांग्लादेश कई नदियाँ साझा करते हैं। गंगा जल संधि पर वर्ष 1996 में हस्ताक्षर किया गया था, जो कि जल की कमी वाले मौसम के दौरान गंगा नदी के जल के बँटवारे के लिये था। हाल ही में 'कुशियारा समझौते' पर हस्ताक्षर किया गया है जिससे भारत में दक्षिणी असम और बांग्लादेश में सिलहट क्षेत्र के लोगों को लाभ प्राप्त होगा।

कनेक्टिविटी/संपर्क- भारत और बांग्लादेश 4096.7 किलोमीटर भूमि सीमा साझा करते हैं जो भारत के असम, त्रिपुरा, मिज़ोरम, मेघालय और पश्चिम बंगाल को स्पर्श करती है। अंतर्देशीय जलमार्गों के माध्यम से पारगमन और व्यापार बांग्लादेश एवं भारत के बीच लंबे समय से बने रहे और समय के मानकों पर खरे उतरे प्रोटोकॉल द्वारा नियंत्रित होते हैं। क्षेत्रीय एवं उप-क्षेत्रीय व्यापार बांग्लादेश-चीन-भारत-म्यांमार (बीसीआईएम) आर्थिक गलियारे तथा बांग्लादेश-भूटान-भारत-नेपाल (बीबीआईएन) मोटर वाहन समझौते जैसी पहलों को शुरू करने का प्रमुख प्रोत्साहन रहा है। बांग्लादेश और भारत को प्रस्तावित पहलों (जैसे बीबीआईएन और बीसीआईएम आर्थिक गलियारे) को साकार करने में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। इससे अंतर-क्षेत्रीय और अंतर-क्षेत्रीय बाजारों के एकीकरण में सहायता मिलेगी और उत्पादकता में वृद्धि होगी।

विद्युत और ऊर्जा क्षेत्र सहयोग- भारत और बांग्लादेश के बीच ऊर्जा क्षेत्र के सहयोग में भी पिछले कुछ वर्षों में वृहत प्रगति हुई है। वर्ष 2018 में हस्ताक्षरित 'भारत-बांग्लादेश मैत्री पाइपलाइन परियोजना' भारत में पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी और बांग्लादेश के दिनाजपुर ज़िले के पार्वतीपुर को जोड़ेगी। दोनों देशों ने हाइड्रोकार्बन क्षेत्र में सहयोग पर समझौते की रूपरेखा पर भी हस्ताक्षर किये हैं।

पर्यटन- बांग्लादेश और भारत दोनों विश्व के सबसे बड़े मैंग्रोव वन, सुंदरबन को साझा करते हैं। दोनों देशों ने तटीय और पूर्वनिर्धारित मार्गों पर यात्री और क्रूज सेवाएं संचालित करने के लिए 16 नवंबर 2015 को एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। 29 मार्च 2019 को बांग्लादेश और भारत ने सीमा पार यात्री और क्रूज सेवाएं शुरू कीं, जिनसे सीमा पार पर्यटन के लिए एक नया आयाम खुलने की उम्मीद है। पर्यटन अवसंरचना और सुविधाओं के विकास के लिए दोनों देशों के बीच और सहयोग आवश्यक है, साथ ही पर्यावरण संवेदनशीलता का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके अलावा, भारत, बांग्लादेश और अन्य बीबीआईएन भागीदार देश एक क्षेत्रीय पर्यटन सर्किट शुरू कर सकते हैं जो अधिक विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करेगा और इस प्रकार अधिक राजस्व उत्पन्न करेगा। पर्यटन मंत्रालय के अनुसार वर्ष 2020 में भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों में सबसे बड़ी हिस्सेदारी बांग्लादेश की रही, जिनमें से हजारों लोग चिकित्सा उपचार के लिये भारत आए थे।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क)- भारत और बांग्लादेश सार्क के सदस्य हैं। इस संगठन के माध्यम से दोनों देशों में व्यापार, तकनीकी, मानवीय सहायता आदि स्तरों पर सहयोग किया जाता है।

समुद्री सहयोग- नीली अर्थव्यवस्था के इस युग में, बंगाल की खाड़ी के तटीय राज्यों के लिए समुद्री व्यापार और वाणिज्य तथा नौवहन की स्वतंत्रता का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है। जून 2015 में तटीय जहाजरानी पर द्विपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर के बाद बांग्लादेश-भारत समुद्री संपर्क एक वास्तविकता बन गया है। यह समझौता दोनों देशों के बीच समुद्री संपर्क विकसित करने में एक मील का पत्थर है, क्योंकि इसका उद्देश्य पारस्परिक लाभ के लिए वाणिज्यिक समुद्री गतिविधियों को सुगम बनाना है।

भारत और बांग्लादेश के बीच वर्तमान प्रमुख मुद्दे

तीस्ता नदी जल विवाद- तीस्ता नदी के जल प्रवाह को न्यूनतम रखने के लिए वर्ष 2011 में एक समझौता हुआ

था जिसके तहत भारत को 42.5 प्रतिशत पानी, बांग्लादेश को 37.5 प्रतिशत पानी और शेष 20 प्रतिशत पानी के प्रवाह की पूरी छूट दी गई थी। कुछ मतभेदों के कारण यह समझौता अभी तक लागू नहीं हो पाया है। इसके अलावा ब्रह्मपुत्र एवं गंगा नदी के जल वितरण को लेकर भी विवाद है। तीस्ता नदी भारत से बांग्लादेश में प्रवेश करते हुए बंगाल की खाड़ी की ओर प्रवाहित होती है। पश्चिम बंगाल के लगभग आधा दर्जन ज़िले इस नदी पर निर्भरता रखते हैं। यह बांग्लादेश के वृहत रंगपुर क्षेत्र में धान की खेती के लिये सिंचाई की एक प्रमुख स्रोत भी है। बांग्लादेश की शिकायत है कि उसे जल का उचित हिस्सा प्राप्त नहीं होता है। चूँकि भारत में जल राज्य सूची का विषय है, इसलिये बंगाल की राज्य सरकार और केंद्र सरकार के बीच असहमति से बाधा की स्थिति बनती है।

अवैध प्रवासन- बांग्लादेश से भारत में अवैध आप्रवासन (जिसमें शरणार्थी और आर्थिक प्रवासी दोनों शामिल हैं) बेरोकटोक जारी है। सीमा पार से ऐसे प्रवासियों की बड़ी संख्या के आगमन ने बांग्लादेश की सीमा से लगे भारतीय राज्यों के लोगों के लिये गंभीर सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक समस्याएँ खड़ी कर दी हैं, जो इसके संसाधनों और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये गंभीर निहितार्थ रखते हैं। यह समस्या तब और जटिल हो गई जब मूल रूप से म्यांमार के रोहिंग्या शरणार्थी बांग्लादेश के रास्ते भारत में घुसपैठ करने लगे। इसके अलावा, राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (NRC) भविष्य में बांग्लादेश से अवैध प्रवासियों के भारत में प्रवेश पर रोक का लक्ष्य रखता है, इसने बांग्लादेश में गहन चिंता को जन्म दिया है। एक आतंकवादी हमले के बाद, म्यांमार सशस्त्र बलों ने 25 अगस्त 2017 को रखाइन राज्य में देश के अल्पसंख्यक रोहिंग्या समुदाय के खिलाफ सैन्य अभियान शुरू किया। परिणामस्वरूप, लाखों रोहिंग्या पड़ोसी देश बांग्लादेश भाग गए, जिससे हमारे समय के सबसे बड़े मानवीय संकटों में से एक उत्पन्न हो गया। हिंसक दमन के बाद, म्यांमार की नेता आंग सान सू की और उनकी सरकार को मानवाधिकारों के घोर उल्लंघन के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय की निंदा का सामना करना पड़ा। भारत, संकट में तटस्थ रहते हुए, बांग्लादेश और म्यांमार दोनों को मानवीय और आर्थिक सहायता प्रदान करता रहा है। हालाँकि, इस अत्यंत जटिल मानवीय संकट को हल करने के लिए बांग्लादेश और म्यांमार के बीच मध्यस्थता करके रचनात्मक भूमिका निभाने के मामले में भारत से और अधिक अपेक्षा की जाती है।

मादक द्रव्यों की तस्करी- सीमा पार से मादक द्रव्यों की तस्करी की कई घटनाएँ सामने आई हैं। इसके अलावा, मानव तस्करी (विशेषकर बच्चों और महिलाओं की तस्करी) और सीमा क्षेत्र में विभिन्न वन्यजीवों एवं पक्षियों के अवैध शिकार की घटनाएँ भी होती रहती हैं।

आतंकवाद- सीमा क्षेत्र आतंकवादी घुसपैठ के लिये अतिसंवेदनशील हैं। जमात-उल मुजाहिदीन बांग्लादेश जैसे कई आतंकी संगठन भारत भर में अपना जाल फैलाने की कोशिश कर रहे हैं। जमात-उल मुजाहिदीन बांग्लादेश को बांग्लादेश, भारत, मलेशिया और यूनाइटेड किंगडम द्वारा एक आतंकवादी समूह के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। हाल ही में राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी ने भोपाल की एक विशेष न्यायालय में जमात-उल मुजाहिदीन बांग्लादेश के 6 सदस्यों के विरुद्ध चार्जशीट दाखिल की है।

बांग्लादेश में बढ़ता चीनी प्रभाव

बांग्लादेश चीन के 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' का एक सक्रिय भागीदार है, जबकि भारत इसका अंग नहीं है एवं चटगांव बन्दरगाह में भी चीन निवेश कर रहा है। इसके अलावा, बांग्लादेश ने रक्षा क्षेत्र में पनडुब्बियों सहित अन्य चीनी सैन्य उपकरणों का आयात किया है जो भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये प्रमुख चिंता का विषय है।

भविष्य की दिशा

तीस्ता नदी जल विवाद को हल करना- तीस्ता नदी के जल के बँटवारे की सीमा के निर्धारण और एक परस्पर समझौते तक पहुँचने की दिशा में आम सहमति स्थापित करने के लिये पश्चिम बंगाल सरकार और केंद्र सरकार दोनों को

आपसी समझ के साथ मिलकर कार्य करना चाहिये और सहकारी संघवाद का संकेत देना चाहिये।

बेहतर संपर्क- तटीय संपर्क, सड़क, रेल और अंतर्देशीय जलमार्गों में सहयोग को मजबूत कर इस भूभाग में कनेक्टिविटी/संपर्क बढ़ाने की आवश्यकता है।

ऊर्जा सुरक्षा- चूँकि वैश्विक ऊर्जा संकट का उभार जारी है, यह अपरिहार्य है कि भारत और बांग्लादेश दक्षिण एशिया को पर्याप्त ऊर्जा आत्मनिर्भर बनाने हेतु स्वच्छ एवं हरित ऊर्जा का उपयोग करने में परस्पर सहयोग करें।

भारत बांग्लादेश मैत्री पाइपलाइन- यह परियोजना भूमिगत रूप से शुरू की जा रही है और इसके पूरा होने पर भारत से उत्तरी बांग्लादेश में डीजल की उच्च गति से आवाजाही हो सकेगी। बांग्लादेश ने इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड को परिश्रित पेट्रोलियम उत्पादों की सरकार-से-सरकार आपूर्ति हेतु एक पंजीत एजेंसी के रूप में स्वीकार किया है।

व्यापक आर्थिक भागीदारी समझौते के माध्यम से बांग्लादेश अपने व्यापार विशेषाधिकारों को संरक्षित रख सकने में सक्षम होगा। यह भारत और बांग्लादेश के बीच आर्थिक संबंधों को भी मजबूत करेगा।

चीन के प्रभाव का मुकाबला करना- परमाणु प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, आधुनिक कृषि तकनीकों और बाढ़ डेटा विनिमय के साथ बांग्लादेश की सहायता करने से उसके साथ भारत के संबंधों को और मजबूती मिलेगी और यह चीन के प्रभाव का काफी हद तक मुकाबला करने में भारत की मदद करेगा।

शरणार्थी संकट से निपटना

भारत और बांग्लादेश दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) में अन्य देशों को शरणार्थियों पर सार्क घोषणा का विकास करने और शरणार्थियों एवं आर्थिक प्रवासियों की स्थिति निर्धारित करने के लिये एक विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित करने हेतु अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। भारत की 'नेबरहुड फर्स्ट' नीति में बांग्लादेश की केंद्रीय भूमिका के बावजूद अभी भी कई प्रमुख मुद्दे मौजूद हैं जिन्हें हल करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

भारत और बांग्लादेश के सम्बन्ध ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक और रणनीतिक आधारों पर निर्मित मजबूत द्विपक्षीय सम्बन्धों का उदाहरण है। 1971 से वर्तमान समय तक दोनों देशों में आपसी सहयोग के अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। हालांकि जल बटवारा सीमा प्रबन्धन और अवैध प्रवासन जैसी समस्याएँ अभी भी मौजूद हैं लेकिन संवाद और सहयोग की नीति इन समस्याओं के समाधान का प्रभावी माध्यम बन सकती है। दोनों देशों के सम्बन्ध केवल द्विपक्षीय हितों तक सीमित नहीं हैं अपितु दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय स्थिरता और विकास के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। भारत-बांग्लादेश संबंधों में वर्तमान अवधि एक निर्णायक क्षण का प्रतिनिधित्व करती है। इनके संबंधों का भविष्य व्यावहारिक, सहयोगी कूटनीति पर निर्भर करेगा जो पारस्परिक लाभ एवं सामान्य लक्ष्यों को प्राथमिकता देता है। दोनों देशों को राजनीतिक तनावों को दूर करने, आर्थिक संबंधों को मजबूत करने और क्षेत्रीय एकीकरण में संलग्न होने के लिए मिलकर काम करना चाहिए। यह सहयोग न केवल उनकी द्विपक्षीय समृद्धि के लिए बल्कि दक्षिण एशिया में व्यापक क्षेत्रीय स्थिरता के लिए भी महत्वपूर्ण है। भविष्य में आर्थिक सहयोग, ऊर्जा साझेदारी और क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से दोनों देशों के सम्बन्ध और अधिक सुदृढ़ एवं व्यापक हो सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. मिश्र, के. पी., भारत की विदेश नीति 2000
2. खन्ना बी. एन. भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000

3. कोली. सी. एम., प्रमुख देशों की विदेश नीतिया, साहित्यागार जयपुर, 2001
4. यादव, आर. एस., भारत की विदेश नीति, किताब महल, पटना, 2002
5. भारद्वाज, रामदेव, भारत और अंतर्राष्ट्रीय संबंध, म.प्र. हिन्दी प्रकाशन अकादमी, भोपाल, 2003
6. शर्मा, मथुरालाल, प्रमुख देशों की विदेश नीतिया, कॉलेज बुक डिपों, जयपुर (राजस्थान), 2004
7. कुमार, महेन्द्र, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष, साहित्य भवन, आगरा, 2005
8. फड़िया, बी. एल., अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन आगरा, 2020
9. सिंहल, सुरेश चन्द्र, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा
10. शर्मा, गोपाल कृष्ण, भारतीय विदेश नीति की बदलती अवधारणा, जयपुर
11. दीक्षित, जे.एन, भारतीय विदेश नीति।
12. दैनिक समाचार पत्र एवं विभिन्न शोध पत्र।



स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक अवदान नई शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में

सुभाष कुमार धायल

शोधार्थी :- जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूँ

डॉ. गिरधारी लाल शर्मा

मार्गदर्शक, सहायक आचार्य शिक्षा विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूँ

प्रस्तावना

सम्पूर्ण संसार में मनुष्य बुद्धि के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है, अतः बुद्धि के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है, शिक्षा ही व्यक्ति के बौद्धिक स्तर को बढ़ाकर व्यक्ति के जीवन को सफलता प्रदान करती है। व्यक्ति के पास जैसी शिक्षा होगी वैसी ही उसकी बुद्धि होगी, शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपना विकास तो करता ही है साथ ही साथ घर परिवार समाज राष्ट्र का भी विकास करता है। शिक्षा व जीवन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, शिक्षा आजीवन चलती रहती है, व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

किसी भी व्यक्ति या समाज की उन्नति शिक्षा के माध्यम से ही हो सकती है, शिक्षा से मनुष्य में शिष्टाचार सदाचार, समाज का ज्ञान आदि उत्पन्न होते हैं। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में बहुत सी कमियां हैं, नवीन शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से वर्तमान शिक्षा के प्रारूप में सुधार के प्रयास किये गये हैं।

मूल शब्द - शैक्षिक - शिक्षा का, शिक्षा संबंधी, अवदान- योगदान, सहयोग, शिक्षा नीति- शैक्षिक योजनाओं का निर्माण करना।

मुख्य विषय वस्तु

स्वामी विवेकानन्द एक महान विचारक, दार्शनिक और शिक्षाविद् थे। स्वामी जी ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया और एक नई शिक्षा पद्धति की कल्पना की उनके विचारों को नवीन शिक्षा नीति 2020 में शामिल किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को आत्म-साक्षरता प्रदान करने में मदद करना होना चाहिए। नवीन शिक्षा नीति 2020 में भी इसी विचार को शामिल किया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपने जीवन को सार्थक बनाने में मदद करने वाला होना चाहिए। इस शिक्षा नीति को एक समग्र प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है, जो व्यक्ति को अपने जीवन को सार्थक बनाने में मदद करती है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में व्यावहारिक ज्ञान के महत्व पर जोर दिया है या उन्होंने कहा था कि शिक्षा में व्यावहारिक ज्ञान को शामिल करना चाहिए ताकि व्यक्ति को अपने जीवन में उपयोग करने के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्त हो सके।

नवीन शिक्षा नीति 2020 में भी व्यावहारिक ज्ञान के महत्व पर प्रकाश डाला गया है, इस शिक्षा नीति में कहा गया है,

कि शिक्षा में व्यवहारिक ज्ञान को शामिल करना चाहिए ताकि व्यक्ति को अपने जीवन में उपयोगी ज्ञान प्राप्त हो सके।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के विचार नवीन शिक्षा नीति 2020 में शामिल किये गए हैं। स्वामी जी के विचारों को शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण माना जाता है। और उनके विचारों को शिक्षा की नीतियों में शामिल करने से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को समग्र प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया था जो व्यक्ति को अपने जीवन को सार्थक बनाने में मदद करती है उन्होंने कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को आत्म-साक्षरता प्राप्त करने में मदद करना होना चाहिए।

नवीन शिक्षा नीति 2020 में भी इसी विचार को शामिल किया गया है, इस नीति में कहा गया है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपने जीवन को सार्थक बनाने में मदद करना होना चाहिए इस नीति के माध्यम से व्यक्ति के जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास किया गया है।

इसके अलावा, स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में व्यवहारिक ज्ञान के महत्व पर भी जोर दिया है, स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि भारतीय मूल्यों और संस्कृति के महत्व को शिक्षा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाना होगा नवीन शिक्षा नीति 2020 में भी भारतीय मूल्यों और संस्कृति के महत्व पर जोर दिया गया है। इस शिक्षा नीति में कहा गया है कि शिक्षा में भारतीय मूल्यों और संस्कृति को शामिल करना चाहिए ताकि व्यक्ति को अपने मूल्यों व संस्कृति की जानकारी प्राप्त हो सके।

नवीन शिक्षा नीति 2020 के मुख्य बिन्दू

1. शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपने जीवन को सार्थक बनाने में मदद करना।
2. शिक्षा में व्यवहारिक ज्ञान को शामिल करना।
3. शिक्षा में भारतीय संस्कृति व मूल्यों को शामिल करना।
4. शिक्षा को एक समग्र रूप से परिभाषित करना।
5. शिक्षा में तकनीक का प्रयोग।
6. शिक्षकों का विकास, शिक्षकों के बेहतर प्रशिक्षण के माध्यम से।
7. शिक्षा में समानता व सुलभता को बढ़ावा देना।
8. भारतीय युवाओं को भारत के बारे में और उसकी विविधता, सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताओं का ज्ञान करवाना।
9. भाषा, कला व भारतीय ज्ञान परम्परा के बारे में ज्ञानवान बनाना।
10. राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आपसी सहयोग राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करना।

निष्कर्ष

सांसारिकता व भौतिकता से दूर सत्य की तलाश में जीवन बिताने वाले स्वामी विवेकानन्द का समग्र जीवन आधुनिक पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय है, स्वामी जी का पूरा जीवन शिक्षा दर्शन से भरा हुआ है, उनकी शिक्षाएँ व्यक्ति को सही दिशा में जीवन के लिए प्रेरित करती हैं, विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन में स्वतंत्रता और सामाजिक उत्थान का भाव है, स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का अर्थ डिग्रियों का पाना नहीं है, उनका मत था कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य में मनुष्यत्व का भाव उत्पन्न करना है वर्तमान शिक्षा नीति 2020 स्वामी जी द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करते हैं, नवीन शिक्षा नीति निर्माण करने वाले विद्वानों ने स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्ध सुझावों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा नीति का निर्माण किया है, इस शिक्षा नीति के द्वारा केवल किताबी ज्ञान ही नहीं बल्कि, सामाजिक, व्यक्तिक, आध्यात्मिक, कौशलआत्मक, ज्ञान प्रदान किये जाने हेतु इसका निर्माण किया गया यह शिक्षा नीति निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्णतः सफल होगी।